20 अक्टूबर, 2020 (सितम्बर-अक्टूबर संयुक्तांक)* वर्ष-29, पृष्ठ संख्या 92, अंक-9-10

राजस्थान सुजस

150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA

Rajas @75

गांधी जीवन दर्शन पर एकाग्र

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को श्रद्धासुमन अर्पित

मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत गांधी जयंती के अवसर पर शासन सचिवालय पहुंचे और यहां राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की प्रतिमा के समक्ष श्रद्धासुमन अर्पित किए। कला एवं संस्कृति मंत्री श्री बी.डी. कल्ला, सूचना एवं जनसम्पर्क राज्यमंत्री डॉ. सुभाष गर्ग, मुख्य सचिव श्री राजीव स्वरूप आदि ने इस अवसर पर गांधीजी को श्रद्धांजलि अर्पित की।

मुख्यमंत्री इसके बाद जवाहर लाल नेहरू मार्ग स्थित गांधी सर्किल पहुंचे और वहां महात्मा गांधी की प्रतिमा के समक्ष पुष्पांजलि अर्पित की। कला एवं संस्कृति मंत्री श्री बी.डी. कल्ला, अल्पसंख्यक मामलात मंत्री श्री शाले मोहम्मद, सूचना एवं जनसम्पर्क राज्यमंत्री डॉ. सुभाष गर्ग ने भी इस मौके पर श्रद्धासुमन अर्पित कर राष्ट्रपिता को याद किया।

सत्यमेव जयते
राजस्थान सरकार

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के 151वीं जयंती वर्ष में सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग की पत्रिका 'सुजस' के सितम्बर-अक्टूबर, 2020 संयुक्तांक का राष्ट्रपिता महात्मा गांधी विशेषांक के रूप में प्रकाशन किया जा रहा है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी विश्व की ऐसी महान विभूति थे, जिन्होंने सत्य, अहिंसा, शांति और सत्याग्रह के आधार पर देश को आजाद कराया। दुनिया में अहिंसा के आधार पर आजादी दिलाने की दूसरी कोई मिसाल नहीं मिलती। बापू का संपूर्ण जीवन सादा जीवन एवं उच्च विचार के साथ परोपराकार एवं निस्वार्थ सेवाभाव से सराबोर रहा। गांधीजी के आदर्शों को यदि हम सब अपना लें तो जीवन की अधिकांश समस्याओं का समाधान स्वत: ही हो जाएगा।

गांधीजी का जीवन ही उनका संदेश है। इसमें दूसरों की पीड़ा को अपना समझने, पंक्ति के अंतिम व्यक्ति तक न्याय सुलभ कराने और उसे राहत पहुंचाने के साथ ही सर्वधर्म सद्भाव को महत्त्वपूर्ण माना है। उन्होंने अस्पृश्यता को पाप बताया और ऊंच-नीच के भेदभाव को हटाकर सभी में ईश्वर का दर्शन करने की सीख दी।

महात्मा गांधी ऐसे भारत का निर्माण करना चाहते थे, जिसमें सभी मिलजुल कर परस्पर प्रेम, शांति और सद्भाव से रहें। शांति और अहिंसा का मार्ग आज भी सम्पूर्ण विश्व में अनुकरणीय है।

गांधी जयन्ती के अवसर पर हम संकल्प लें कि उनके बताए आदर्शों को आत्मसात करेंगे और सत्य के रास्ते पर चलते हुए जीवन को सार्थक करेंगे। सुजस के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी विशेषांक के प्रकाशन की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

(अशोक गहलोत)
मुख्यमंत्री, राजस्थान

सत्यमेव जयते
राजस्थान सरकार

संदेश

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के 151वीं जयंती वर्ष के अवसर पर सूचना व जन संपर्क विभाग की पत्रिका सुजस के सितम्बर-अक्टूबर, 2020 संयुक्तांक का राष्ट्रपिता महात्मा गांधी विशेषांक के रूप में प्रकाशन किया जा रहा है, जिसकी मुझे अति प्रसन्नता है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचार और उनके आदर्श वर्तमान समय में विश्व में मौजूद चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रेरणादायी और सार्थक हैं। आपसी भाईचारा और अहिंसा का उनके द्वारा दिखाया गया मार्ग हमें ना केवल समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को निर्वहन करने के लिए प्रेरित करता है, अपितु एक स्वस्थ और खुशहाल समाज के निर्माण का रास्ता भी दिखाता है। गांधीजी का सम्पूर्ण जीवन ही हमारे लिए आदर्श है। यदि हम उनके जीवन को नाममात्र भी आत्मसात कर सकें तो हम भी मानवता के कल्याण में अपना योगदान करने में सफल हो सकते हैं।

वैश्विक महामारी के दौर में एक-दूसरे का साथ निभाना और नि:स्वार्थ भाव से कमजोर और जरूरतमंदों की सेवा को ही लक्ष्य बनाकर आगे बढ़ते जाना ही गांधी दर्शन की साधना है। एक-दूसरे का हाथ थामकर शांत मन से कदम-कदम बढ़ाकर गांधीजी ने जिस प्रकार हर चुनौती का सामना किया वह हमें सीख देता है कि आदर्श जीवन कैसा हो सकता है और वर्तमान परिस्थितियों में हमें ऐसे जीवन की बहुत आवश्यकता है।

महात्मा गांधी ने जिस खुशहाल भारत का स्वप्न देखा था, उसके निर्माण के लिए हम सभी को एक साथ आगे आना होगा। गांधी जी के 151वीं जयंती वर्ष राष्ट्रपिता के आदर्शों को आत्मसात करने और उन्हें अंगीकार करने का पुनीत अवसर है।

सुजस के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी विशेषांक के प्रकाशन की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

(डॉ. रघु शर्मा)

प्रधान सम्पादक
महेन्द्र सोनी, आईएएस
आयुक्त, सूचना एवं जनसम्पर्क

सम्पादक
डॉ. राजेश कुमार व्यास

उप सम्पादक
आशाराम खटीक

कला
विनोद कुमार शर्मा

आवरण
रामकिशन अडिग

राजस्थान सुजस में प्रकाशित सामग्री में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं एवं आंकड़े परिवर्तनशील हैं। आवश्यक नहीं कि शासन उनसे सहमत हो। सुजस में प्रकाशित सामग्री का विभाग किसी भी रूप में उपयोग कर सकेगा।

ग्राफिक डिजाइनिंग
रेनबो ऑफसेट प्रिन्टर्स, जयपुर

सम्पर्क
सम्पादक
राजस्थान सुजस (मासिक)
सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग
सचिवालय परिसर
जयपुर - 302 005

e-mail :
publication.dipr@rajasthan.gov.in
editorsujas@gmail.com

Website :
www.dipr.rajasthan.gov.in

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, राजस्थान का मासिक

वर्ष : 29 अंक : 9-10 **20 अक्टूबर, 2020 (सितम्बर-अक्टूबर संयुक्तांक)**

जन आन्दोलन का ...

09

जीवन ही संदेश

24

गांधी का आर्थिक चिंतन

52

इस अंक में

सम्पादकीय	6
महात्मा गांधी की जयंती पर दीपोत्सव	7
विदेशों में भी छाया राजस्थान सरकार ...	8
'देश की जनता को सूचना के अधिकार	10
कोरोना वायरस से बचाव के लिए मास्क ...	11
महात्मा गांधी के प्रत्येक कार्य में अहिंसा ...	12
सत्याग्रह-आश्रम	19
गांधी की प्रासंगिकता	20
गांधी का अनुशासन	22
संपादक-पत्रकार गांधी	28
गांधी और काव्य	32
पुस्तकों के लेखक - अनुवादक गांधी	34
आधुनिक भारतीयता	36
मोहनदास करमचंद गांधी	40
सत्याग्रही वैज्ञानिक	46
चरखे का संगीत	49
महात्मा गांधी का कला चिंतन	54
राजस्थानी लोक मानस में गांधी	57
हिंसा-अहिंसा और गांधी	62
गांधी अभिनंदन ग्रंथ	64
राजस्थान में गांधी	66
महात्मा गांधी का जीवन	70
जय गांधी !	72
महात्मा गांधी : जीवन घटनाक्रम	78
सत्याग्रह की उत्पत्ति	84

राजस्थान सुजस के आगामी अंक के लिए मौलिक, अप्रकाशित सामग्री भिजवायें। कृपया अपने आलेख एवं फोटोग्राफ सम्पादक को e-mail : editorsujas@gmail.com पर अथवा डाक से भेजें।

ट्रस्टीशिप सिद्धांत की सरकार

13

मानवतायुक्त विकास ...

41

गांधी का ग्राम स्वराज्य

85

गांधी जी व्यक्ति नहीं विचार है

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के बारे में कभी महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा था कि आने वाली पीढ़ियां विश्वास नहीं करेंगी कि हाड़ मांस का कोई ऐसा इंसान भी धरती पर चला होगा। उनका असाधारण व्यक्तित्व ऐसा ही था। विश्वभर ने उनकी महानता को स्वीकार किया है। मानव से महामानव बनने की जीवंत गाथा है उनका संपूर्ण जीवन। गांधीजी व्यक्ति ही नहीं विचार हैं। अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए, पीड़ित मानवता के लिए ही वह सदा जिए। उनका पूरा जीवन अंधेरों से उजास का संवाहक है। उन्होंने कभी कहा भी था, 'जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहं तुम पर हावी होने लगे तो यह कसौटी आजमाओ। जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो उसको याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना हितकारी होगा।'

गांधीजी का संपूर्ण जीवन त्याग और तपस्या का अप्रतिम उदाहरण है। उन्होंने जो आश्रम स्थापित किया, वह भी अन्य धार्मिक आश्रमों से सर्वथा भिन्न था। जिसमें आर्थिक और अन्य सामाजिक प्रवृतियों पर जोर था। आश्रम के जीवन में स्वावलम्बन की जन सीख थी। सादगी का अपूर्व संदेश ही एक प्रकार से उनका आश्रम जीवन था। प्राचीन संस्कृति के शब्द आश्रम को उन्होंने सर्वथा नया अर्थ दिया। सामूहिक सूत कताई, सामूहिक स्वच्छता और सामूहिक सर्वधर्म प्रार्थना की आश्रम प्रवृतियां गांधीजी द्वारा प्रारंभ की गयी आर्थिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन की आदर्श प्रतीक थी। इसीलिए उनका संपूर्ण जीवन मानव से महामानव बनने का ऐसा दृष्टान्त है, जिससे जीवन सार्थक हो सकता है। सत्य के लिए आग्रह, हिंसा की बजाय अहिंसा का मार्ग अपनाने, अपरिग्रह आदि के उनके सन्देश आज भी प्रासंगिक है।

महात्मा गांधी ऐसे युगपुरुष थे, जिन्होंने आजादी के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। छुआछूत, भेदभाव और असमानता को अस्वीकार कर उन्होंने देश में समानता, सर्वधर्म सद्भाव की मिसाल कायम की। उदारता का उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि जिस मार्ग की और वह चले देश के हजारों लाखों कदम उनके साथ हो लिए। स्वदेशी अपनाने, विदेशी वस्त्रों की होली जलाने, असहयोग आंदोलन, सत्याग्रह के लिए पूरा देश उनके साथ चल पड़ा और अंतत: अंग्रेजों को देश छोड़ कर जाना पड़ा। भारत गुलामी की जंजीरों से आजाद हुआ।

महात्मा गांधी का जीवन दर्शन आदर्श का अप्रतिम उदाहरण है। उनके जीवन, उनकी सोच और सत्य, अहिंसा के दिए आदर्शों में ही आज की सभी समस्याओं का हल तलाशा जा सकता है। गांधी विचारधारा की प्रासंगिकता उनके समय में भी थी और आज भी उतनी ही है। आइए, उनके जीवन सन्देशों को हम आत्मसात करें। स्वयं गांधीजी ने ही कभी कहा था कि उनका जीवन ही सन्देश है। राष्ट्र के एवं राज्यों के विकास, सद्भाव, परस्पर प्रेम और भाईचारे को अपने जीवन में उतारने में गांधी मार्ग ही सर्वथा उत्तम है। मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत ने गांधीजी के आदर्शों को अपनाने पर जोर देते हुए ही प्रदेश में गांधी जन्म शताब्दी वर्ष आयोजन को एक वर्ष और आगे बढ़ाने का महत्ती निर्णय इसीलिए लिया है कि जन-जन उनके जीवन से प्रेरणा लेकर उनके दिए आदर्शों को आत्मसात कर सके। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते गांधीजी के 150वें जन्म शताब्दी वर्ष पर उनके जीवन दर्शन पर 'सुजस' का यह अंक एकाग्र कर प्रकाशित किया जा रहा है। पाठकों की प्रतिक्रिया की अपेक्षा रहेगी।

महेन्द्र सोनी
आई.ए.एस.
आयुक्त, सूचना एवं जनसम्पर्क

महात्मा गांधी की जयंती पर दीपोत्सव

महात्मा गांधी के विचार आज भी प्रासंगिक

राज्यपाल श्री कलराज मिश्र ने कहा है कि सत्य और अहिंसा के बल पर देश की आजादी में अपना सर्वस्व अर्पण करने वाले भारतभूमि पर अवतरित साधारण से मानव मोहन का असाधारण महात्मा बनना यूं ही नहीं संभव होता वरन् यह त्याग, करूणा, दया, अहिंसा जैसे मूल्यों पर आधारित एक संघर्षमयी गाथा की परिणति है। गांधी विचार ही नहीं वरन् व्यवहार भी है।

राज्यपाल श्री मिश्र राजभवन में राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी की 150वीं जयंती के अवसर पर दीपोत्सव का उद्घाटन एवं गांधीजी की पुस्तक मंगलप्रभात का संस्कृत अनुवाद के ई-पुस्तिका के लोकार्पण समारोह को वीडियो कॉन्फ्रेन्स से सम्बोधित कर रहे थे। यह समारोह महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा द्वारा आयोजित किया गया।

राज्यपाल ने कहा कि अपने दार्शनिक विचारों यथा सर्वोदय के माध्यम से महात्मा गांधी समाज के सभी वर्गों के सभी प्रकार से अर्थात् सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक उत्थान की बात करते हैं। सर्वोदय रूपी यह यात्रा पं. दीनदयाल उपाध्याय अन्त्योदय के द्वारा इस विश्वास के साथ आगे बढ़ाते हैं कि जब तक भारत में अंतिम व्यक्ति के चेहरे पर मुस्कान अर्थात् उसका उदय नहीं होगा, तब तक भारत एक खुशहाल एवं आदर्श व्यवस्था का देश नहीं हो सकता।

श्री मिश्र ने कहा कि गांधी जी ने स्वराज का सपना इसलिए देखा था ताकि एक ऐसा राज्य जहां शासक और शासित वर्ग के बीच किसी प्रकार का कोई भेद न हो, एक ऐसी आदर्श व्यवस्था जिसमें कोई भी व्यक्ति भूखा, नंगा, दुखी, विपन्न न हो। यही रामराज्य भी है, इसीलिए बापू दरिद्र नारायण की भी बात करते हैं। गांधी की आर्थिक द्रष्टि पर विचार करने पर ट्रस्टीशिप के रूप में एक आदर्श संकल्पना का दर्शन होता है जिसमें सत्ता के विकेंद्रीकरण की बात कही गई है। बापू का अटल विश्वास है - 'सबै भूमि गोपाल की, सब सम्पत्ति रघुबर के आही।' समूची वसुधा पर उपलब्ध भूमि पर सबका अधिकार है किसी एक का नहीं। गांधी के सर्वोदय में यह भाव चित्रित होता है। वैश्विक आपदा के इस दौर में महात्मा गांधी का दर्शन एवं महान विचार आज भी सभ्यताओं के संघर्ष में जहाँ दया, करुणा, अहिंसा पर आधारित सभ्यता ही बची हुई है, जिसका उदाहरण समूचे विश्व में देखने को मिल रहा है।

राजस्थान की तर्ज पर इंग्लैंड के
अस्पतालों में लगाए जा रहे हैं 'नो मास्क नो एंट्री' के स्टीकर्स

विदेशों में भी छाया राजस्थान सरकार का 'नो मास्क नो एंट्री' स्लोगन

राजस्थान सरकार का 'नो मास्क-नो एंट्री' का स्लोगन पूरी दुनिया में काफी मशहूर हो रहा है। राजस्थान सरकार की जन जागरूकता पहल को अपनाते हुए अब इंग्लैंड के अस्पताल में भी 'नो मास्क-नो एंट्री' के स्टीकर्स लगाए जा रहे हैं।

इस संबंध में वेक्सहम पार्क हॉस्पिटल में काम करने वाली लीड मिडवाइफरी सारा कॉक्सन ने पाली के मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल डॉ. हरीश कुमार को एक ईमेल लिखा है और राजस्थान सरकार द्वारा चलाए जा रहे 'नो मास्क-नो एंट्री' स्लोगन की प्रशंसा की है और अपने अस्पताल में इसी तरह के 'नो मास्क-नो एंट्री' के स्टीकर्स लगवाए हैं। उन्होंने लिखा है कि कोरोना को रोकने में इस तरह के छोटे आइडियाज का आदान-प्रदान काफी उपयोगी साबित हो सकता है। उल्लेखनीय है कि वेक्सहम पार्क हॉस्पिटल नेशनल हेल्थ सर्विस हॉस्पिटल है। यह बकिंघमशायर के वेक्सहम में स्थित है। इसे फ्रिमली हेल्थ एनएचएस फाउंडेशन ट्रस्ट द्वारा चलाया जाता है।

राजस्थान सरकार ने राजस्थान में 2 मार्च, 2020 को कोरोना का पहला केस सामने आते ही सक्रियता दिखाई। शुरू से ही लोगों को मास्क पहनने के लिए प्रेरित किया, बार-बार हाथ धोने और 2 गज की दूरी बनाए रखने का संदेश दिया गया।

लोगों को कोरोना से बचाव के लिए जागरूक करने के उद्देश्य से प्रदेश में 21 जून से कोरोना जन जागरूकता अभियान की शुरुआत की गई। इस अभियान के अंतर्गत राजस्थान सरकार के सूचना एवं जनसंपर्क विभाग ने कोरोना से बचाव के लिए कई नवाचार अपनाए।

हाल ही में गांधी जयंती पर राजस्थान सरकार के स्वायत्त शासन विभाग द्वारा 'कोरोना के विरुद्ध जन आंदोलन' शुरू किया गया। इस आंदोलन के अंतर्गत 'नो मास्क-नो एंट्री' के स्लोगन को प्रमुखता से प्रसारित किया जा रहा है और ज्यादा से ज्यादा लोगों को मास्क वितरित किए जा रहे हैं। सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग द्वारा कोरोना काल में देश का अनूठा और पहला जन जागरुकता अभियान चलाया गया।

सूचना एवं जन सम्पर्क आयुक्त श्री महेन्द्र सोनी के अनुसार मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत के निर्देशों से प्रदेश भर में चलाये जा रहे कोरोना जागरुकता अभियान की सफलता इसी से समझी जा सकती है कि अब यह जन आंदोलन में परिणत हो गया है। मास्क लगाने, दो गज की दूरी रखने, साबुन से बार-बार हाथ धोने और सतर्कता रखते हुए महामारी की चुनौती का सामना किया जा रहा है।

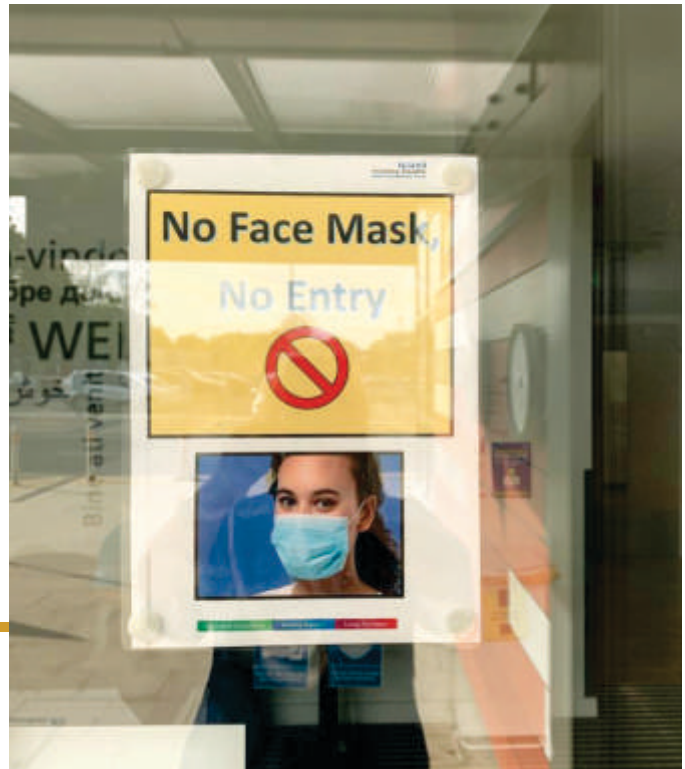

जन आन्दोलन का प्रदेशवासियों में अच्छा असर

मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत ने कहा है कि राज्य सरकार ने जिस मंशा के साथ 'कोरोना के विरूद्ध जन आन्दोलन' तथा 'नो मास्क नो एन्ट्री' अभियान शुरू किया है, इसका प्रदेशवासियों के बीच अच्छा असर हो रहा है। लोग मास्क पहनने और उचित दूरी रखने की पालना के साथ-साथ मास्क वितरण के काम में भी बढ़-चढ़ कर सहयोग कर रहे हैं। उन्होंने निर्देश दिए कि अभियान के दौरान वितरित किए जा रहे मास्क गुणवत्ता-युक्त हों, ताकि संक्रमण को रोकने का उद्देश्य पूरा हो सके।

श्री गहलोत 5 अक्टूबर को मुख्यमंत्री निवास पर प्रदेश में कोरोना संक्रमण की स्थिति और जन आन्दोलन की समीक्षा कर रहे थे। उन्होंने कहा कि कोरोना संक्रमितों की बढ़ती संख्या के दृष्टिगत संक्रमण में कमी लाने तथा आमजन में हैल्थ प्रोटोकॉल की पालना सुनिश्चित करवाने के लिए इस आंदोलन की कल्पना की गई, जिसे लोगों ने खुले दिल से अपनाया है। सरकारी मशीनरी के साथ-साथ गैर-सरकारी संस्थाएं एवं आमजन अभियान में रुचि ले रहे हैं, जिससे यह सही मायनों में जन आन्दोलन बन पाया है।

बैठक में अधिकारियों ने अवगत कराया कि प्रदेश के विभिन्न शहरों से अभियान के बारे में सकारात्मक फीडबैक मिला है। लोगों में मास्क पहनने के प्रति चेतना बढ़ी है तथा आमजन एक-दूसरे को भी कोरोना संक्रमण से बचाव के बारे में जागृत कर रहे हैं। स्थानीय संगठन एवं संस्थाएं आगे आकर मास्क वितरण सहित विभिन्न गतिविधियों में सहभागिता निभा रही हैं।

इस दौरान इस बात पर भी चर्चा की गई कि विशेषज्ञ चिकित्सकों ने आगामी दशहरे एवं दीपावली पर्व के दौरान पटाखों से फैलने वाले प्रदूषण और धुएं के कारण कोरोना संक्रमितों की संख्या बढ़ने एवं इलाज करा रहे मरीजों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ने की आशंका व्यक्त की है। उन्होंने इस संदर्भ में राज्य सरकार को अवगत कराते हुए मांग की है कि इन त्योहारों पर पटाखों के उपयोग को नियंत्रित किया जाए। विशेषज्ञ चिकित्सकों का मानना है कि जो संक्रमित लोग अब ठीक हो चुके हैं, उनके फेफड़ों पर भी कोरोना वायरस का लंबे समय तक असर रहता है। ऐसे लोगों को धुएं और प्रदूषण से बचाना बहुत जरूरी है। इस विषय पर राज्य मानवाधिकार आयोग ने भी राज्य सरकार से जवाब मांगा है।

बैठक में चिकित्सा मंत्री डॉ. रघु शर्मा, चिकित्सा राज्य मंत्री डॉ. सुभाष गर्ग, मुख्य सचिव श्री राजीव स्वरूप, तत्कालीन पुलिस महानिदेशक एवं आरपीएससी के चैयरमेन श्री भूपेन्द्र सिंह, प्रमुख सचिव गृह श्री अभय कुमार, प्रमुख शासन सचिव चिकित्सा एवं स्वास्थ्य श्री अखिल अरोड़ा, सचिव चिकित्सा शिक्षा श्री वैभव गालरिया, स्वायत्त शासन विभाग के सचिव श्री भवानी सिंह देथा, सूचना एवं जनसम्पर्क आयुक्त श्री महेन्द्र सोनी सहित अन्य वरिष्ठ अधिकारी मौजूद थे।

सूचना का अधिकार दिवस पर राष्ट्रीय वेबीनार

'देश की जनता को सूचना के अधिकार जैसे क्रांतिकारी कानून की आवश्यकता थी'

सूचना का अधिकार अधिनियम की पालना में स्थापित 'जन सूचना पोर्टल' के अंतर्गत आने वाले दिनों में ऐसी व्यवस्था लागू की जाएगी, कि लोगों को किसी विभाग से जानकारी लेने के लिए सूचना आवेदन की आवश्यकता ही नहीं पड़े।

देश में सूचना का अधिकार (आरटीआई) अधिनियम, 2005 लागू होने की 15वीं वर्षगांठ के अवसर पर आयोजित एक राष्ट्रीय वेबीनार में मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत ने यह बात कही। उन्होंने कहा कि इस कानून का लागू होना मामूली बात नहीं है। इस क्रांतिकारी कानून के माध्यम से देश के सभी नागरिकों को सूचना प्राप्त कर तथ्यों को जानने का अधिकार दिया गया है।

श्री गहलोत ने कहा कि आरटीआई से पूरे देश की शासन व्यवस्था में पारदर्शिता आई। इसके लिए सूचना अधिकार कार्यकर्ताओं ने संघर्ष किया और कुछ कार्यकर्ताओं को अपनी जान भी गंवानी पड़ी। उन्होंने कहा कि भारत की जनता को इस कानून की आवश्यकता थी। दुनिया के दूसरे देशों में भी ऐसे सूचना अधिकार कानून लागू हुए हैं।

मुख्यमंत्री ने कहा कि राजस्थान के जन सूचना पोर्टल की तर्ज पर महाराष्ट्र और कर्नाटक में भी सूचना पोर्टल तैयार किए जा रहे हैं। इन राज्यों के अधिकारी इसके लिए राजस्थान के अधिकारियों के साथ संपर्क में हैं, यह राजस्थान के लिए हर्ष का विषय है। उन्होंने कहा कि प्रदेश में जवाबदेह प्रशासन के लिए अपने पिछले कार्यकाल में हमारी सरकार ने राजस्थान लोक सेवाओं के प्रदाय की गारंटी अधिनियम, 2011, सुनवाई का अधिकार, 2012 अधिनियम तथा राजस्थान लोक उपापन में पारदर्शिता अधिनियम, 2012 जैसे कानून लागू किए थे। उन्होंने कोविड-19 महामारी के दौरान राज्य सरकार द्वारा आम लोगों को दी गई राहत का भी सोशल ऑडिट कराने की घोषणा की।

वेबीनार के दौरान सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश जस्टिस मदन लोकुर ने विधायकों के स्थानीय विकास निधि (एमएलए एलएडी) की जानकारियां, विधानसभा के प्रश्नों के जवाब, अदालतों में लम्बित प्रकरणों की जानकारी और पुलिस एफआईआर के साथ-साथ प्रकरण की जांच के निस्तारण की प्रक्रिया आदि जन सूचना पोर्टल पर उपलब्ध कराने का सुझाव दिया। उन्होंने प्रदेश में सोशल ऑडिट की व्यवस्था लागू करने और नया जवाबदेही कानून जल्द बनाने की मांग की।

देश के पहले मुख्य केंद्रीय सूचना आयुक्त वजाहत हबीबुल्लाह ने कहा कि राजस्थान सरकार द्वारा शुरू किए गए जन सूचना पोर्टल के जरिए आरटीआई कानून सही मायनों में हर व्यक्ति का अधिकार बन सकता है। उन्होंने कहा कि इस पोर्टल से कानून की धारा-4 को सशक्त रूप में लागू करने का मकसद पूरा होता है। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि लोगों को अधिकाधिक जानकारियां कम से कम मानव हस्तक्षेप के मिल सके। उन्होंने पोर्टल और वेबसाइट पर सूचनाओं का लगातार अपडेट करने पर भी जोर दिया।

वेबीनार के दौरान पूर्व केंद्रीय सूचना आयुक्त श्री श्रीधर आचार्यलु ने भी जन सूचना पोर्टल की तारीफ की और कहा कि इसने आरटीआई अधिनियम की धारा-4 को जीवंत कर दिया है। उन्होंने कहा कि यह पोर्टल लोगों को सशक्त करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम हो सकता है। उन्होंने इसे 'जनता पोर्टल' नाम देते हुए कहा कि दूसरे राज्यों की सरकारों को भी ऐसे पोर्टल स्थापित करने चाहिए।

एक अन्य पूर्व केंद्रीय सूचना आयुक्त श्री शैलेष गांधी ने प्रदेश के जन सूचना पोर्टल और आरटीआई आवेदनों को ऑनलाइन करने की व्यवस्था की जानकारी राज्य के मुख्य सचिव के माध्यम से दूसरे राज्यों के साथ साझा करने और ऐसे पोर्टल शुरू करने में मदद करने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि सूचना आवेदनों पर अपील के बाद प्रकरणों के आयोग में पहुंच जाने पर उनका अधिक समय तक लम्बित रहने से सूचना का अधिकार बेमानी हो जाता है। इसके लिए सरकारों को चाहिए कि वे समय पर समुचित संख्या में सूचना आयुक्त नियुक्त करें।

जानी-मानी सूचना अधिकार कार्यकर्ता श्रीमती अरूणा रॉय ने शासन व्यवस्था में जवाबदेही के लिए पारदर्शिता नीति बनाने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि जन सूचना पोर्टल सरकार के साथ लोगों के संवाद का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। इसकी व्यवस्था को दुरूस्त रखने के लिए राज्य स्तर पर एक सलाहकार समूह अथवा परिषद् का गठन होना चाहिए। उन्होंने महात्मा गांधी नरेगा और कोविड-19 के दौरान दी गई राहत के सोशल ऑडिट का सुझाव दिया। ●

कोरोना वायरस से बचाव के लिए मास्क ही वैक्सीन

चिकित्सा एवं स्वास्थ्य तथा सूचना एवं जनसम्पर्क मंत्री डॉ. रघु शर्मा ने कहा कि कोविड-19 महामारी में आम आदमी को बचाना ही हमारा लक्ष्य है। कोरोना वायरस से बचाव के लिए मास्क ही वैक्सीन है। यह बात आम आदमी को समझनी होगी। इसीलिए सरकार ने पूरे राज्य में एक माह के लिए जन जागरूकता आन्दोलन चलाया है। इस जन आन्दोलन में जनता के सहयोग से ही कामयाबी मिल सकती है। उन्होंने जनप्रतिनिधियों, अधिकारियों, एनजीओ, भामाशाह, समाजसेवियों, एनएसएस, एनसीसी, शिक्षकों से कहा कि इस अभियान को जन-जन तक पहुंचाने में कोई कसर नहीं छोड़ें। हर व्यक्ति को मास्क लगाने के लिए प्रेरित करें।

कोरोना वायरस से बचाव एवं रोकथाम के लिए राज्य सरकार द्वारा शुरू की गई जन आन्दोलन की मुहिम के तहत चिकित्सा एवं स्वास्थ्य एवं जनसम्पर्क मंत्री डॉ. रघु शर्मा ने जागरूकता मोटरसाइकिल रैली को हरी झण्डी दिखाकर रवाना किया। इसके तहत आमजन को कोरोना वायरस के प्रति जागरूक करने का काम किया जाएगा। जन आन्दोलन के लिए राज्य सरकार द्वारा एक करोड़ मास्क बनवाए गए हैं और जरूरत पड़ने पर मास्क की कमी नहीं आने दी जाएगी।

डॉ. शर्मा ने कहा कि राजस्थान में पहला कोरोना पॉजिटिव केस आने के समय इस महामारी से लड़ने के लिए हैल्थ इन्फ्रास्ट्रक्चर नहीं था। लेकिन विगत सात माह में राज्य सरकार ने हैल्थ इन्फ्रास्ट्रक्चर को मजबूत करने का कार्य किया है। आज हम कह सकते हैं कि राजस्थान में पर्याप्त मात्रा में वेंटिलेटर, आईसीयू बेड, ऑक्सीजन सपोर्ट बेड एवं सामान्य बेड की सुविधा है।

डॉक्टर्स के अनुसार अगर राजस्थान की 7 करोड़ जनता एक महीने तक मास्क लगाए तो इस संक्रमण की चैन को तोड़ा जा सकता है। इसलिए सभी लोगो को सार्वजनिक स्थानों पर मास्क लगाना बेहद जरूरी है। इसके साथ ही दो गज की दूरी, साबुन से बार-बार हाथ धोना, सार्वजनिक स्थानों पर नहीं थूंकना की पालना की जाए तो इस महामारी पर काबू पाया जा सकता है।

डॉ. रघु शर्मा ने कहा कि इस महामारी के दौर में सरकार हर कदम पर आमजन के साथ खड़ी है। राजस्थान में इस बीमारी की रिकवरी रेट 84 प्रतिशत है, जो देश के दस बड़े राज्यों में सबसे बेहतर है। मृत्यु दर निरन्तर कम हो रही है। लेकिन हमें सतर्क रहने की जरूरत है। यह वायरस शरीर के अंगों पर बुरा प्रभाव डालता है। इसलिए बचाव ही उपाय है। उन्होंने कहा कि प्लाज्मा थैरेपी भी राज्य में सात स्थानों पर शुरू की गई थी। जिसके परिणाम सुखद रहे हैं। चिकित्सा विभाग में 765 डॉक्टरों की भर्ती पूर्व में की जा चुकी है, 2 हजार डॉक्टर की भर्ती चल रही है। एएनएम एवं जीएनएम के 12 हजार 500 पद, लैब टेक्नीशियन, सहायक रेडियोग्राफर के पद भरे जा रहे हैं। विगत सात माह में राज्य में 38 स्थानों पर टेस्टिंग की सुविधा शुरू की गई है। जिसमें 22 जिले कवर हुए हैं। ●

महात्मा गांधी के प्रत्येक कार्य में अहिंसा का संदेश निहित है

कला एवं संस्कृति मंत्री डॉ. बी.डी. कल्ला ने कहा कि महात्मा गांधी न केवल शारीरिक बल्कि आध्यात्मिक रूप से भी मन, कर्म और वाणी के माध्यम से 'अहिंसा' का पालन करने में विश्वास करते थे। पूरी दुनिया 'गांधी जयंती' को 'अहिंसा दिवस' के रूप में मना रही है। गांधी ने हमेशा यह उपदेश दिया है कि जो काम हथियारों से नहीं किया जा सकता, वह 'अहिंसा' से हासिल किया जा सकता है।

डॉ. कल्ला यहां अंतरराष्ट्रीय शांति दिवस पर आयोजित 'ग्लोबल ई-कॉन्क्लेव ऑन पीस, हार्मनी एंड नॉन-वॉयलेंस को संबोधित कर रहे थे। मुख्य सचिव, श्री राजीव स्वरूप ने कहा कि शांति और अहिंसा हमेशा से ही एक दूसरे के पूरक रहे हैं। आज जब दुनिया साम्राज्यवाद, विस्तारवाद, पूंजीवाद, आतंकवाद और अहंकार के ग्रेनेड पर बैठी है तो ऐसे समय में महात्मा गांधी की परम आवश्यकता है।

कला एवं संस्कृति विभाग की शासन सचिव श्रीमती मुग्धा सिन्हा ने अपने संबोधन के दौरान कहा कि महात्मा गांधी ने पृथ्वी को विश्व शांति का मंत्र दिया था। सत्य से प्रेरित होकर, उन्होंने हमें विश्व विजय की मशीनरी दी और हमेशा पाप से मुक्ति के लिए कहा।

उद्घाटन भाषण देते हुए, एकता परिषद के अध्यक्ष, श्री पी.वी. राजगोपाल ने कहा कि जिस दुनिया में लोग महात्मा गांधी की शिक्षाओं को भूल रहे हैं, कोविड ने हमें उनकी शिक्षाओं का पालन करने और उनके सिद्धांतों से सीखने की याद दिलाई है।

अपने मुख्य भाषण में, लंदन से जुड़े भारतीय ब्रिटिश-कार्यकर्ता श्री सतीश कुमार ने कहा कि अहिंसा और महात्मा गांधी एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। लेकिन महात्मा गांधी के लिए, अहिंसा केवल प्रतिरोध या विरोध का एक माध्यम नहीं, यह उनके लिए जीवन जीने का एक तरीका था।

फ्रांस से जुड़े कृषि अर्थशास्त्री और शिक्षक, श्री जीन लुईस बाटो, ने कहा कि वैश्वीकरण के कारण धन संचय, प्रतिस्पर्धा और प्राकृतिक संसाधनों, जैव विविधता एवं जलवायु का विनाश के दौर में एक नया प्रतिमान बनाने की आवश्यकता है।

इटैलियन सोशल-एक्टिविस्ट, सोनिया देओटो ने कहा कि 'अहिंसा' एक मौलिक अभिव्यक्ति है, जिसका अर्थ है संवाद, सहानुभूति और हमारे दिलों को शुद्ध करने के लिए आत्म-परिवर्तन की प्रक्रिया। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि महात्मा गांधी ने अहिंसा के रचनात्मक कार्यक्रम के माध्यम से स्वराज हासिल किया, जो विविधता में एकता के आधार पर स्थापित किया गया था।

दक्षिण अफ्रीका से जुड़े डॉ. रामफेले माताला ने कहा कि महात्मा गांधी ने हमें याद दिलाया कि सभी की जरूरतों के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हैं, लेकिन ये सभी के लालच के लिए पर्याप्त नहीं हैं। कोविड - 19 एक ऐसा विघटनकारी अनुस्मारक है कि हम अनेक ऐसे संकटों का सामना कर रहे हैं जो खुद हमारे द्वारा लाया गया है।

महात्मा गांधी कैनेडीयन फाउंडेशन फॉर वर्ल्ड पीस की सह-अध्यक्ष और कनाडा से जुड़ी हुई रीवा जोशी ने कहा कि राजस्थान का शांति और अहिंसा विभाग शिक्षा को सबसे आगे रखते हुए गांधी के विचारों को लोगों तक पहुंचाने के लिए प्रभावी ढंग से काम कर रहा है।

इसके अलावा, मंत्री द्वारा पोस्टकार्ड 'गांधी और विज्ञान' का अनावरण किया गया। गांधी के जीवन पर हवामहल, आमेर और अल्बर्ट हॉल में एक लेजर शो दिखाया गया। इसके अलावा वीसी के माध्यम से गांधी के प्रसिद्ध भजन भी प्रस्तुत किए गए। ●

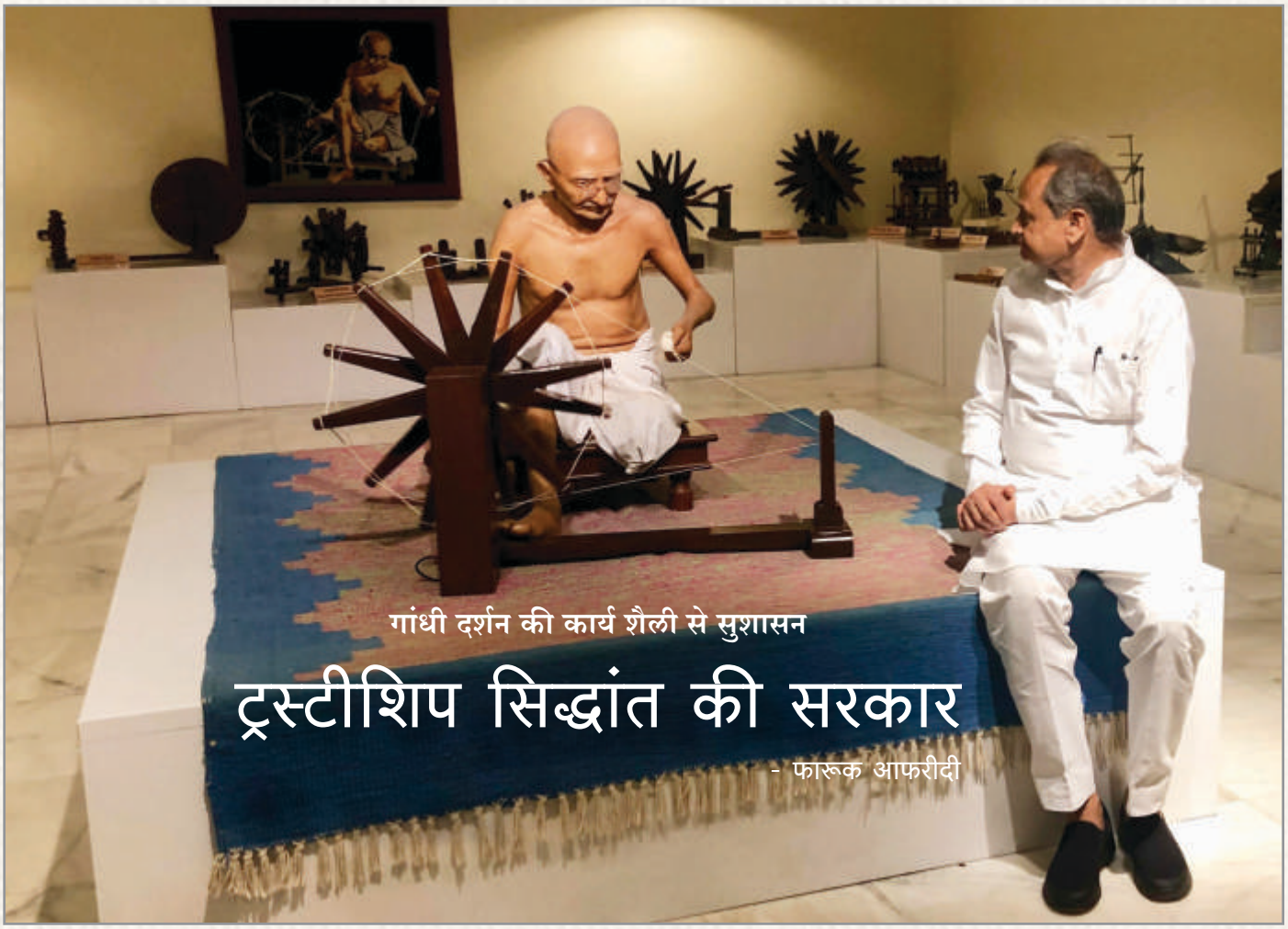

गांधी दर्शन की कार्य शैली से सुशासन

ट्रस्टीशिप सिद्धांत की सरकार

- फारूक आफरीदी

महात्मा गांधी का न्यासिता (ट्रस्टीशिप) का सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है। इस सिद्धांत के आधार पर विश्व शांति, न्याय और आर्थिक समानता के लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है। उनके ट्रस्टीशिप सिद्धांत को आदर्श मानते ही राजस्थान में वर्तमान सरकार कार्य कर रही है। गांधीजी के शब्दों में ट्रस्टीशिप ऊँच-नीच का भेद समाप्त कर आर्थिक समानता एवं अहिंसक स्वाधीनता की सर्वकुंजी है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत में सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, नैतिकता, सहिष्णुता और सर्वधर्म समभाव आदि सभी को ऐसे समाहित किया गया है कि वे एक-दूसरे के अभिन्न अंग लगते हैं। इसमें एक प्रकार के पवित्र अर्थशास्त्र के दर्शन होते हैं। गांधीजी ने आजादी के बाद जिस प्रकार के लोक शासन की परिकल्पना की थी, वैसा अक्षरश: तो संभव नहीं हो पाया किंतु गांधीवादी विचारों में आस्था रखने वाले शासकों ने उसके अनुरूप प्रयास अवश्य किए और कमोबेश आज भी किए जा रहे हैं।

श्री अशोक गहलोत राजस्थान के ऐसे मुख्यमंत्री हैं, जो गांधी जी के विचारों में गहरी आस्था रखते हैं और स्वयं भी सादगी भरा जीवन जीते हैं। गांधी दर्शन उनकी कार्य शैली में झलकता है। वे आमजन की सेवा को केन्द्र में रखते हुए कार्य करने के प्रबल पक्षधर हैं। जनता के अटूट विश्वास के कारण वे तीसरी बार मुख्यमंत्री बने हैं। उनके नेतृत्व में सरकार की जनकल्याणकारी नीतियों और कार्यक्रमों में गांधीजी के जीवन मूल्यों के अनुरूप आमजन की सेवा की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। उनके नेतृत्व में बनी सरकार ने हर बार अपनी जनता से किए गए वायदों के जन घोषणा पत्र को सरकारी दस्तावेज बनाकर उसका क्रियान्वयन सुनिश्चित किया है। सामान्यत: ऐसा कदाचित ही होता है कि

राजनैतिक दल अपने चुनाव घोषणापत्र को सरकारी दस्तावेज बनाकर उस पर अमल करें, किंतु अशोक गहलोत ने इसे चरितार्थ कर दिखाया। आमतौर पर चुनाव के बाद घोषणा पत्रों का कभी जिक्र नहीं होता। इसके मायने यह है कि यदि किसी में जन भावनाओं का सम्मान करने की भावना हो तो यह मुश्किल नहीं है। सरकार यदि संवेदनशीलता, पारदर्शिता और जवाबदेही में विश्वास करती है तो फिर उसे निभाने में भी अग्रणी रहती है। इससे आमजन में एक नए विश्वास का संचार होता है। सरकार ने अपने वादे के अनुरूप जनघोषणा पत्र 2018 के क्रियान्वयन एवं परिवीक्षण के लिए मंत्रिमंडलीय उप समिति भी गठित की है।

वर्तमान राज्य सरकार गांधी जी द्वारा दिए गए इस जंतर के अनुरूप जनसेवा कर रही है– ''जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे तो यह कसौटी आजमाओ–जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा है उसकी झलक याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उसे वह अपने जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा?''

गांधीजी ने ट्रस्टीशिप के सिद्धांतों का जिक्र करते हुए कहा था– ''मेरे विचार में भारत और भारत ही क्यों सारी दुनिया का आर्थिक गठन ऐसा होना चाहिए कि उसमें किसी को रोटी, कपड़े की तंगी ना रहे। दूसरे शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति को जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त काम उपलब्ध होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को संतुलित भोजन, रहने को ठीक–ठाक मकान, अपने बच्चों की शिक्षा के लिए सुविधाएं और पर्याप्त चिकित्सा व्यवस्था होनी चाहिए।'' इसका तात्पर्य यह है कि गांधीजी के इस विचार के अनुरूप प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से जीवन में आगे बढ़ने के अवसर मिलने चाहिए। इस दृष्टि से राज्य सरकार ने हमेशा पहल की है और सभी वर्गों के उत्थान के गंभीर प्रयास किए हैं। सामान्य वर्ग से लेकर पिछड़ों, दलितों और वंचितों की सेवा सरकार की प्राथमिकता में है।

वर्तमान सरकार ने आर्थिक पिछड़ा सामान्य वर्ग विकास बोर्ड का गठन कर इस वर्ग के उत्थान और कल्याण के लिए प्रभावी नीति बनाने का जनता से किया वायदा 20 मई, 2020 को पूरा किया। आर्थिक रूप से पिछड़े सामान्य वर्ग के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण दिए जाने में उपस्थित सभी बाधाओं को दूर कर 8 लाख रुपए की सीमा को ही आरक्षण का आधार रखने का ऐतिहासिक फैसला सरकार ने किया। पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकार ने आर्थिक आधार पर 14 प्रतिशत आरक्षण देने का जो प्रस्ताव केंद्र सरकार को भेजा था उसे लागू कराने के लिए प्रभावी प्रयास किए जा रहे हैं। इस प्रस्ताव को यदि केन्द्र की स्वीकृति मिले तो पूरे देश के सामान्य वर्ग को इसका लाभ मिल सकता है। सुविदित है कि अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्यपिछड़ा वर्ग के साथ सामान्य वर्ग का बहुत बड़ा तबका है जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा और आरक्षण से वंचित रहा है, अब तक शिक्षा सुविधाओं और आजीविका के संकट से जूझ रहा है। इस फैसले से ऐसे युवाओं को जीवन में रोजगार के बड़े अवसर मिलने का रास्ता साफ हुआ है।

मुख्यमंत्री गहलोत के अनुसार ''देश में यह अपनी तरह का एक विशिष्ट नवाचार है कि जन घोषणा पत्र में किए गए वादों की क्रियान्विति

का रिपोर्ट कार्ड गांधी जयंती (2 अक्टूबर, 2020) के अवसर पर हम जनता के समक्ष पेश कर रहे हैं। हमारी सरकार ने हमेशा अपने कार्यकाल के दौरान जनता से किए गए वादों को साकार करने के कार्य को पुनीत लोकतांत्रिक कर्त्तव्य माना है।'' निश्चय ही इस कार्यशैली से लोकतंत्र को मजबूती मिलती है।''

राज्य सरकार ने अपने 2 वर्ष से भी कम समय में 501 में से 252 अर्थात् पचास प्रतिशत वादों को क्रियान्वित कर दिखाया है। इसके साथ ही 173 वादें (35 प्रतिशत) की क्रियान्विति प्रगतिरत है। शेष सतत् प्रक्रिया में है। वही सरकार जनप्रिय होती है जो कथनी और करनी में अंतर नहीं करे। इस दृष्टि से गहलोत सरकार पूर्ण विश्वसनीयता के साथ प्रदेशवासियों की विनम्र सेवा कर रही है।

भारत कृषि प्रधान देश है। अन्नदाता किसान देश की प्राणवायु है। हाड़ तोड़ परिश्रम करने और जीवन में पग–पग पर अनेक कष्ट उठाकर भी देश का पेट पालने वाले किसानों के हितों को संरक्षण प्रदान करना सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। केंद्र की वर्तमान सरकार की गलत नीतियों के कारण पिछले कई वर्षों से किसान परेशान हाल रहा है। कर्ज में डूबे अनेक किसानों को आत्महत्या तक करने को मजबूर होना पड़ता है। वर्तमान राज्य सरकार ने सत्ता संभालने के 10 दिनों में किसानों के कृषि ऋण माफी का वादा किया लेकिन 2 दिनों में ही उसे पूरा कर दिखाया, जो उसके दृढ़ संकल्प का साक्षी है। प्रदेश के 20.50 लाख किसानों के 7692 करोड़ रुपए के अल्पकालीन फसली ऋण माफ कर दिए गए। प्रदेश के 28,016 सीमांत एवं लघु किसानों के 290.14 करोड़ रुपए के मध्य एवं दीर्घकालीन ऋण माफ कर दिए गए। इससे

किसानों की लाखों बीघा कृषि भूमि रहन से मुक्त हो सकी। यही नहीं 10 लाख नए किसानों को ब्याज मुक्त सहकारी ऋण वितरित किए गए। किसानों के काम आने वाली बिजली की दरों में 5 वर्षों तक कोई बढ़ोतरी नहीं करने जैसा ऐतिहासिक फैसला लिया गया। बड़ी संख्या में नए कृषि कनेक्शन दिए गए। इसके अलावा भी अनेक नवाचार किए गए जिनका किसानों और पशुपालकों को निरन्तर लाभ मिल रहा है। इससे सरकार की गांधी ट्रस्टीशिप में विश्वास की प्रतिध्वनि सुनाई देती है।

गहलोत शासन इन मायनों में भी महत्वपूर्ण है कि जनता के हक में लिए जाने वाले तमाम फैसले विषय-विशेषज्ञों की राय और संबंधित पक्षों से गहन विमर्श के बाद लिए जाते हैं। यहां तक कि बजट बनाने से पूर्व किसानों, श्रमिकों, महिलाओं, अनुसूचित जाति/जनजाति, कर्मचारी, व्यापारी, उद्यमियों सहित सभी वर्गों की राय जानकर उनके महत्त्वपूर्ण सुझावों को उसमें सम्मिलित किया जाता है। हाल ही जब कोरोना महामारी का प्रकोप आया तो इससे बचाव के लिए भी मुख्यमंत्री ने सभी राजनैतिक दलों, ग्राम पंचायत स्तर से लेकर जिला परिषद तक के जन प्रतिनिधियों, विधायकों, सांसदों समेत सामाजिक-धार्मिक नेताओं, उद्यमियों, चिकित्सा विशेषज्ञों के साथ सफाई कर्मियों और आमजन तक की राय से फैसले लिए और उनके सुझावों के आधार पर रणनीति तैयार की। इसका परिणाम यह रहा कि लॉकडाउन और उसके बाद भी लोगों को किसी प्रकार की असुविधा का सामना नहीं करना पड़ा। कोरोना उपचार की बात करें तो राजस्थान मॉडल की देश और दुनिया में सराहना हुई। राजस्थान उन राज्यों में से है जो कोरोना संक्रमितों के स्वस्थ होने में अग्रणी रहा वहीं मृत्युदर भी सबसे कम मात्र एक प्रतिशत रही। जनता की सरकार, जनता के लिए, जनता द्वारा शासित हो, यही लोकतंत्र की मूल भावना है। सच्चे अर्थों में इसकी महत्ता इसी में है कि जनता की राय से सभी फैसले हों। उस पर फैसले थोपे न जाएं। यही लोक शासन का सबसे बड़ा गुण है।

सरकार जब शासन में पारदर्शिता की बात करती है तो यह पारदर्शिता दिखाई भी पड़नी चाहिए। राज्य सरकार इस विश्वास पर भी खरी उतर रही है और अनेक फैसले इसके साक्षी बन रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र हो या शहरी आम लोगों को अपने कामों के लिए भटकना न पड़े। यह व्यवस्था करना सरकार का दायित्व है। इस दृष्टि से सरकार ने कई नवाचार किए जिसका लाभ आमजन को मिलने लगा है। सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार विभाग द्वारा प्रथम चरण में 15 अगस्त, 2020 से मूलनिवास प्रमाण पत्र सहित अन्य दस्तावेजों की निर्धारित शुल्क के आधार पर eMitra@Home डिलेवरी प्रारंभ कर दी गई है। इसका भी सरकार ने अपने घोषणा पत्र में वादा किया था। किसानों से जुड़े मामले को प्राथमिकता देते हुए राज्य सरकार ने 184 तहसीलों में जायद और रबी 2076 में ऑनलाइन गिरदावरी की व्यवस्था की वर्तमान में ऑनलाइन हो चुकी 235 तहसीलों में खरीफ संवत 2077 की गिरदावरी की जा रही है।

सरकार में आने से पहले लोगों की समस्याओं को शासन तक

पहुंचाने और उनके समाधान के लिए सरकार की प्रतिबद्धता को दर्शाने के लिए मुख्यमंत्री कार्यालय के अधीन एक टोल फ्री कॉल सेंटर का वायदा किया गया था। इसके अनुसरण में हेल्पलाइन 181 टोल फ्री काल सेंटर के रूप में संपर्क पोर्टल के साथ जोड़ते हुए राजस्थान संपर्क पोर्टल पर जनवरी, 2019 से अब तक 29 लाख यानी 98 प्रतिशत परिवादों का निपटारा किया गया।

लोकतंत्र में सबको अभिव्यक्ति का अधिकार है लेकिन ऐसे उदाहरण भी मिल जाएंगे जब अभिव्यक्ति की आजादी को कुचलने के प्रयास हुए हैं। प्रदेशवासियों ने वे दिन भी देखें हैं जब उनकी कहीं सुनवाई नहीं होती थी। यह सरकार सभी को अभिव्यक्ति का अधिकार देती है और उसकी आवाज पर फैसले भी लेती है। विधानसभा चुनाव के दौरान यह भी वादा किया गया था कि सामान्यत: विभिन्न संगठन अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन करते हैं। उनके आन्दोलन करने से शहर का सम्पूर्ण यातायात ठप हो जाता है। इसे मद्देनजर रखते हुए बड़े शहरों में प्रतिरोध और आन्दोलन के लिए स्थान चिन्हित किए जाएंगे। सरकार ने इस वादे को निभाते हुए प्रदेश के 24 जिलों में आन्दोलन के लिए स्थान चिह्नित कर दिए हैं।

महात्मा गांधी सदैव सुशासन की बात करते थे जिसमें सभी नागरिक प्रसन्नतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें, उनकी समस्याओं की सुनवाई हो और उन्हें कम से कम कठिनाइयों का सामना करना पड़े। कानून व्यवस्था बनी रहे और अपराधियों में भय हो तथा नागरिक अपने को सुरक्षित अनुभव करें। इस दृष्टि से वर्तमान सरकार ने कई नवाचार किए हैं जिनमें ई गवर्नेंस प्रमुख है। ई-गवर्नेंस पारदर्शिता का सबसे बड़ा माध्यम है। हर ग्राम पंचायत स्तर पर राजीव गांधी सेवा केन्द्र इस दिशा में काम कर रहे हैं।

प्रदेश में भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए विशेष अभियान चलाए जा रहे हैं और भ्रष्टाचार निरोधक विभाग को और अधिक प्रभावी बनाया गया है जिसके बहुत कारगर नतीजे सामने आए हैं। इससे भ्रष्टाचार पर नकेल कसने में मदद मिली है। भ्रष्टाचार में लिप्त कई बड़े अधिकारी पहली बार पकड़े गए हैं।

किसी भी राज्य में विकास की पहली शर्त यह है कि वहां शांति, सद्भाव और सहिष्णुता का वातावरण हो। राज्य सरकार समाज में शांति सद्भाव और सहिष्णुता की दृष्टि से सांप्रदायिकता, वैमनस्यता और धार्मिक उन्माद फैलाने वाले असामाजिक तत्वों पर काबू पाने में भी सफल रही है। प्रदेश में सामाजिक समरसता, धार्मिक सौहार्द कायम रखने के साथ मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारों, चर्चों सहित सभी धार्मिक स्थलों की सुरक्षा के पुख्ता प्रबंध किए गए हैं। बालिकाओं और महिलाओं की सुरक्षा एवं उनके प्रति अपराधों से निपटने के लिए विशेष कार्य योजना के वादे के तहत राज्य के सभी 40 पुलिस जिलों में इन्वेस्टिगेशन यूनिट फॉर क्राइम अगेंस्ट वूमन एंड चाइल्ड की स्थापना की गई है। वृद्धजनों एवं महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित की गई है।

आमजन की सुरक्षा की दृष्टि से अभय कमांड एंड कंट्रोल सेंटर

परियोजना के अंतर्गत 4101 सीसीटीवी कैमरे लगाए गए हैं। शराब तस्करी के 10,571 प्रकरण दर्ज कर 10,575 लोगों को गिरफ्तार किया गया। सभी जिलों में विशेष टीमों का गठन किया गया। शराब बिक्री का समय रात्रि 8 बजे तक रखा गया है और शराब विक्रय के लिए दुकानों की संख्या भी घटाई गई है। इससे जहां अपराधों में कमी आई हैं वहीं महिलाओं को बड़ी राहत मिली है।

ग्राम स्वराज्य की अवधारणा यही है कि भारत का प्रत्येक गांव आत्मनिर्भर हो। गांधी जी के लिए सच्ची आजादी का अर्थ यह है जिसमें हर व्यक्ति को राजनैतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक आजादी का अनुभव हो। इस दृष्टि से राज्य सरकार वचनबद्धता के साथ कार्य कर रही है। राज्य में ग्रामीण विकास और पंचायतराज को मजबूत बनाया गया। पंचायतों के चुनाव समयबद्ध कराना सुनिश्चित किया।

शासन के कार्यों में पारदर्शिता लाने के लिए श्री अशोक गहलोत के नेतृत्व में जब पहली बार वर्ष 1998 में राज्य सरकार गठित हुई तो उन्होंने प्रदेश की जनता को ''सूचना का अधिकार'' देकर एक नई मिसाल कायम की जिसे बाद में केन्द्र की डॉ. मनमोहन सिंह सरकार ने राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया। श्री गहलोत जब दूसरी बार मुख्यमंत्री बने तो उन्होंने प्रदेश की जनता को मुफ्त दवाइयों और उपचार का तोहफा दिया। तीसरी बार सरकार में आते ही मुख्यमंत्री नि:शुल्क दवा योजना और नि:शुल्क जांच योजना का विस्तार करते हुए इसमें दवाइयों की संख्या और जांचों की संख्या बढ़ाई गई। इसमें गंभीर रोगों के लिए उपचार और जांचों को भी शामिल किया गया। इस योजना में गरीब, अमीर सब वर्गों को समान रूप से राहत प्रदान करना अपने आप में एक अप्रतिम उदाहरण है। इसी प्रकार वर्तमान में कोविड-19 के तहत गंभीर रोगियों का जीवन बचाने के लिए 40 हजार रुपए कीमत तक के इंजेक्शन मुफ्त देने का प्रावधान किया जो पीड़ित मानवता की बड़ी सेवा है। इस प्रकार राज्य सरकार की कार्यशैली गांधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत के अनुरूप जान पड़ती है, जिसमें सबका हित निहित है।

गांधीजी ने ट्रस्टीशिप की एक ऐसी क्रांतिकारी अवधारणा दी थी जिसमें अमीरों को स्वेच्छा से त्याग एवं सेवा की आध्यात्मिक भावना से अपनी अतिरिक्त आय और संपत्ति का स्वामित्व नैतिक ट्रस्टी की हैसियत से रखना था ताकि उसका उपयोग उदात्त भाव से समाज के कल्याण में किया जा सके। वर्तमान में 'कॉरपोरेट्स का सोशियल रिस्पांसिबिलिटी'

फंड शायद इस उद्देश्य से लागू किया गया। इसी के तहत कॉरपोरेट्स अपनी आय का कुछ हिस्सा शिक्षा, चिकित्सा, दिव्यांगों की सेवा जैसे सामाजिक सरोकारों पर व्यय करते हैं। हाल ही कोरोना महामारी का मुकाबला करने के लिए मुख्यमंत्री श्री गहलोत ने जब इस वर्ग से सहयोग की अपील की तो प्रदेश के अनेक उद्यमी आगे आए और उन्होंने 'कोविड-19 मुख्यमंत्री राहत कोष' में उदारता पूर्वक सहयोग किया।

ट्रस्टीशिप सिद्धांत के तहत गांधीजी लोगों के हृदय परिवर्तन में बहुत आस्था रखते थे। उन्हें विश्वास था कि समाज में जागरूकता के माध्यम से ऐसा वातावरण संभव है जहां व्यक्ति अपने परिवार की तरह ही पूरे समाज को अपना समझे और आवश्यकता के अनुसार उपयोग के बाद अपनी संपत्ति को जरूरतमंद लोगों के उपयोग में खर्च कर सके।

गांधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त के अनुरूप सरकार और निजी क्षेत्र की भागीदारी से प्रदेश के चहुंमुखी विकास के लिए बड़े कदम उठाए गए हैं। केयर्न एनर्जी के सहयोग से राज्य में तेल का उत्पादन, वेदान्ता की सहभागिता से हिन्दुस्तान जिंक के माध्यम से कीमती खनिजों का खनन और चांदी का उत्पादन कर राजस्थान की तकदीर और तस्वीर बदली जा रही है। चांदी उत्पादन में भारत विश्व का छठा बड़ा उत्पादक देश है जिसमें राजस्थान का बड़ा योगदान है। केयर्न वेदान्ता के सहयोग से बाड़मेर-सांचोर बेसिन में लगभग एक लाख 20 हजार बैरल प्रतिदिन कच्चा तेल और करीब 28 लाख घनमीटर बैस का उत्पादन हो रहा है। इससे राज्य सरकार को प्रतिमाह 165 करोड़ रुपए का राजस्व मिल रहा है। राज्य सरकार की महत्त्वकांक्षी पचपदरा रिफाइनरी जिस दिन पूरी हो जाएगी तब तेल शोधन के साथ ही प्रदेश में पेट्रो केमिकल उद्योगों की स्थापना से युवाओं को रोजगार मिलने का मार्ग प्रशस्त होगा।

गांधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त से आने वाले समय में हमारे समाज की आर्थिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति में क्रान्तिकारी बदलाव दृष्टिगोचर होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। ●

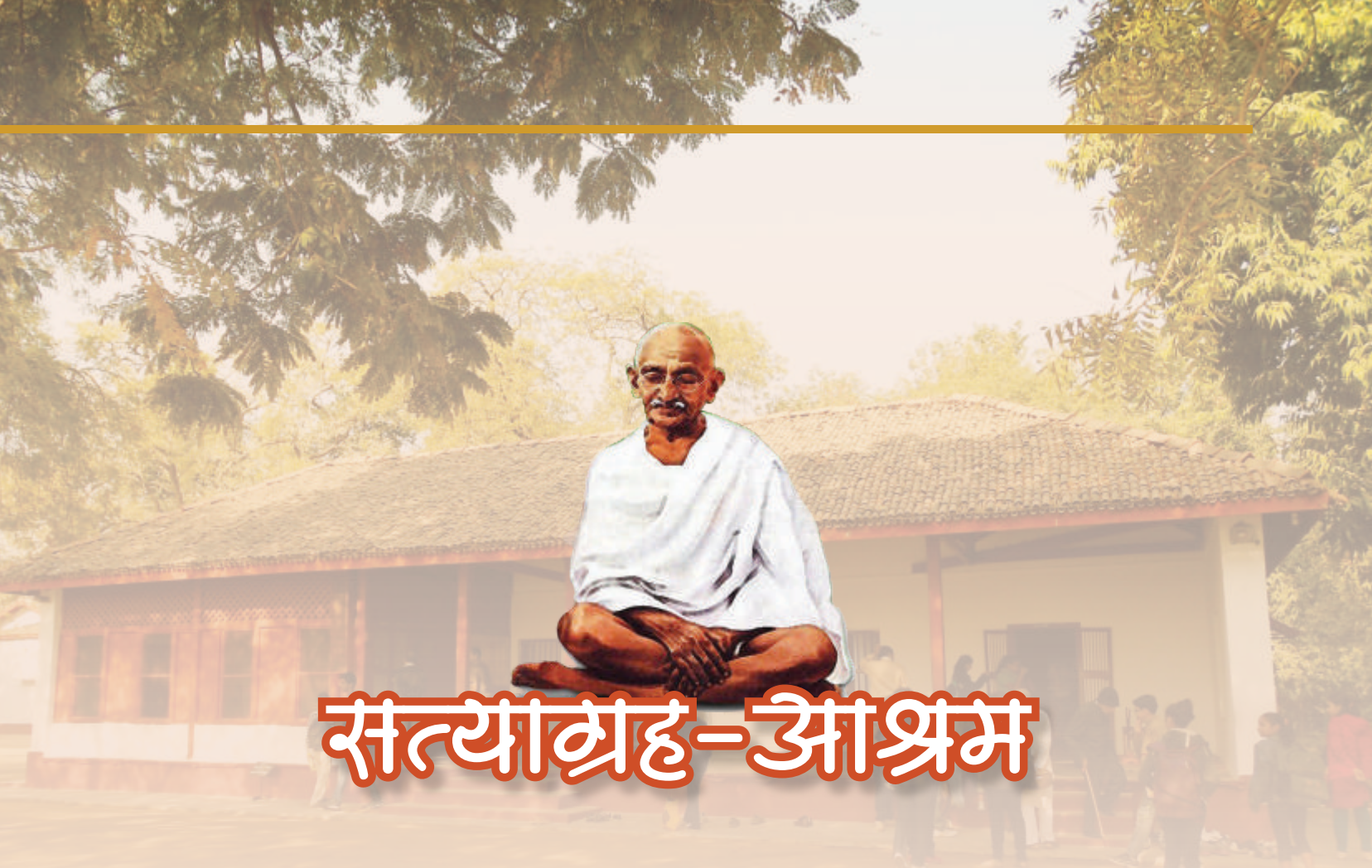

सत्याग्रह-आश्रम

अहमदाबाद पर मेरी नजर टिकी थी। गुजराती होने के कारण मैं मानता था कि गुजराती भाषा द्वारा मैं देश की अधिक से अधिक सेवा कर सकूंगा। यह भी धारणा थी कि चूंकि अहमदाबाद पहले हाथ की बुनाई का केंद्र था, इसलिए चरखे का काम यही अधिक अच्छी तरह से हो सकेगा। साथ ही, यह आशा भी थी कि गुजरात का मुख्य नगर होने के कारण यहां के धनी लोग धन की अधिक मदद कर सकेंगे।

अहमदाबाद के मित्रों के साथ मैंने जो चर्चाएं की, उनमें अस्पृश्यों का प्रश्न भी चर्चा का विषय बना था। मैंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि यदि कोई योग्य अंत्यज भाई आश्रम में भर्ती होना चाहेगा तो मैं उसे अवश्य भर्ती करूंगा।

'आपकी शर्तों का पालन कर सकने वाले अंत्यज कौन रास्ते में पड़े है?' यों कहकर एक वैष्णव मित्र ने अपने मन का समाधान कर लिया और आखिर में अहमदाबाद में बसने का निश्चय हुआ।

मकानों की तलाश करते हुए कोचरब में श्री जीवणलाल बारिस्टर का मकान किराए पर लेने का निश्चय हुआ। श्री जीवणलाल मुझे अहमदाबाद में बसाने वालों में अग्रगण्य थे।

तुरंत ही प्रश्न उठा कि आश्रम का नाम क्या रखा जाए? मैंने मित्रों से सलाह की। कई नाम सामने आए। सेवाश्रम, तपोवन आदि नाम सुझाए गए थे। सेवाश्रम नाम मुझे पसंद था, पर उससे सेवा की रीति का बोध नहीं होता था। तपोवन नाम पसंद किया ही नहीं जा सकता था, क्योंकि यद्यपि मुझे तपश्चर्या प्रिय थी, फिर भी यह नाम बहुत भारी प्रतीत हुआ। हमें तो सत्य की पूजा करनी थी, सत्य की शोध करनी थी, उसी का आग्रह रखना था, और दक्षिण अफ्रीका में मैंने जिस पद्धति का उपयोग किया था, उसका परिचय भारतवर्ष को कराना था तथा यह देखना था कि उसकी शक्ति कहां तक व्यापक हो सकती है। इसलिए मैंने और साथियों ने सत्याग्रह-आश्रम नाम पसंद किया। इस नाम से सेवा का और सेवा की पद्धति का भाव सहज ही प्रकट होता था।

आश्रम चलाने के लिए नियमावली की आवश्यकता थी। अतएव मैंने नियमावली का मसविदा तैयार करके उस पर मित्रों की राय मांगी। बहुत सी सम्मतियों में से सर गुरुदास बैनर्जी की सम्मति मुझे याद रह गई है। उन्हें नियमावली तो पसंद आई, पर उन्होंने सुझाया कि व्रतों में नम्रता के व्रत को स्थान देना चाहिए। उनके पत्र की ध्वनि यह थी कि हमारे युवक वर्ग में नम्रता की कमी है। यद्यपि नम्रता के अभाव का अनुभव मैं जगह-जगह करता था, फिर भी नम्रता को व्रतों में स्थान देने से नम्रता के नम्रता न रह जाने का भय लगता था। नम्रता का संपूर्ण अर्थ तो शून्यता है। शून्यता की प्राप्ति के लिए दूसरे व्रत हो सकते हैं। शून्यता मोक्ष की स्थिति है। मुमुक्ष अथा सेवक के प्रत्येक कार्य में नम्रता – अथवा निरभिमानता – न हो तो वह मुमुक्ष नहीं है, सेवक नहीं है। वह स्वार्थी है, अहंकारी है। आश्रम में इस समय लगभग तेरह तमिल भाई थे। दक्षिण अफ्रीका से मेरे साथ पांच तमिल बालक आए थे और दूसरे यहीं के थे। लगभग पच्चीस स्त्री-पुरुषों से आश्रम का आरंभ हुआ था। सब एक रसोई में भोजन करते थे और इस तरह रहने की कोशिश करते थे कि मानों एक ही कुटुंब के हों। ●

- मोहनदास करमचंद गांधी
(आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' से)

गांधी की प्रासंगिकता

- राजीव कटारा

गांधीजी प्रासंगिक नहीं हैं? उनका रामराज्य का विचार ही यूटोपिया साबित हुआ। हिंद स्वराज की ज्यादातर बातें लागू नहीं की जा सकतीं। उनके समय में ही नेहरू जी ने उसे खारिज कर दिया था। गांधीजी ने 'ये कहा था। ये नहीं हुआ।' 'वो कहा था? वो नहीं हुआ।' वह चाहते थे कि देश का बंटवारा न हो। लेकिन वह भी हो गया। वह चाहते थे कि देश में सामाजिक सद्भाव बना रहे। वह भी नहीं बना रहा। हिंदू-मुसलमान मिल कर रहें, वह भी नहीं हुआ। उनके देश के नेता बड़े-बड़े बंगलों में न रहें। कांग्रेस पार्टी भंग हो जाए। आजादी मिलने के साथ ही उसकी भूमिका खत्म हो गई। कांग्रेस चलती रही। उस वक्त के वायसराय रीगल को वह बड़ा अस्पताल बनाना चाहते थे। लेकिन वह राष्ट्रपति भवन बना। वह गांव को विकास के केंद्र में रखना चाहते थे। लेकिन केंद्र में रहा शहर। वह सत्ता का विकेंद्रीकरण चाहते थे, लेकिन कुल मिला कर केंद्रीकृत रही सत्ता। फैलाव की जगह सिमटती चली गई सत्ता।

अब गिनाते चले जाइए। और साबित कर दीजिए कि गांधी तो प्रासंगिक नहीं हैं। वह अपने समय में ही नाकाम हो चुके थे। तमाम नाकामियों की गिनती करते हुए हम कुछ भी कह सकते हैं? लेकिन क्या किसी शख्सियत की नाकामियां ही सब कुछ होती हैं। क्या सिर्फ कामयाबियां ही साबित करती हैं कि कोई शख्स प्रासंगिक है या नहीं।

सो, इस तरह देखने की कोशिश खूब हुई है गांधीजी को। लेकिन क्या यह महज देह को देखने जैसा नहीं है। सिर्फ शरीर पर ही बात करना नहीं है। ये सब दैहिक चीजें हैं। महज शरीरी हैं। लेकिन शरीर से परे भी पूरी दुनिया होती है। अगर वह नहीं होती तो हम उनके जाने के 72 साल बाद भी उनके प्रासंगिक होने की बात नहीं कर रहे होते। गांधीजी के मरण के साथ क्या उनका विचार भी चला गया?

एक बेहद खूबसूरत कार्टून मार्टिन लूथर किंग जूनियर की हत्या पर याद आता है। यह 1968 की बात है। 'शिकागो सन टाइम्स' में बिल मॉल्डिन ने वह जबर्दस्त कार्टून बनाया था। मार्टिन लूथर की हत्या हो गई है। उसमें गांधीजी हंसते हुए मार्टिन लूथर से कह रहे हैं। 'ये समझते हैं कि इन्होंने हमारी हत्या कर दी।' न गांधीजी की हत्या से उनकी बात खत्म हुई। न उनका विचार खत्म हुआ। चाहना भी खत्म नहीं हुई। न मार्टिन लूथर किंग को मार देने से उनके विचार और उनके संदेश पर कोई असर पड़ा।

हत्याओं से तो हम महज शरीर को मार सकते हैं। उस विचार का क्या करेंगे जो शरीर से परे है। उस आत्मा का क्या करेंगे, जिसे शरीर के साथ मारा नहीं जा सकता। आत्मा अजर अमर है। यह गीता कहती है। ये जो विचार है, यही तो आत्मा है। और उसे कैसे खत्म किया जा सकता है। उसे तो किसी हथियार से मारा नहीं जा सकता। शायद इसीलिए हमारे यहां शब्द की पहली सीढ़ी को अक्षर कहते हैं। उसका क्षर हो ही नहीं सकता। विचार के शब्द और उसकी आत्मा को मारा नहीं जा सकता। अगर विचार को मारा नहीं जा सकता, तो वह प्रासंगिक है। अगर हमारा विचार महज शरीरी है, तो उसे मरना ही है। लेकिन हमारे विचार में आत्मा है, तो उसे मारा नहीं जा सकता।

कामयाबी-नाकामयाबी शरीरी चीजें हैं। उसकी तमाम वजह हो सकती हैं। एक सही बात पर भी आप नाकामयाब हो सकते हैं। एक गलत बात पर भी आप कामयाब हो सकते हैं। किसी बड़ी शख्सियत की हत्या तो होती ही इसीलिए है कि सही बात झेली नहीं जा रही। उसकी बात को दबाने के लिए उसका मुंह बंद कर दिया जाता है। गलत-सलत बात करने पर मजाक उड़ता है। सही बात कहने और

उस पर टिके रहने से हत्या होती है।

अपने से बड़ी सत्ता से हम जब विरोध करते हैं, तो सबसे पहले कौन याद आता है? अपनी सही बात के लिए अड़ते हैं, तो कौन याद आता है? एक बड़े सवाल पर जब सत्ताओं से टकराते हैं, तो कौन याद आता है? हमारी बात सही होती है, लेकिन उसे उड़ा दिया जाता है। हम न्याय की बात करते हैं और हार जाते हैं। हम पर अन्याय होता है और कोई नहीं सुनता। तब हमें अपनी बात कहने का कौन सा तरीका सूझता है। फिल्मों की बात हो तो हथियार उठाओ और अपनी मंजिल हासिल कर लो। लेकिन हथियारों से तो सरकारों से लड़ा नहीं जाता। सरकारों के पास तो जितने हथियार होते हैं उसका तो मुकाबला नहीं हो सकता। और वे हथियार वैध होते हैं। सरकारों को उसकी कानूनन मान्यता होती है। आप तो हथियार उठाते ही गैरकानूनी हो जाएंगे। और फिर सरकारें तो चाहती हैं कि आप किसी बात पर हथियार उठा लें। हथियारबंद लोगों को कुचलने में उन्हें कतई वक्त नहीं लगता। यह बात गांधीजी बहुत पहले ही समझ चुके थे। वह यों भी हिंसा के खिलाफ थे। एक अहिंसक समाज का सपना देखते थे। हिंसा को समाज से अलग-थलग कर देना चाहते थे। आजादी के आंदोलन में गांधीजी ने हिंसक गतिविधियों से दूरी बनाई। उन्हें लगता था कि हिंसा से कुछ भी सधनेवाला नहीं है। वह यह भी समझते थे कि सत्ताएं तो चाहती ही हैं कि हिंसा हो। उसे हिंसा से निबटने में आसानी होती है। उसे अहिंसक आंदोलनों को निबटने में दिक्कत आती है। कोई निहत्था ही उन्हें परेशान कर सकता है। हथियार बंद को तो वे जब चाहे खत्म कर देते हैं। उसका लाइसेंस तो उनके पास होता ही है।

चौरीचौरा कांड में गांधीजी की भूमिका का खयाल करना चाहिए। वहां हुई हिंसा उन्हे बर्दाश्त नहीं हुई। वह उसे सही ठहराने को तैयार ही नहीं थे। सब लोग एक घटना है, कहकर आंदोलन को चलाए रखने के पक्षधर थे। लेकिन गांधीजी ने तमाम लोगों को चकित करते हुए आंदोलन वापस ले लिया। हुआ यह था कि 4 फरवरी, 1922 को गोरखपुर जिले के चौरीचौरा में असहयोग आंदोलन के दौरान लोग प्रदर्शन कर रहे थे। उनकी पुलिस से झड़प हुई। प्रदर्शनकारी भी भड़क उठे। मारपीट शुरू हो गई। भीड़ ने पुलिस स्टेशन पर हमला बोल दिया। उस घटना में तीन लोगों की मौत हो गई और 22 पुलिस वाले मारे गए। इस घटना पर गांधीजी बहुत दुखी हुए। 12 फरवरी को उन्होंने देशभर में चल रहे असहयोग आंदोलन पर रोक लगा दी।

यह सत्ता के हिंसक चरित्र को समझने की बेहतरीन मिसाल है। समस्याओं के हल हिंसक या गुरिल्ला युद्धों से नहीं निकलते। वह तो एक तरह का भटकाव है और उस भटकाव को सत्ताएं बहुत पसंद करती हैं। गांधीजी किसी भी तरह उनके हाथ में कुचलने के हथियार देना नहीं चाहते थे। वह न हिंसक होना चाहते थे और न चाहते थे कि सत्ताएं हिंसक हो जाएं।

सत्ताओं को यह पसंद नहीं है कि कोई उन्हें अहिंसक चुनौती दे। यों उन्हें किसी भी तरह की चुनौती पसंद नहीं है। लेकिन अहिंसक तो कतई नहीं। यों ऊपर-ऊपर से वे हिंसक चुनौतियों पर चिंताएं जाहिर करते रहते हैं। लेकिन उनसे निपटने में उन्हें दिक्कत नहीं होती। उनके पास बहुत

> **"गांधीजी बताते हैं। पूरी नैतिकता के साथ लड़ाई कैसे लड़नी चाहिए। यह महज कहते ही नहीं हैं। उसे करके दिखाते हैं। हम जानते हैं कि सत्ताओं को किस कदर नैतिक विरोधों से दिक्कत होती है। हम नैतिक हों। हम अहिंसक हों। तब लड़ाई का पूरा अंदाज ही बदल जाता है। हम कुछ भी सोचते हुए समाज के आखिरी आदमी का खयाल रखें। गलत बात पर हम अपना विरोध दर्ज करें चाहे सत्ता कोई भी हो।"**

भारी 'फोर्स' होती है।

हमारे मन में यह सदियों से भर दिया गया है कि हमारा बुनियादी स्वभाव हिंसक है। हमारा बुनियादी रुझान ही कबीलाई है। कबीलाई की हमारी समझ में हिंसा आती ही है। लेकिन इस समझ पर भी सवाल करना चाहिए। उस पर भी ठीक से सोच-विचार होना चाहिए। कुछ साल पहले दलाई लामा के एक लेक्चर को सुनते हुए दिमाग कौंधा था। उन्होंने जोर दिया था कि मनुष्य का बुनियादी स्वभाव अहिंसक है। वह स्वभाव कोमल है कठोर नहीं। तिब्बती धर्मगुरु ने अपने हाथ से ही उस स्वभाव को समझा दिया था। मुट्ठी हमें बांधनी पड़ती है। किसी-किसी दिन होता है ऐसा। हम आमतौर पर हाथ खुले ही रखते हैं। कोमल हाथों के लिए कोई हरकत करनी ही नहीं पड़ती। उसे कठोर बनाने के लिए किसी न किसी हरकत की जरूरत होती है। हम जब किसी को प्यार करते हैं तो हाथ कोमल ही रहता है। हम जब किसी को मारते हैं, तो उसे कठोर बनाना पड़ता है। अगर मरना-मारना ही बुनियादी होता, तो हमारे हाथ की संरचना कठोर होती। वह तो नहीं है। हमारी हथेली तो बेहद ही कोमल होती है। तो बुनियादी संरचना तो कोमल ही हुई न। अगर वह कोमल है, तो फिर हिंसक होना बुनियादी कैसे हो सकता है? तो हिंसक होना हमारा मूल स्वभाव नहीं है। इसे गांधीजी ने पहचाना। और उसे ही केंद्र में रख कर अपनी राजनीति की नींव रखी और आजादी के आंदोलन में वही सबसे कारगर साबित हुई।

एक दिन किसी ने मुझसे कहा कि गांधीजी तो अड़ियल थे। इसीलिए प्रासंगिक नहीं हैं। आज के लिए वह पुराने पड़ गए हैं। अरे भाई, समय के प्रवाह को गांधीजी मानते हैं। उसके बदलाव पर कभी अड़ते नहीं। वह अपने आज को मानते हैं। इसीलिए वह कहते हैं कि अब जो मैं कह रहा हूं वह सच है। सच के प्रयोग करने वाला शख्स कैसे बदलाव पर अटक सकता है। सनातन दर्शन कहें या भारतीय दर्शन वह हमें बताता है कि समय का चक्र कभी रुकता नहीं है। ब्रह्मांड एक चक्र है। उसे रुकना आता नहीं। तब समय का पहिया कैसे रुक सकता है? गांधीजी तो

प्रयोगधर्मी हैं। प्रयोग पर प्रयोग किए जा रहे हैं। राजनीति में भी कम प्रयोग नहीं कर रहे। अर्थव्यवस्था में प्रयोग कर रहे हैं। शिक्षा में प्रयोग कर रहे हैं। धर्म-अध्यात्म में प्रयोग कर रहे हैं। समाज में प्रयोग कर रहे हैं। वह तो सतत परिवर्तनशील हैं। अगर हम लिटरल मीनिंग की तरफ जाएंगे तो प्रयोगधर्मी तो अप्रासंगिक हो ही जाएगा।

एक और बात है। वह सच को लेकर प्रयोग कर रहे थे। 'मेरी खोज चल रही है। इस खोज के लिए ही जीवन है।' इसीलिए मानते थे कि 'मैं अपूर्ण हूं अधूरा हूं।' 'मैं अपूर्ण हूं। केवल व्यक्तिगत प्रयोग से समाधान पा लेना होता, तो वह कभी का पूरा हो जाता। लेकिन जहां सामाजिक प्रयोग करना है, वहां हमारे भाग्य में अपूर्णता ही रहने वाली है। हमारे बाद आने वाले अधिक पूर्णता पाएंगे। इस तरह कभी न कभी पूर्ण दर्शन होगा।' विनोबा भावे तो कहते थे कि मुझ पर जितना असर बापू का पड़ा, उतना पूर्णता का दावा करने वाले दूसरे सज्जनों का नहीं पड़ा। एक प्रयोगकर्मी अपने को अधूरा ही मानेगा। अगर वह पूर्ण है तो फिर किसी प्रयोग की जरूरत ही क्या है? शायद यही प्रयोगधर्मिता थी कि उनके बारे में दावे से लोग नहीं कह पाते थे कि वह कौनसा रास्ता लेंगे। या किस तरह की बात करेंगे।

तो गांधीजी ने एक हथियार दे दिया कि अगर विरोध करना है तो अहिंसक हो। धरना-प्रदर्शन व बहस-मुबाहिसा सब हो। बस मारपीट नहीं होनी चाहिए। हमें अपनी बात कहनी है। उसके लिए लड़ना है। उसमें किसी से मारपीट का क्या मतलब? हमें अपनी बात कहनी आनी चाहिए। उस बात में इतना दम होना चाहिए कि हम जोर देकर कह सकें। हमारी बात में दम होना चाहिए न कि बाजुओं की ताकत।

हम प्रासंगिकता को ज्यों का त्यों अंदाज में देखने के आदी हो गए हैं। शायद इस सवाल से विनोबा का भी पाला पड़ा हो। जरूर पड़ा होगा।

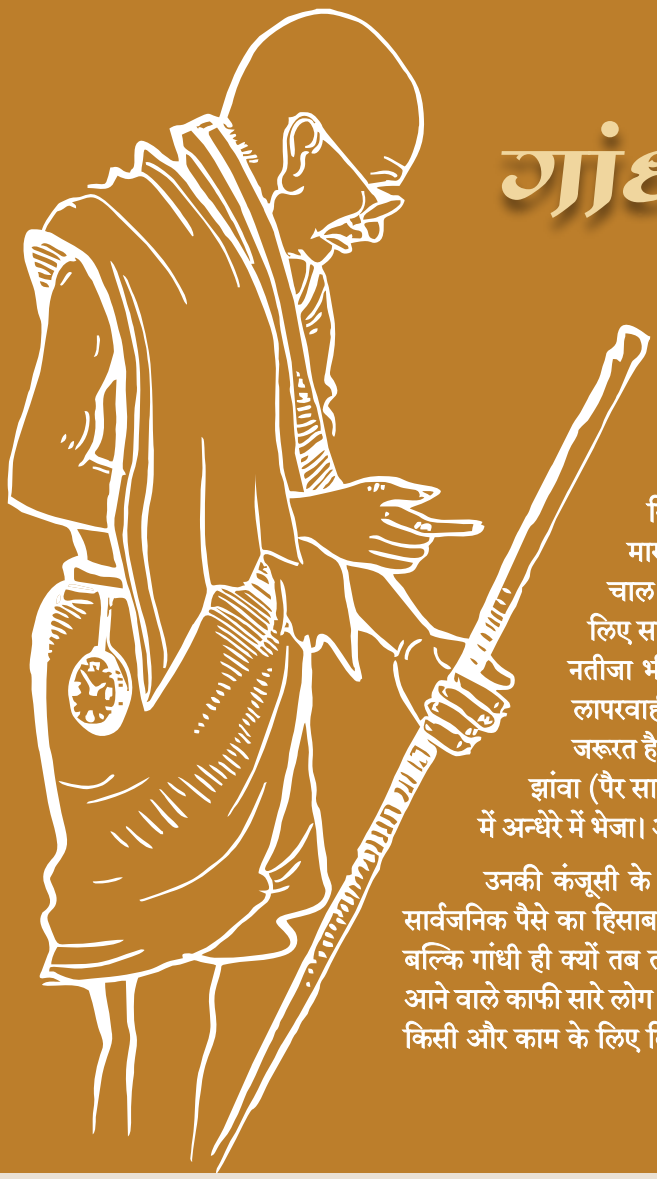

सार्वजनिक धन का साफ हिसाब-किताब

गांधी का अनुशासन

- अरविन्द मोहन

गांधी के साथ रहीं और उनके अंतिम दिनों में उनकी देखभाल करने वाली उनकी पोती मनु गांधी ने एक सुन्दर किताब लिखी है, 'गांधी: माई मदर'। जाहिर है किताब में काफी महत्त्वपूर्ण जानकारियां हैं क्योंकि यह दौर बहुत महत्त्वपूर्ण है और गांधी अपना बनाया काफी कुछ हाथ से निकलते देखते हैं। अपने तपे तपाए सहयोगियों को सत्ता के लिए उलझते देखते हैं। मार काट में लगे अपने समाज का बहुत डरावना रूप देखते है। लीग और अंग्रेजों की चाल समझते ही थे। पर हार मानने की जगह वे अपने मुट्ठी भर सहयोगियों को साथ लिए साम्प्रदायिक हिंसा की आग में झोंककर शांति कायम करने में लगे हैं। और उसका नतीजा भी दिखता है। पर मनु के विवरणों में गांधी के खर्च या किफायत और जरा भी लापरवाही पर डांट के बहुत प्रसंग हैं। लालटेन ज्यादा देर क्यों जली, अगर कम रोशनी की जरूरत है तो बत्ती नीचे क्यों नहीं हुई (इसमें थोड़ा ज्यादा तेल लगता है), एक बरसों पुराना झांवा (पैर साफ करने का पत्थर) छूट गया तो उसे लेने के लिए अकेली मनु को दंगा वाले गांव में अन्धेरे में भेजा। और सब दिन वे चन्दे की चिंता करते थे लेकिन इस दौर में ज्यादा ही करने लगे थे।

उनकी कंजूसी के किस्से कम नहीं हैं लेकिन इस दौर के किस्से और ज्यादा हैं। शायद वे तब सार्वजनिक पैसे का हिसाब ज्यादा लगा रहे थे। ऐसा सब दिन था। हो सकता है यह मनु के लिए नया था। बल्कि गांधी ही क्यों तब तो आम आदमी भी खैरात खाने से परहेज करता था और सार्वजनिक जीवन में आने वाले काफी सारे लोग चन्दे को अपने ऊपर खर्च नहीं करते थे। उनके बीच यह मान्यता सी थी कि अगर किसी और काम के लिए लिया गया पैसा अपने ऊपर खर्च किया जाए तो कोढ़ हो जाता है। गांधी ने ऐसा

गांधीजी के जाने के बाद उनके विचार को विनोबा ही आगे बढ़ा रहे थे। इसीलिए उन्होंने कहा होगा, 'गांधी भी आज ज्यों का त्यों नहीं चलेगा।'

दरअसल, कोई भी चीज ज्यों की त्यों नहीं होती। हो भी नहीं सकती। अगर हम उसकी कोशिश करेंगे, तो पैरोडी ही हाथ आएगी। प्रासंगिकता को भी हम कुछ इसी अंदाज में देखते हैं। 'ये कहा? क्या ऐसा हुआ?' 'वो कहा? क्या वैसा हुआ?' हम मक्खी पर मक्खी बिठाते चले जाते हैं। कोई शख्स जब लगातार बदलाव की बात कर रहा है। प्रयोग करने पर जोर दे रहा है। तब ज्यों का त्यों होने का तो कोई मतलब ही नहीं है। एक विचार हमें रास्ता दिखाता है। वह कोई मंजिल नहीं होता। जब विचार मंजिल हो जाता है तब उसके खत्म होने की शुरुआत हो जाती है। और गांधीजी कभी नहीं चाहते थे कि उनका विचार मंजिल हो जाए। वह तो हमेशा सफर में रहना चाहते थे। इसीलिए शायद वह महज आजादी ही नहीं चाहते थे। वह एक रचनात्मक समाज बनाने का सपना देखते थे। सपनों का तो मतलब ही है कि अभी हम कुछ गढ़ना चाहते हैं। समाज की यह गढ़न चलती रहती है। लड़ाई किस तरह नैतिक होती है। यह गांधीजी बताते हैं। पूरी नैतिकता के साथ लड़ाई कैसे लड़नी चाहिए। यह महज कहते ही नहीं हैं। उसे करके दिखाते हैं। हम जानते हैं कि सत्ताओं को किस कदर नैतिक विरोधों से दिक्कत होती है। हम नैतिक हों। हम अहिंसक हों। तब लड़ाई का पूरा अंदाज ही बदल जाता है। हम कुछ भी सोचते हुए समाज के आखिरी आदमी का खयाल रखें। गलत बात पर हम अपना विरोध दर्ज करें चाहे सत्ता कोई भी हो।

हम सच के पक्ष में खड़े हों। न्याय हमारी चाहत हो। सत्याग्रह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार हो। तब हम महसूस करें कि क्या गांधीजी प्रासंगिक नहीं हैं? ●

कहीं नहीं कहा और लम्बे समय से उन्होंने अपना निजी जीवन भी कुछ नहीं रखा था लेकिन फिर हर पैसे का हिसाब रखना और जरा भी ज्यादा खर्च न होने देना एक नियम सा था।

गांधी की मित्तव्ययता एवं सहयोग राशि एकत्र करने के किस्से बहुत हैं। जबलपुर में हरिजन कल्याण कोष में मिले चन्दे का हिसाब इस बात से गडबड़ा रहा था कि किसी महिला की एक कान की बाली ही मिली। गांधी का कहना था कि यह हो नहीं सकता कि कोई महिला एक ही बाली दे और एक रख ले। बहुत ढूढने पर दूसरी बाली दरी में फंसी मिली। चन्दा भी सार्वजनिक बाद में मांगना शुरू हुआ। चम्पारण में तो स्थानीय चन्दे की मनाही ही थी क्योंकि स्थानीय किसान कष्ट में थे और गांधी को उनसे पैसा लेना उचित नहीं लगा। वहां गांधी के सहयोगियों ने छपरा के रिविलगंज में पुणे के फर्गुसन कॉलेज जैसा एक कॉलेज बनाने की योजना के लिए जरूर पैसे जुटाए जिसमें राजेन्द्र बाबू को प्रिंसीपल बनाने की योजना थी। जब आन्दोलन से फुरसत न होने के चलते यह योजना आगे न बढी तो गांधी ने वह सारे पैसे लौटवाए और बाद में इन्हीं लोगों से चन्दा लेकर बिहार विद्यापीठ बना।

गांधी ने चम्पारण में चन्दा नहीं जुटाया तो खर्च कहां से हुआ। तब इतने लोगों के रहने, खाने, परिवहन स्टेशनरी और डाक का खर्च काफी था। तब डाक के रेट, खासकर तार के, काफी थे। कहीं भी सीधा जिक्र नहीं है। पर उस समय गांधी के कामों में कुछ ही लोग मदद देते थे। और जो पढाई मैंने की उससे यही लगता है कि गांधी के मित्र डॉ. प्राणजीवन मेहता ने यह पूरा खर्च उठाया था। गांधी अपनी आत्मकथा में यह जिक्र जरूर करते हैं कि आन्दोलन पर हमारे करीब बाइस तेइस सौ रुपए खर्च हुए। आन्दोलन साढ़े नौ महीने चला था। और फिर वे बहुत निहाल होने वाले अन्दाज में बताते हैं कि हमारे आठ नौ सौ रुपए बच ही गए। कहां से पैसे आए और इन बचे पैसों का क्या हुआ यह हिसाब कहीं दिया नहीं गया है। शायद दो दोस्तों का मामला होने से ऐसा हुआ हो। डॉ. मेहता जबरदस्त आदमी थे और गांधी के कामों के लिए बैंक खोलने की सोच रहे थे। लकवा होने से उनकी सक्रियता कम हुई अर यह योजना पूरी नहीं हुई पर शुरुआत के एक दौर में वे गांधी को बहुत मदद देते रहे।

खेडा सत्याग्रह में कमान गांधी के पास न थी। वह सरदार पटेल के कमान में चला और गांधी उसमें एक प्रमुख सैनिक की हैसियत से ही गए थे। वहां की सारी तैयारियां सरदार ने जबरदस्त तरीके से कर रखी थीं। और इस आन्दोलन के बाद देश में उनके संगठन कौशल का डंका भी बजा। उन्होंने ही आन्दोलन के लिए पहले से चन्दा करके रखा था। और जब ब्रिटिश हुकुमत सारा जुल्म करके थक गई तब उसने किसानों की मांगें मान लीं और गांधी को दूसरे किसान आन्दोलन में भी सफलता मिली। यहां आन्दोलन के ब्यौरे नहीं देने हैं। उसकी चर्चा कभी अलग से हो सकती है। पर हुआ यह कि आन्दोलन खत्म होने के बाद चन्दे के कोष में पन्द्रह हजार रुपए बचे हुए थे। सो यह सवाल काफी महत्वपूर्ण हो गया कि इन पैसों का क्या किया जाए। पन्द्रह हजार का मतलब अच्छी खासी रकम था। पटेल समेत काई सारे लोगों की राय थी कि इन्हें रहने दिया जाए और बाद में किसी और सार्वजनिक काम में इस्तेमाल कर लिया जाएगा। गांधी की यह राय थी कि जिस काम के लिए पैसे मांगे जाएं उसी पर खर्च हों। अगर धन घटे तो खर्च का हिसाब और काम की प्रगति का विवरण देते हुए और पैसे लिए जा सकते हैं। और अगर पैसे बच गए हों तो काम का हिसाब देने के साथ बचे पैसे वापस कर देने चाहिए।

सार्वजनिक धन के ऐसे साफ हिसाब-किताब से ही आगे पैसे मांगने के साथ सामाजिक जिम्मेवारी का निर्वाह होता है। गांधी ने धीरे धीरे सबको अपनी राय मानने के लिए राजी किया क्योंकि बेइमानी किसी के मन में नहीं थी। और ये पैसे वापस किए गए। चन्दा वापसी के ऐसे उदाहरण कम ही होंगे। ●

महात्मा गांधी की सम्प्रेषणीयता

जीवन ही संदेश

- डॉ. सच्चिदानंद जोशी

> **"गांधीजी के सम्प्रेषण को लेकर किए गए विभिन्न प्रयोगों के आधार पर एक पूरा शास्त्र विकसित किया जा सकता है जो निश्चित ही वर्तमान दौर के लिए उपयोगी और प्रभावी हो सकता है। हो सकता है कि मार्शल मैकलूहान ने ''मीडीयम इज द मैसेज'' की प्रेरणा भी गांधी जी से ही ली हो।"**

भारतीय जीवन में भावनाओं का विशेष महत्व है। हम भावनाओं में जीते हैं और कई बार अति भावुकता का शिकार हो जाते हैं। इसीलिए हमारे लिए प्राय: व्यक्ति विचार से बड़ा हो जाता है। हमारा देश आस्थाओं और परंपराओं का देश है। हमारी परंपरायें पुरातन हैं, और हमारी आस्थायें दृढ़ हैं। फिर भी अति भावुकता के कारण हम कई बार विचारों के साथ न्याय नहीं कर पाते। हम विचारों को भी भावनाओं के धरातल पर परखने की कोशिश करते हैं और इस प्रक्रिया में धोखा खा जाते हैं।

हमारे इस गुण के कारण अक्सर ऐसा होता है कि हम किसी भी व्यक्ति या विचार का आकलन पूरे तथ्यपरक ढंग से नहीं कर पाते। महात्मा गांधी के साथ भी कुछ कुछ ऐसा ही हुआ है। एक व्यक्ति के रूप में हमने महात्मा गांधी को इतना अधिक पूज्य माना है कि उनके देवतुल्य व्यक्तित्व की हम लोग उपासना करने लगे हैं। उनके नाम का स्मरण ईश्वरीय हो गया है और धारणा यह बनने लगी है कि उनके नाम का स्मरण करने मात्र से ही हमें परेशानियों के समाधान उपलब्ध होने लगेंगे। फलत: एक व्यक्ति के रूप में तो गांधीजी बहुत गहरे तक हमारे भारतीय समाज में पहुंचे हुए हैं, लेकिन एक विचार के रूप में, एक दर्शन के रूप में हम उन्हें उस रूप में ग्रहण नहीं कर पाए जिस रूप में हमें करना चाहिए था। आज हम अपने आप को गांधी का अनुयायी कहने के बावजूद ऐसी अनेक प्रवृत्तियों और परेशानियों के शिकार हैं जिनके बारे में गांधी जी वर्षों पूर्व ही हमें आगाह कर चुके थे। गांधीजी ने जीवन के विभिन्न आयामों पर इतना विस्तृत और कालजयी चिंतन किया है, कि समूचा विश्व उन्हें एक जीवन दृष्टा के रूप में स्वीकार करने को बाध्य है। महान् वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन से लेकर अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा तक सभी गांधी जी विचारों से प्रेरणा पाते रहे हैं। समूचे विश्व में आज भी यदि कोई एकमात्र भारतीय नाम पूरे आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है तो वह महात्मा गांधी का ही है।

एक विचार के रूप में गांधीजी उनके विराट व्यक्तित्व से भी कहीं अधिक ऊंचे और महान थे। गांधीजी के विचारों की थाह ले पाना बड़े बड़े चिंतकों, विचारकों और बुद्धिजीवयों के लिए कठिन है। गांधीजी के विचार आज के इस दौर में भी सर्वथा उचित और महत्त्वपूर्ण हैं, जो विचारों की विजय है।

सन् 1909 में रचित ग्रंथ ''हिंद स्वराज'' की पंक्तियां जिसमें गांधीजी ने लिखा है, ''यह किताब द्वेष धर्म की जगह प्रेम धर्म सिखाती है, हिंसा की जगह आत्मबलिदान को रखती है तथा पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है'' आज भी प्रासंगिक हैं तथा विश्व की तमाम समस्याओं का हल इन्हीं पंक्तियों में छुपा नजर आता है।

हिन्द स्वराज के माध्यम से गांधीजी कई ऐसी बातों की ओर इशारा किया था जो आने वाले समय में देश के लिए और समाज के लिए मानक सिद्ध होगी। गांधीजी ने इसके माध्यम से यांत्रिकीकरण यानी मैकेनाईजेशन, व्यावसायीकरण यॉहि प्रोफेशनलिज्म, औद्योगीकरण यानी इंडस्ट्रीयलाईजेशन और संवादहीनता जैसी बातों पर कड़ा प्रहार किया है। जब ये बातें लिखी गईं तब यह धारणा बनाई गई कि गांधीजी ने यह पुस्तक भावनाओं के प्रवाह में लिखी है अत: उसकी कई बातों को बाद में ठीक किया जा सकेगा। कई लोग तो उस समय भी इन विचारों से सहमत नहीं थे। लेकिन उसके प्रकाशन के तीस वर्ष बाद भी वे शब्दों पर अटल थे। ''हिन्द स्वराज'' को आज सौ वर्ष से अधिक हो गए हैं

लेकिन उसमें लिखे शब्द आज भी अपनी कसौटी पर खरे उतरते हैं। यह गांधीजी के विचारों की दृढ़ता, स्पष्टता और गहराई का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

विश्व प्रसिद्ध संचार विशेषज्ञ मार्शल मैकलूहान ने सन् 1964 में ''अंडरस्टैंडिंग द मीडिया'' में अपना बहुचर्चित कथन ''मीडियम इज द मैसेज'' प्रतिपादित किया था। इसका आशय था कि संदेशों के सम्प्रेषण के लिए अभिव्यक्ति का जो माध्यम चुना जाता है वही स्वयं अभिव्यक्ति बन जाता है।'' प्रकारांतर से यह भी कहा जा सकता है कि संवाद की प्रक्रिया में कभी कभी संदेश पर माध्यम हावी हो जाता है। सम्प्रेषण प्रक्रिया को जानने और रेखांकित करने के लिए अक्सर मार्शल मैकलूहान के इस कथन का प्रयोग किया जाता है।

सम्प्रेषण और मीडिया के विद्यार्थियों के लिए यह वाक्य एक ब्रह्म वाक्य की तरह होता है जिससे वे अपने अध्ययन और भावी कार्यकलापों का ताना-बाना बना सकते हैं। लेकिन इस कथन के शाब्दिक अभिप्राय और सतही वैचारिकता तक ही सारे अध्ययन का ताना-बाना सिमट कर रह जाता है। वर्तमान दौर में विशेषकर संचार माध्यमों में तथा उसके द्वारा प्रभावित होने वाले समाज में, विचारों का जो उथलापन दिखाई देता है उसका कारण संभवत: यही है कि हम माध्यम और संदेश की अवधारणा को गहराई तक समझा ही नहीं पा रहे हैं।

आज के दौर में हम देखते हैं कि सम्प्रेषण माध्यमों विशेषकर दृश्य श्रव्य माध्यमों जैसे टेलीविजन या रेडियो के संदर्भ तो यह उक्ति शत प्रतिशत खरी उतरती है। आज संदेश गौण होता जा रहा है और माध्यम उस पर हावी होते जा रहे हैं। सोशल मीडिया के आ जाने के बाद तो स्थिति और भी विस्फोटक होती जा रही है। विचारों की स्वतंत्रता, स्वच्छंदता और उच्छृंखलता में बदलती जाती दिखाई देती है। इसमें मूल संदेश कहां गुम हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता। समाज की वैचारिक अभिव्यक्ति के लिए यह स्थिति आज के दौर में बहुत अधिक स्वस्थ नहीं मानी जा सकती। इसका कारण यह है कि हम माध्यमों का प्रयोग बाजारीकरण को बढ़ावा देने के लिए कर रहे हैं और माध्यमों की वैचारिकता समाप्त होती जा रही है। आज क्या देखा, सुना या पढ़ा से ज्यादा महत्त्वपूर्ण कैसे देखा, सुना या पढ़ा, हो गया है। लेकिन मैकलूहान ने जिस समय अपने इस सिद्धांत को प्रतिपादित किया था, उस समय यह वैचारिकता की सकारात्मक अभिव्यक्ति थी।

महात्मा गांधी ने मैकलूहान के इस सिद्धांत को उसके प्रतिपादन से कई वर्ष पूर्व ही अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से सिर्फ सिद्ध कर दिया था बल्कि ग्राह्य भी बना दिया था। महात्मा गांधी एक व्यक्ति के रूप में अपने संदेश के लिए सबसे बड़े माध्यम बन गए थे। यह वह दौर था जब संदेशों के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए आधुनिक साधन नहीं थे। जो साधन थे वे भी भारत की गरीब और गुलाम जनता के लिए आसानी से मुहैया नहीं थे। इस दौर में गांधी स्वयं एक बहुत व्यापक साधन के रूप में उभरकर सामने आए।

यदि हम गांधी जी के व्यक्तित्व का आकलन परंपरागत व्यक्तित्व मानकों पर करें तो देखेंगे कि वे एक साधारण कद-काठी वाले, बहुत प्रभावशाली वक्तृत्व न रखने वाले, अपने कामों में ही मग्न रहने वाले थे। लेकिन क्या कोई व्यक्ति उनके व्यक्तित्व के जादुई प्रभाव की बराबरी आज तक कर पाया है। गांधीजी के दौर में वे क्या करते हैं और क्या सोचते हैं, यह भारतीयों के लिए ही नहीं वरन् समूचे विश्व के लिए कौतूहल और आकर्षण का विषय रहता था। उन्हें अपने संदेशों को प्रसारित करने के लिए विशेष प्रयास नहीं करने पड़ते थे। उनके संदेश या उनके विचार उनकी कृति के माध्यम से ही पूरे देश में प्रसारित हो जाया करते थे। यही कारण था कि उनका अहिंसा और सत्याग्रह का संदेश इतना अधिक कारगर सिद्ध हुआ कि अंग्रेजी हुकूमत की सारी सेनाएं उसके सामने नतमस्तक हो गईं। गोलियों और लाठियों के उत्तर में सत्याग्रह और अहिंसा का प्रयोग बहुत जोखिम भरा था जिसके लिए न सिर्फ वैचारिक दृढ़ता की आवश्यकता थी वरन् सामने उदाहरण बनकर प्रस्तुत होने की भी जरूरत थी। गांधीजी ने इस प्रयोग के लिए हिम्मत दिलाई और एक उदाहरण बनकर राष्ट्र के सामने खड़े हुए।

एक माध्यम के रूप में गांधीजी प्रभाव को सन् 1930 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान उस सत्याग्रह में दांडी यात्रा में उनके प्रभाव से जाना जा सकता है। कुछ लोगों से शुरू हुई यात्रा में लगभग एक लाख लोग शामिल हुए। 80,000 लोगों ने गिरफ्तारी दी। प्रारंभ में बहुत साधारण लगने वाली कृति सिर्फ गांधी जी के स्पर्श के कारण विराट हो गई। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने सन् 1960 में अमेरिका में जब काले लोगों के नागरिक अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी थी तो उन्होंने नमक सत्याग्रह से ही प्रेरणा ली थी। असहयोग आंदोलन में 1922 में चौरी चौरा कांड के बाद इस तथ्य के बावजूद कि समूचे आंदोलन ने जोर पकड़ लिया है, गांधीजी ने आंदोलन रोकने की बात कह दी। कारण था प्रतिहिंसा। अधिकांश देशवासी गांधीजी के इस कदम पर आश्चर्यचकित थे। लेकिन गांधीजी की वैचारिक दृढ़ता के आगे पूरा देश नतमस्तक हुआ और आंदोलन रोक देना पड़ा। प्रायश्चित स्वरूप उन्होंने स्वयं पांच दिन का उपवास किया था। ऐसी वैचारिक दृढ़ता और उसका संदेश में ऐसा अवतरण बहुत कम ही देखने को मिलता है।

गांधीजी ने अपने आग्रहों को स्वयं पर सिद्ध किया और कृति में उसे दूसरों को करने के लिए प्रेरित किया। चाहे सत्य का आग्रह हो या खादी का वे सारे प्रयोग स्वयं पर ही करते थे। उनकी कृति ही उनका संदेश बन जाती थी जिसका बहुसंख्यक भारतीय स्वेच्छा से और आनंदपूर्वक अनुसरण करते थे। गांधीजी के संदेशों और कृति का प्रसार बहुत जल्दी और व्यापकता से होता था। इन संदेशों के लिए गांधीजी का प्रत्यक्ष संपर्क या संवाद आवश्यक नहीं था। इन संदेशों के माध्यम से पूरा वातावरण गांधीमय हो उठता था और अलग-अलग स्थानों पर गतिविधियां संचालित होने लगती थीं। गांधीजी ने अपने व्यक्तित्व और कृति से यह सिद्ध कर दिया था कि विचारों की दृढ़ता व्यक्ति को अपने संदेश का सबसे सशक्त माध्यम बना सकती है।

वे अपने विचारों और आग्रहों के सबसे बड़े अनुयायी स्वयं थे। उनका आग्रह नहीं था कि कोई उनके साथ किसी दबाव या जोर-जबरदस्ती से आए। जिसे उनका मार्ग पसंद था उसका उनके पास स्वागत

था। उनके व्यवहार में यह आग्रह अलग-अलग रूपों में परिलक्षित होता है। उनके लिए आश्रम में संविधान सभा पर चर्चा करने के लिए आए व्यक्तियों की बात बीच में छोड़ कर बकरी को चारा खिलाने जाना महत्त्वपूर्ण था क्योंकि चारे का समय हो रहा है।

गांधीजी की सम्प्रेषणीयता का अंदाज इसी से लगाया जा सकता है कि पूरे विश्व से लेखक, विचारक, पत्रकार, छायाकार, कलाकार उनसे मिलने और उनकी छटा पाने के लिए आते थे। न सिर्फ आते थे बल्कि उन्हें जानने के लिए, समझने के लिए उनके साथ कई कई दिन तक प्रवास करते थे। गांधी जी स्वयं कभी अपने चित्र बनवाने या छायाचित्र खिंचवाने के लिए उत्सुक नहीं रहते थे। बल्कि वे तो कई बार हतोत्साहित ही करते थे। जो छायाकार उनका फोटो लेने आते वे उन्हें साफ कह देते कि उनके लिए समय नहीं है। यदि वे चाहे उनके साथ चलकर चित्र ले सकते हैं। लेकिन उस दौर में संभवत: सबसे ज्यादा चित्र उन्हीं के खींचे गए और उन पर ही सबसे ज्यादा कलाकारों ने चित्र बनाए। गांधी जी इस बात से भलीभांति परिचित थे कि उनके चित्र भी जहां जहां जाएंगे उनकी बात का प्रभाव बढ़ेगा क्योंकि चित्र के माध्यम से ही उनका संदेश भी प्रसारित होगा। आधुनिक भाषा में कहें तो उन्होंने अपने लिए एक ऐसे ''स्टाइल'' का निर्माण किया जिसके ''ट्रेंड सेंटर'' भी वही थे और ''ब्रांड एम्बेसेडर'' भी।

> **"महात्मा गांधी एक व्यक्ति के रूप में अपने संदेश के लिए सबसे बड़े माध्यम बन गए थे। यह वह दौर था जब संदेशों के व्यापक प्रचार प्रसार के लिए आधुनिक साधन नहीं थे। जो साधन थे वे भी भारत की गरीब और गुलाम जनता के लिए आसानी से मुहैया नहीं थे। इस दौर में गांधी स्वयं एक बहुत व्यापक साधन के रूप में उभरकर सामने आए।"**

मनोविज्ञान और सौंदर्य विज्ञान के उस दौर में जहां कपड़ों से, चाल-ढाल से, हाव-भाव से व्यक्ति की मनोदशा का आकलन करने की कोशिश की जाती है, गांधी जी अपने व्यक्तित्व के माध्यम से एक ऐसा अद्भुत समिश्रण प्रस्तुत करते हैं जो किसी भी मानक पर खरा नहीं उतरता। लेकिन फिर भी उनके कपड़े, चाल-ढाल, रहन-सहन, बोलना या न बोलना भी एक फैशन बन जाता था, अनुकरणीय बन जाता था, आज भी है। व्यक्तित्व की सम्प्रेषणीयता का ऐसा करिश्मा शायद किसी भी व्यक्तित्व विकास की पुस्तक में व्याख्यायित नहीं होगा।

सिर्फ अपने व्यक्तित्व से ही नहीं, गांधी जी ने अपने जीवन में सम्प्रेषण के अलग अलग माध्यमों का उपयोग कर जन-जन तक अपनी बात पहुंचाई। आज के दौर में जब हम कम्युनिकेशन तकनीक पढ़ते हैं या

आउटरीच के सिद्धांतों को जानने की कोशिश करते हैं तब भी हम महसूस नहीं करते कि गांधीजी ने कैसे इन साधनों का उपयोग कर जन-जन तक अपनी बात पहुंचाने में सिद्धता हासिल की होगी।

गांधीजी ने समाचार पत्रों के माध्यम से अपनी बात पहुंचाई। ''हरिजन'' और ''यंग इंडिया'' का प्रकाशन इसके लिए साधन बना। इसमें विभिन्न ज्वलंत विषयों पर अपने विचारों से गांधीजी ने अपना मानस व्यक्त किया। इसके साथ ही उन्होंने लगातार कई प्रमुख लेखकों और पत्रकारों से बातचीत की। उसका भी प्रकाशन निरंतर होता रहा। वे नियमित रूप से पत्र लिखा करते थे तथा लोगों को भी पत्र लिखने के लिए प्रेरित करते थे। ''गांधी एनीव्हेयर इन इंडिया'' जैसे पतों पर भी लोग उन्हें चिट्ठियां लिखते और वो उन्हें मिल जातीं। न जाने कितनी बार उन्होंने पत्रों के माध्यम से ही अपनी बात को पुरजोर ढंग से पहुंचाने का प्रयास किया। उन पत्रों में हर बार ही कोई राष्ट्रीय विचार हो या बात हो ये जरूरी नहीं था। ''मेरी गाय बीमार हो गई'' या ''मेरे रिश्तेदार ने मेरी प्रापर्टी ले ली'' जैसी बात भी लोग उन्हें लिखते थे और गांधी जी उसी श्रद्धाभाव से ऐसे पत्रों का भी उत्तर देते थे।

इसके अलावा उनकी यात्राएं भी सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम बनीं। यात्राओं के माध्यम से विशेषकर पदयात्राओं के माध्यम से उन्होंने समाज के अंतिम व्यक्ति से सीधा संवाद स्थापित किया। आज की जाने वाली अधिकांश पदयात्रायें दिखावा और व्यापक ढकोसला बनकर दब गई हैं। फिर उसके साथ चलने वाली सारी यंत्रणा आम आदमी को उससे जोड़ने की बजाय अलग करती है। गांधीजी की यात्राएं उन्हें जमीन से जोड़ने का काम करती थीं। जन जागृति के लिए की गई उनकी यात्राएं पूरे देश का संदेश बन जाती थीं। गांधी के नाम पर आह्वान की गई यात्रा फिर चाहे उसमें गांधी स्वयं हों या न हों व्यापक संदेश का प्रसार करने में कारगर सिद्ध होती थी।

अधिकांश लोगों की धारणाएं हैं कि ज्यादा बोलने से ही सामने वाले को प्रभावित किया जा सकता है। गांधी ने उस धारणा को ध्वस्त करते हुए सिद्ध कर दिया कि मौन और उपवास भी सम्प्रेषण के सशक्त माध्यम हैं। गांधीजी ने अपने मौन के माध्यम से बड़ी-बड़ी समस्याओं के समाधान सुझा दिए और अपनी बात को मनवा लिया। उनका मौन भी उनकी वाणी की तरह ही मुखर था। वर्तमान दौर में जहां सार्वजनिक जीवन में वाणी का संतुलन एक बहुत बड़ी चुनौती बनता जा रहा है, गांधी जी के मौन से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

गांधीजी के सम्प्रेषण को लेकर किए गए विभिन्न प्रयोगों के आधार पर एक पूरा शास्त्र विकसित किया जा सकता है जो निश्चित ही वर्तमान दौर के लिए उपयोगी और प्रभावी हो सकता है। हो सकता है कि मार्शल मैकलूहान ने ''मीडीयम इज द मैसेज'' की प्रेरणा भी गांधीजी से ही ली हो।

आज के इस दौर में जहां हम सम्प्रेषण माध्यमों पर बहुत अधिक आश्रित हो गए हैं, और इनके बगैर हमारा जीवन शून्य सा नजर आने लगा है, हमें गांधीजी का स्मरण अवश्य करना चाहिए। गांधीजी के स्मरण से एक माध्यम के रूप में हम अपनी पहचान खुद कर सकेंगे और सम्प्रेषण माध्यमों पर हमारी निर्भरता में कुछ कमी आ सकेगी। गांधी जी की वैचारिकता उनके समूचे व्यक्तित्व में समाई हुई थी और वे अन्तर्बाह्य एक विचार के रूप में प्रकट होते थे। हमारी अति भावुकता और व्यक्ति उपासना की प्रवृत्ति ने हमें गांधी जी की इस वैचारिकता से दूर कर दिया है। साथ ही हम अतिमहत्वाकांक्षा और महत्वोन्माद से ग्रसित होते चले जा रहे हैं। तथाकथित सोशल मीडिया ने इन सबमें वृद्धि करने में सहायता प्रदान की है। यही कारण है कि समाज में आज गांधीजी को जानने वाले तो बहुत होंगे लेकिन उनके विचार को ग्रहण कर आत्मसात करने वालों की संख्या में निरंतर कमी आती जा रही है।

> **"गांधीजी ने जीवन के विभिन्न आयामों पर इतना विस्तृत और कालजयी चिंतन किया है, कि समूचा विश्व उन्हें एक जीवन दृष्टा के रूप में स्वीकार करने को बाध्य है। महान वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन से लेकर अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा तक सभी गांधीजी विचारों से प्रेरणा पाते रहे हैं। समूचे विश्व में आज भी यदि कोई एकमात्र भारतीय नाम पूरे आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है तो वह महात्मा गांधी का ही है।"**

अतिभौतिकतावादी, अतिमहत्वाकांक्षी, बाजार आश्रित इस दौर में यदि हमें कहीं कोई आशा की किरण नजर आती है तो वह गांधीजी के विचारों में तथा उनकी कृतियां ही हैं।

आज विश्व में जहां एक ओर कई वैचारिक मान्यताएं खंडित हो रही हैं, गांधीजी का दर्शन शाश्वत है। गांधी एक दर्शन के रूप में इसीलिए चिरंतन है, क्योंकि उसके तत्व हमारे व्यवहारिक जीवन की दैनंदिन अभिव्यक्ति से जन्म लेते हैं। ●

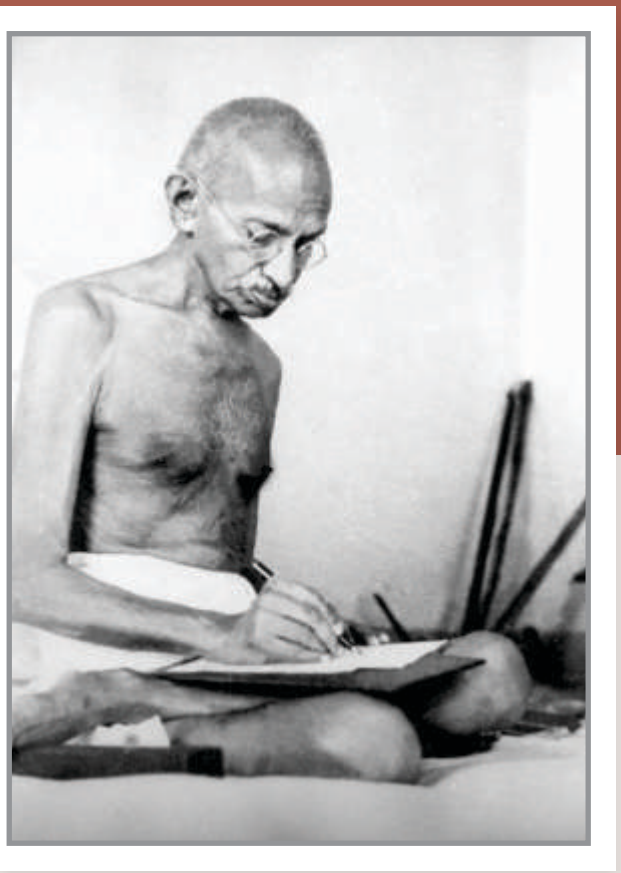

पत्रकारिता के जरिए जन शिक्षण

संपादक-पत्रकार गांधी

- डा. आनंद प्रधान

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गांधी की अग्रणी भूमिका की पर्याप्त चर्चा होती है, उनके सत्याग्रह, अहिंसा, शांति, स्वराज जैसे अनेक विचारों में भी दुनिया की दिलचस्पी लगातार बढ़ती ही जा रही है लेकिन उनके व्यक्तित्व के उस पक्ष की कम ही चर्चा होती है जिसमें वे एक पत्रकार और संपादक के रूप में पत्रकारिता के नए मानदंड और मूल्य गढ़ते नज़र आते हैं। आज महात्मा गांधी की पत्रकार/संपादक भूमिका की चर्चा और भी ज्यादा जरूरी हो गई है क्योंकि मुख्यधारा की भारतीय पत्रकारिता का बड़ा हिस्सा बड़ी पूंजी और कॉर्पोरेट नियंत्रण में मुनाफे के लिए पत्रकारिता के आदर्शों, मूल्यों और एथिक्स से समझौता कर रहा है।

आज यह जानना और समझना और भी जरूरी हो गया है कि महात्मा गांधी के लिए पत्रकारिता के क्या मायने थे? वे उसकी समाज और राष्ट्र में क्या भूमिका देखते थे? उनकी पत्रकारिता और पत्रकारों/संपादकों से क्या अपेक्षाएं थीं? पहली बात तो यह है कि गांधी पत्रकारिता को धंधा या कारोबार कतई नहीं मानते थे। इसके उलट उनका स्पष्ट मानना था कि पत्रकारिता का एकमात्र उद्देश्य लोगों की सेवा करना है। उनके ऐसा मानने के पीछे उनके अपने तर्क और ठोस वजह थीं। अंग्रेजी अखबार द हिन्दू के एक कार्यक्रम में उन्होंने कहा था कि, मैं जिन पत्रकारों को जानता हूं, उनसे यह दोहराते हुए थकता नहीं हूं कि पत्रकारिता को निजी स्वार्थ के लिए इस्तेमाल नहीं करना चाहिए या सिर्फ आजीविका चलाने के लिए पत्रकारिता नहीं करना चाहिए और सबसे बुरा कि उसे धन कमाने के लिए तो बिलकुल नहीं करना चाहिए।

आप उनके तर्कों से सहमत या असहमत हो सकते हैं लेकिन आज जब पत्रकारिता को किसी भी और धंधे की तरह चलाने और अखबार को बाज़ार में किसी भी और उत्पाद (प्रोडक्ट) जैसे साबुन, परफ्यूम और शैम्पू की तरह खरीदने-बेचने के पक्ष में तर्क दिए जाते हैं तो गांधी के तर्क एक नैतिक कम्पास की तरह हमारे सामने खड़े हो जाते हैं। असल में, उन्हें पत्रकारिता और मीडिया खासकर समाचार-पत्रों की ताकत का पूरा अहसास था। उनकी समझ थी कि जिस कलम में इतनी ताकत है, उसका इस्तेमाल लोगों की सेवा के अलावा और किसी भी रूप में करना उसके दुरुपयोग की राह खोलना है। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है, समाचार-पत्र में बहुत अधिक शक्ति है लेकिन जैसे अनियंत्रित जल गांवों को बाढ़ में डुबो देता है, वैसे ही अनियंत्रित कलम सेवा नहीं करती है बल्कि सब नष्ट करती है।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं था कि वे पत्रकारिता और अखबारों पर किसी तरह सरकारी अंकुश या नियंत्रण के पक्षधर थे। इसके बिलकुल उलट वे मानते थे कि प्रेस की स्वतंत्रता किसी भी देश के लिए सबसे कीमती चीज है जिसे वह किसी भी कीमत पर गंवा नहीं सकता है। गांधी पत्रकारिता की सामाजिक जिम्मेदारी और जवाबदेही पर जोर देते थे। उनकी समझ थी कि पत्रकारिता के तीन बुनियाद स्तंभ हैं- संपादकीय आज़ादी, सत्य के लिए प्रतिबद्धता और स्व-नियंत्रण। स्व-नियंत्रण या स्व-नियमन को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, अगर नियंत्रण बाहर से

“गांधीजी ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचने और उनके अभिप्राय जानने का प्रयास करते थे। बहुविध भाषाओं में पत्रिकाओं का प्रकाशन इस दिशा में एक प्रयास था। ‘गांधीजी की पत्रिकाएं’ विभाग में उनकी सभी पत्रिकाओं को पूर्ण रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह वो पत्रिकाएं हैं जो गांधीजी की अपनी थीं और जिन जिनके वे तंत्री या प्रकाशक थे। ‘अन्य पत्रिका विभाग’ में उन संस्थाओं और प्रवृतिओं की पत्रिकाएं है जिन्होंने गांधी विचारधारा का विश्लेषण किया या उनके विचारों और आंदोलनों के ऐतिहासिक दस्तावेज तैयार किए। इन पत्रिकाओं की पूर्ण प्रतियां यहां दी गई है।”

आता है तो यह नियंत्रण की आवश्यकता से कहीं ज्यादा जहरीला है। यह केवल तभी लाभदायक हो सकता है जब अन्दर से आएं।

दोहराने की जरूरत नहीं है कि गांधी इस आंतरिक या स्व-नियंत्रण को किसी भी पत्रकार या संपादक को अपना काम जनहित में करने के लिए जरूरी मानते थे। याद रहे कि उन्होंने सबसे पहला अखबार 1903 में दक्षिण अफ्रीका के नटाल शहर में इंडियन ओपिनियन के नाम से शुरू किया था। उन्होंने यह अखबार चार भाषाओं- अंग्रेजी, गुजराती, तमिल और हिंदी में शुरू किया था। इस अखबार का उद्देश्य दक्षिण अफ्रीका के रंगभेदी हुकूमत के तहत रहनेवाले भारतीयों की तकलीफों और दु:ख-दर्द को उठाना था। इसकी भाषा सरल आमलोगों को समझ में आनेवाली थी।

इस अखबार को चलाने के लिए उन्होंने न सिर्फ अपनी जेब से पैसे लगाए बल्कि अपना सब कुछ झोंक दिया था। वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं - इंडियन ओपिनियन मेरे जीवन का एक अहम् हिस्सा था। सप्ताह दर सप्ताह मैंने इसके स्तंभों और लेखों में सत्याग्रह के विचार और व्यवहार के बारे में लिखते हुए अपना हृदय उड़ेल दिया था। लगभग 10 सालों तक लगातार शायद ही कोई अंक हो जिसमें मैंने न लिखा हो, सिवाय तब के जब जबरदस्ती जेल में आराम करने के लिए डाल दिया गया। मुझे याद नहीं आता कि इन लेखों में कोई भी शब्द बिना सोचे-विचारे लिखा हो या कोई शब्द जान-बूझकर बढ़ा-चढ़ाकर लिखा हो या फिर केवल किसी को खुश करने के लिए लिखा हो। बेशक, यह अखबार स्व-नियंत्रण में मेरे प्रशिक्षण का माध्यम बना और मेरे मित्रों के लिए मेरे विचारों का जानने का माध्यम।

जब वे दक्षिण अफ्रीका से वापस लौटे तो उन्होंने अखबार की जिम्मेदारी इंडियन ओपिनियन के साथ शुरू से जुड़े हेनरी पोलक को सौंप दी। लेकिन उन्हें अखबार की फ़िक्र लगी रही। उन्होंने 1916 में अपने दूसरे बेटे मणिलाल गांधी को इंडियन ओपिनियन की जिम्मेदारी संभालने के लिए भेजा। लेकिन वे समय-समय पर मणिलाल को अखबार की जिम्मेदारियों के बारे में लिखते रहे। ऐसे ही एक पत्र में गांधी ने लिखा कि, संपादक में धैर्य होना जरूरी है और उसे केवल सत्य खोजने की कोशिश करनी चाहिए। तुम्हें इंडियन ओपिनियन में जो सच है, वही लिखना चाहिए लेकिन अभद्रता मत करना और न ही गुस्से का इजहार करना। अपनी भाषा में संयम रखो। अगर ऐसा है तो उसे स्वीकार करने में गुरेज मत करो।

यहां महात्मा ने एक तरह से एक अच्छे संपादक की खूबियों का उल्लेख कर दिया। वह सच को सामने लाने पर जोर देते थे लेकिन पूरी विनम्रता और संयम के साथ। आज जब पत्रकारिता खासकर टीवी पत्रकारिता का मतलब बेवजह का शोर-शराबा, गैर-जरूरी गुस्सा और बदतमीजी होता जा रहा है और इस प्रक्रिया में वह अपनी साख गंवाती जा रही है, उस समय महात्मा गांधी की सौ साल से भी ज्यादा पहले दी गई यह सलाह कितनी प्रासंगिक हो उठी है। अगर कोई सच है तो खुद उसमें इतनी ताकत होती है कि उसे असर के लिए गुस्सा और अभद्रता की जरूरत नहीं है।

गांधी एक पत्रकार और संपादक के बतौर अपने मिशन को स्पष्ट करते हुए आगे कहते हैं कि, अपने विश्वासों के प्रति पूरी ईमानदारी के साथ कहता हूं कि मैं कभी आक्रोश या दुर्भावना से नहीं लिखना चाहूंगा। मैं उदासीन होकर नहीं लिखूंगा। मैं केवल भावनाएं भड़काने के लिए नहीं लिखूंगा। पाठकों को अनुमान नहीं होगा कि सप्ताह दर सप्ताह विषय और उसे व्यक्त करने के लिए शब्दावली खोजने में मैं कितना संयम बरतता हूं। यह एक तरह से मेरा प्रशिक्षण है। यह मुझे खुद के अन्दर झांकने और अपनी गलतियां देखने का मौका देता है। अक्सर मेरा मिथ्याभिमान एक तेजतर्रार अभिव्यक्ति के लिए या मेरा आक्रोश एक तीखे विशेषण की ओर निर्देशित करता है। यह एक बहुत तकलीफदेह परीक्षा की तरह है

> आज यह जानना और समझना और भी जरूरी हो गया है कि महात्मा गांधी के लिए पत्रकारिता के क्या मायने थे? वे उसकी समाज और राष्ट्र में क्या भूमिका देखते थे? उनकी पत्रकारिता और पत्रकारों/संपादकों से क्या अपेक्षाएं थीं? पहली बात तो यह है कि गांधी पत्रकारिता को धंधा या कारोबार कतई नहीं मानते थे। इसके उलट उनका स्पष्ट मानना था कि पत्रकारिता का एकमात्र उद्देश्य लोगों की सेवा करना है।

लेकिन एक अच्छा अभ्यास है जिसके जरिए मुझे झाड़-झंखाड़ को साफ़ करने का मौका मिल जाता है।

कहना मुश्किल है कि आज के समय में कितने संपादक इस तरह के संयम के साथ अपना आत्मविश्लेषण करने और अपनी गलतियों को देखने और उन्हें दूर करने के लिए तैयार हैं? लेकिन गांधी के लिए एक पत्रकार और संपादक के बतौर अपने काम को सामाजिक जिम्मेदारी के साथ करने के लिए यह अभ्यास जरूरी था। नए शुरू हो रहे अखबार द इंडिपेंडेंस के संपादक को अपने सन्देश में गांधी एक अखबार और पत्रकारिता की भूमिका स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, आपको इस नए उद्यम की सफलता के लिए शुभकामनाएं देते हुए यह कहना चाहूंगा कि आपका लेखन इस अखबार के नाम के अनुरूप होगा। साथ ही, मैं यह जोड़ना चाहूंगा कि एक मजबूत स्वतंत्रता के साथ आप इस अखबार में उसी बराबरी का स्व-नियंत्रण और सच के प्रति समर्पण भी दिखाएंगे। अक्सर हम अपने अखबारों में अन्य अखबारों की तरह तथ्य के बजाय गल्प और शालीन तर्क के बजाय लच्छेदार भाषण देखते हैं। आप द इंडिपेंडेंस को इस देश की एक ताकत बनाएंगे और वे गलतियां दोहराए बिना लोगों का शिक्षण करेंगे जिनका जिक्र मैंने किया है।

निश्चय ही, गांधी के लिए सच का संधान पत्रकारिता का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। वे बार-बार इस बात को दोहराते हैं। लेकिन वे जन भावना को अनदेखा नहीं करते हैं। उनके मुताबिक, समाचार-पत्र का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य जनभावना को समझना और उसे अभिव्यक्ति देना है। दूसरे, लोगों में वांछित भावनाएं जगाना और तीसरे, साहस के साथ लोकप्रिय बुराइयों को उजागर करना। पत्रकारिता के उद्देश्यों को लेकर महात्मा गांधी की इन बातों में कोई अंतर्विरोध नहीं है बल्कि वे एक-दूसरे की पूरक हैं। वे जब कहते हैं कि पत्रकारिता का उद्देश्य जनभावनाओं को समझना और उसे उजागर करना है तो वे साथ में यह भी कहते हैं कि पत्रकारिता को लोकप्रिय बुराइयों को उजागर करने में भी संकोच नहीं करना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर किसी सामाजिक बुराई को जनसमर्थन भी हासिल हो तो पत्रकारिता को उसका पर्दाफाश करना चाहिए।

दरअसल, गांधी पत्रकारिता का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य जन-शिक्षण को मानते थे। जन-शिक्षण का अर्थ यह है कि जनता को सच बताना, उसके वृहत्तर परिप्रेक्ष्य और सन्दर्भों को समझाना और साथ ही, लोगों को लोकप्रिय बुराइयों के बारे भी बताना जो सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक प्रगति का रास्ता रोके खड़ी हैं। वे सिर्फ सूचना को पर्याप्त नहीं मानते थे बल्कि वे ऐसी सूचना को प्राथमिकता देते थे जिससे लोग शिक्षित हों, उनकी समझ और ज्ञान बढ़े। वे कहते थे कि, पत्रकारिता का वास्तविक कार्य लोगों को शिक्षित करना है न कि उसके मस्तिष्क को जरूरी-गैर जरूरी सूचनाओं से भर देना। इसलिए एक पत्रकार को अपने विवेक का इस्तेमाल करना चाहिए कि कौन सी सूचना लोगों को दी जानी चाहिए और कौन सी नहीं।

कहने की जरूरत नहीं है कि आज न्यूज मीडिया (अखबार, टीवी और डिजिटल मीडिया) लोगों पर सूचनाओं की बमबारी कर रहे हैं, हर ओर सूचनाओं की भरमार है लेकिन इसमें कितनी सूचनाएं ऐसी हैं जो

जनहित या सार्वजनिक हित के लिए जरूरी हैं। मीडिया हल्की-फुल्की, मनोरंजन आधारित और गैर-जरूरी सूचनाओं से भरा रहता है जिसका आमलोगों की जिंदगी से सीधा या परोक्ष कोई वास्ता नहीं है। गांधी के मुताबिक, यह अक्सर देखा गया है कि समाचारपत्र जो उनके पास उपलब्ध है, वैसी खबरों से भरे पड़े हैं जो सिर्फ जगह भरने की लिए छापी जाती हैं। वजह यह है कि ज्यादातर समाचारपत्रों की निगाह अपने मुनाफे पर होती है। पश्चिम में तो ऐसे अनेक अखबार हैं जो इस हद तक कूड़े से भरे पड़े हैं कि उन्हें छूना भी पाप है। कई बार वे परिवारों और समुदायों में कड़वाहट फ़ैलाते और उन्हें लड़ाते हैं। इसलिए ऐसे समाचारपत्र सिर्फ इस कारण आलोचना से नहीं बच सकते हैं क्योंकि जनता की सेवा करते हैं।

स्पष्ट है कि महात्मा न सिर्फ समाचारपत्रों की प्राथमिक भूमिका जन-शिक्षण मानते थे बल्कि इसके लिए वे उन्हें गैर-जरूरी सूचनाओं से बचने की सलाह भी देते थे। यही नहीं, वे मानते थे कि समाचारपत्र भी आलोचना से परे नहीं हैं। अगर वे गलती करते हैं तो उनकी भी आलोचना होनी चाहिए। गांधी खुद कई मामलों में अखबारों की तीखी आलोचना करते थे। उदाहरण के लिए वे उन समाचारपत्रों के सख्त खिलाफ थे जो सामाजिक द्वेष, सांप्रदायिक जहर फ़ैलाने और हिन्दू-मुस्लिम तनाव बढ़ाने में लगे रहते थे।

विभाजन के दौरान कुछ अखबारों की सांप्रदायिक जहर को फ़ैलाने में सक्रिय भूमिका की कड़ी आलोचना करते हुए महात्मा गांधी ने अपनी डायरी में लिखा - एक अखबार ने बड़ी गंभीरता से यह सुझाव रखा है कि अगर मौजूदा सरकार में शक्ति नहीं है यानी अगर जनता सरकार को उचित काम न करने दे तो वह सरकार उन लोगों के लिए अपनी जगह खाली कर दे जो सारे मुसलमानों को मार डालने या उन्हें देश निकाला देने का पागलपन भरा काम कर सकें। यह ऐसी सलाह है कि जिस पर चलकर देश खुदकुशी कर सकता है और हिन्दू धर्म जड़ से बर्बाद हो सकता है। मुझे लगता है ऐसे अखबार तो आज़ाद हिंदुस्तान में रहने लायक ही नहीं हैं। प्रेस की आज़ादी का यह मतलब नहीं कि वह जनता के मन में जहरीले विचार पैदा करें। जो लोग ऐसी नीति पर चलना चाहते हैं, वे अपनी सरकार से इस्तीफा देने के लिए भले कहें मगर जो दुनिया शांति के लिए अभी तक हिंदुस्तान की तरफ ताकती रही है, वह आगे से ऐसा करना बंद कर देगी। हर हालत में जब तक मेरी सांस चलती है, मैं ऐसे निरे पागलपन के खिलाफ अपनी सलाह देना जारी रखूंगा।

आज गांधी की यह चेतावनी और भी प्रासंगिक हो उठी है। आज जब देश में समाचार माध्यमों का एक बड़ा हिस्सा सांप्रदायिक जहर फैलाने में लगा हुआ है, गांधी की यह टिप्पणी याद दिलाती है कि इसकी कितनी बड़ी कीमत देश ने पहले ही चुकाई है। वे मानते हैं कि ऐसे समाचारपत्रों के लिए आज़ाद हिन्दुस्तान में कोई जगह नहीं होगी। इसकी वजह यह थी कि वे मानते थे कि समाचारपत्रों का काम लोगों का शिक्षण करना है। उनके अन्दर वांछित भाव जगाने का है।

उनकी राय थी कि, समाचारपत्रों का प्राथमिक काम जन-शिक्षण है। वे लोगों को समकालीन इतिहास से अवगत कराते हैं। यह कोई छोटी जिम्मेदारी का काम नहीं है। इसके बावजूद यह तथ्य है कि पाठक हमेशा अखबार पर भरोसा नहीं कर सकते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि समाचारपत्र में जो छपा, तथ्य उसके उलट थे। अगर समाचारपत्रों को लगता है कि यह उनका कार्यभार है कि वे लोगों को शिक्षित करें तो उन्हें किसी खबर की पुष्टि के बिना उसे छापने से बचना चाहिए। यह सही है कि उन्हें अक्सर उन्हें कठिन परिस्थितियों में काम करना पड़ता है। उन्हें कम समय में सही जानकारी खोजनी पड़ती है और ऐसे में उन्हें सच का अनुमान लगाना पड़ता है। इसके बावजूद मैं कहना चाहूंगा कि अगर छानबीन और पुष्टि संभव नहीं है तो समाचारपत्रों को उसे छापने से बचना चाहिए।

इससे जाहिर है कि गांधी तथ्यों की छानबीन और पुष्टि को बहुत ज्यादा महत्त्व देते थे। सच यह है कि पत्रकारिता की बुनियाद छानबीन, जांच-पड़ताल और पुष्टि के अनुशासन पर टिकी है। यह छानबीन और पुष्टि ही पत्रकारिता को गल्प से अलग करती है। कहने की जरूरत नहीं है कि आज की पत्रकारिता में सबसे पहले खबर देने (ब्रेकिंग न्यूज) की प्रतियोगिता में समाचार माध्यम तथ्यों की छानबीन और पुष्टि की तकलीफ नहीं उठाते। इसके कारण वे बड़ी गलतियां करते हैं। उनकी साख प्रभावित होती है लेकिन वे सबक सीखने को तैयार नहीं है जबकि पत्रकारिता की एथिक्स आज वही कहती है जो पिछली सदी में गांधी इतना जोर देकर कह रहे थे।

गांधी की पत्रकारिता के उसूलों और मूल्यों की कोई भी बात इस तथ्य की चर्चा किए बिना पूरी नहीं होगी कि उन्होंने अपने अखबारों में विज्ञापन नहीं छापे। वे सिद्धान्त: विज्ञापनों के खिलाफ थे। वे मानते थे कि विज्ञापन छापना पत्रकारिता के मूल्यों के साथ समझौता करना है। उनकी राय थी कि यह बिलकुल अनैतिक होगा कि अखबार एक ओर अपने लेख में लोगों को नशे के खिलाफ सचेत करें लेकिन दूसरी ओर सिगरेट और नशे के विज्ञापन छापे। वे इस द्वैध के खिलाफ थे। उनके अखबार लोगों के समर्थन से चलते थे। लेकिन आज समाचार मीडिया पूरी तरह से विज्ञापन पर निर्भर हैं और उसके लिए किसी भी तरह का समझौता करने के लिए तैयार रहते हैं। विज्ञापनों पर अति-निर्भरता के कारण समाचार मीडिया को न सिर्फ अपनी स्वतंत्रता से समझौता करना पड़ता है बल्कि विज्ञापनदाता उनके कंटेंट को भी तय करने लगते हैं।

आज दुनियाभर में विज्ञापनों पर आधारित समाचार मीडिया का बिजनेस माडल संकट में है। वह एक तरह से ढह रहा है। उसकी साख संकट में है। लेकिन गांधी ने इसे सौ साल पहले ही देख लिया था और समाचारपत्रों को इससे बचने की सलाह दी थी। हैरानी की बात नहीं है कि आज बहुतेरे छोटे-मंझोले और यहां तक कि बड़े समाचारपत्र भी अपने पाठकों/दर्शकों से सब्सक्रिप्शन और चंदे की अपील कर रहे हैं। देर से ही सही, उन्हें यह समझ में आ गया है कि पत्रकारिता का भविष्य विज्ञापनों पर निर्भरता कम करने में ही है। उम्मीद करनी चाहिए कि देर-सवेर वे पत्रकारिता के उद्देश्यों और एथिक्स/मूल्यों के मामले में भी गांधी की पत्रकारिता की ओर लौटेंगे। ●

गांधी और काव्य

- मंगलेश डबराल

गांधी और कविता

- के सच्चिदानंदन

एक दिन एक दुबली सी कविता
जा पंहुची आश्रम में गांधी के
उनकी एक झलक पाने को।
गांधी ने उस पर गौर नहीं किया
वे कात रहे थे सूत
राम की ओर।
कविता ठिठकी रही दरवाज़े पर
कुछ लज्जित सी क्योंकि वह भजन नहीं थी।
कविता ने जब अपना गला खंखारा
तो गांधी ने नरक देख चुके अपने चश्मे की
कनखी से कविता को देखा
और पूछा, 'क्या तुमने कभी सूत भी काता है?
कभी मैले से भरी हुई गाडी खींची है?
कभी सुबह रसोईघर के धुएं के बीच रही हो?
कभी भूख से भी तडपी हो?'

कविता ने कहा, 'मैं जंगल में जन्मी थी
एक बहेलिये के मुंह में।
एक मछुआरे ने मुझे अपनी झोंपड़ी में पाला-पोसा
मैंने कोई काम नहीं सीखा, बस केवल गाती हूं।
पहले दरबारों में गाती थी,
तब मैं मांसल और सुन्दर थी
लेकिन अभी सड़क पर हूं अधपेट।

गांधी कुछ शरारत से मुस्काये।
'यह अच्छा है। लेकिन तुम्हें
छोड़नी होगी संस्कृत में कहने की आदत।
खेतों में जाओ और सुनो
किसानों की बातें,'
कविता अब एक बीज बन गई
और खेतों में जाकर
इंतज़ार करने लगी किसान का
कि वह आए और
बारिश से नम ज़मीन को गोड दे।

- प्रस्तुति : मंगलेश डबराल

आज़ादी के बाद जन्मे ज़्यादातर हिंदीभाषियों ने बचपन की किताबों में गांधी-जी पर सियारामशरण गुप्त की एक सरल सी कविता ज़रूर पढी होगी: 'लगते तो थे दुबले बापू/थे हिम्मत के पुतले बापू/कभी न हिम्मत हारे बापू/आंखों के थे तारे बापू.' कुछ वर्ष बाद उन्होंने 'नोआखाली में' शीर्षक से एक प्रबंध काव्य की रचना भी की जो सन् 1946 में नोआखाली (अब बांग्लादेश में) में भयानक सांप्रदायिक हिंसा के दिनों में गांधी-जी द्वारा शान्ति कायम करने के प्रयासों पर केन्द्रित था। सन् 1948 में नाथूराम गोडसे द्वारा उनकी हत्या पर भी बहुत से कवियों ने अपनी रचनाओं के ज़रिए उन्हें श्रद्धांजलि दी। सच तो यह है कि गांधी और उनके विचारों पर केन्द्रित जितनी कविताएं हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाओं में लिखी गयी हैं, उतनी किसी दूसरे व्यक्ति पर नहीं लिखी गईं और उनकी संख्या हज़ार से अधिक ही होगी (गांधी पर बच्चों के द्वारा और बच्चों के लिए लिखी गई कविताओं की संख्या तो बेशुमार है)। छायावाद के प्रमुख कवि सुमित्रानंदन पन्त की दो कविताएं 'बापू' और 'बापू के प्रति' विभिन्न स्कूली पाठ्यक्रमों में पढाई जाती रही हैं और उनमें से एक की प्रसिद्ध पंक्तियां हैं: 'सुख-भोग खोजने आते सब, तुम करने आये सत्य-खोज/जग की मिट्टी के पुतले जन, मन की आत्मा के मनोज।' लेकिन शायद गांधी पर सबसे अधिक ओज और आवेग से भरी कविताएं रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखीं। वे गांधी के व्यक्तित्व और कार्य को कहीं 'एक मशाल, तूफ़ान, गर्जन और भूकंप' की तरह चित्रित करते हैं तो कहीं उस आंधी को 'नीरवता की आवाज़' कहते हैं : 'तू चला तो लोग कुछ चौंक पड़े,' 'तूफ़ान उठा या आंधी है'?/ईसा की बोली रूह, अरे यह तो बेचारा गांधी है!' गांधी की हत्या से कुछ समय पहले लिखी गई उनकी चार लम्बी कविताओं के एक संग्रह का नाम 'बापू' है। इसी तरह, हरिवंश राय बच्चन की तीन कविताएं गांधी को समर्पित हैं। उनके दो कविता संग्रहों 'खादी के फूल' और 'सूत की माला' में भी गांधी-विचार के इर्द गिर्द रची गई कविताएं हैं। नागार्जुन अपनी एक कविता में गांधी को 'ग्रामात्मा' और 'ग्राम प्राण' कह कर संबोधित करते है : 'तुम ग्राम हृदय, तुम ग्राम दृष्टि/ तुम कठिन साधना के प्रतीक.' प्रगतिशील धारा के एक और कवि केदारनाथ अग्रवाल कहते हैं : 'मर कर जीवन को जीना/सहज सुलभ है तुमको।'

लेकिन ऐसी ज़्यादातर कविताओं में गांधी की महिमा, त्याग, संघर्ष और उनकी मानवता का गुणगान अधिक हुआ और उन्हें कई आत्यंतिक विशेषणों से नवाज़ गया। ज़्यादातर रचनाओं में गांधी को एक उदात्त महा-वृत्तान्त के रूप में देखा गया।

एक और कविता जिस पर भारी विवाद हुआ और अदालत तक पहुंचा, मराठी कवि वसंत दत्तात्रेय गुर्जर की है : 'गांधी मला भेटला' यानी 'गांधी मुझे मिला'। पहली बार सन् 1984 में प्रकाशित होते ही यह कविता लोकप्रिय हुई और उसके पोस्टर भी तैयार किए गए। इस व्यंग्य कविता में गांधी को आज़ाद हिंदुस्तान में कई ऐसी जगहों पर चित्रित किया गया था, जहां उनके होने की कोई संभावना नहीं थी या जहां उनका होना किसी कुफ्र से कम नहीं था : मंदिर, मस्जिद, चर्च के अलावा क्रेमलिन, ओशो आश्रम और मुंबई के चकलाघरों में भी वे थे। कविता काफी बेबाक थी, लेकिन कवि का मंतव्य यह बतलाना था कि आज़ादी के बाद हमने गांधी की ऐसी दुर्दशा कर दी है। दस वर्ष बाद 1994 में महाराष्ट्र स्टेट बैंक कर्मचारी यूनियन की पत्रिका में इस कविता के

पुनर्प्रकाशन के बाद एक संस्था पतित पावन संगठन ने बखेड़ा कर दिया, उस पर प्रतिबन्ध लगाने की मांग की और कविता को सुप्रीम कोर्ट में पहुंचा दिया। कोर्ट ने राष्ट्रपिता को 'अश्लील' ढंग से चित्रित करने पर आपत्ति की, लेकिन मामले को फिर से स्थानीय अदालत में भेज दिया जहां दुर्भाग्य से उसका फैसला अभी तक रुका हुआ है। मराठी के मशहूर लेखक भालचंद्र नेमाडे ने उसे महत्त्वपूर्ण कविता मानते हुए मराठी कविता के एक संकलन में शामिल करने का एलान किया था, लेकिन यह भी संभव नहीं हुआ। फिलहाल गुर्जर बीमार हैं और कविता लातूर की एक अदालत में लंबित है।

ऐसी कविताओं की संख्या भी कम नहीं है जिनमें गांधी को एक नए, मार्मिक और आज के लिए प्रासंगिक दृष्टिकोण से देखा गया है। नई कविता के प्रसिद्ध कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने गांधी के दर्शन पर बहुत सी रचनाएं की हैं और उनका एक संग्रह 'गांधी पंचशती' गांधी दर्शन पर केन्द्रित है। उनकी एक दिलचस्प कविता 'तुम कागज़ पर लिखते हो' गांधी के 'सूत कातने, कपास धुनने, अनाज के कंकड़ बीनने, किताब की जिल्दसाजी करने' आदि का जिक्र करते हुए बताती है कि एक बार एक वकील गांधी से मिलने आये तो वे चक्की पीस रहे थे। गांधी ने बातचीत करने के दौरान उनसे अपने काम में हाथ बटाने के लिए कहा। वकील साहब को मजबूरन चक्की पीसने बैठना पड़ा। बच्चन अपनी एक कविता में गांधी की हत्या के चालीस दिन बाद उनकी शहादत की जगह जाते हैं और हरे लॉन के बीच फूलों को देखकर उन्हें महसूस होता है जैसे – 'बापू का लहू अब भी पृथ्वी के ऊपर ताज़ा-ताज़ा है' और फिर, 'सुन पड़े धमाके तीन मुझे फिर गोली के/कांपने लगी पांवों के नीचे की धरती,/फिर पीड़ा के स्वर में फूटा 'हे राम' शब्द,/चीरता हुआ विद्युत सा नभ के स्तर पर' गांधी की प्रेरणा से स्वाधीनता संघर्ष में कूदने वाली सुभद्रा कुमारी चौहान की एक कविता 'सभा का खेल' बच्चों द्वारा खेले जा रहे नाटक को आज़ादी के संघर्ष, चरखा, खादी और अहिंसा के रूपक में बदल देती है : 'हुई सभा प्रारंभ, कहा/ गांधी ने चरखा चलवाओ,/नेहरू जी भी बोले भाई/ खद्दर पहनो पहनाओ/उठकर फिर देवी सरोजिनी/ धीरे से बोलीं, बहनो! हिंदू मुस्लिम मेल बढ़ाओ/ सभी शुद्ध खद्दर पहनो'।

मलयालम के जाने-माने कवि के सच्चिदानंदन की तीन कवितायें इस सन्दर्भ में खास तौर से उल्लेखनीय हैं : 'गांधी और कविता', 'गांधी और पेड़' और 'अहिंसा पर एक विमर्श'। 'गांधी और कविता' दोनों की बातचीत की मर्म छूने वाली कल्पना है जिसमें एक 'दुबली' सी कविता गांधी के पास आती है और दरवाज़े पर ठिठकी हुई रहती है। गांधी पास बुलाकर उससे सवाल करते हैं कि क्या तुमने सूत काता है या मैले से भरी गाड़ी खींची है या कभी भूख से बिलबिलाई हो। कविता को इस सबका कोई अनुभव नहीं क्योंकि उसका जन्म 'जंगल में एक बहेलिये के मुख से हुआ, वह एक मछुआरिन की झोपड़ी में पली-बढ़ी, गाने के अलावा उसे कोई काम नहीं आता, वह दरबारों में भी गाती रही, लेकिन अब सड़क पर आ गई है। गांधी उसे बहुत दिलचस्प सलाह देते हैं कि तुम संस्कृत में बोलना छोड़ दो, खेतों में जाओ और किसानों की बात सुनो। आखिरकार कविता एक बीज बन जाती है, खेत में किसान की प्रतीक्षा करती है कि वह आए और बारिश में भीगी हुई धरती को गोड दे (ताकि जीवन जन्म ले सके)। यह कविता गांधी के माध्यम से कविता के इतिहास, उसके क्लासिकी स्वरूप और उसकी नयी, बदली हुई भूमिका और जन साधारण से जुड़ने की जिम्मेदारी को भी रेखांकित करती है। उनकी एक और कविता 'गांधी और पेड़' में भी एक विलक्षण फंतासी है। एक बूढ़ा पेड़ चलते हुए गांधी से कुछ देर उसकी छाया में विश्राम करने के लिए कहता है। लेकिन गांधी को विश्राम का अवकाश नहीं है। पेड़ अपना दुखड़ा सुनाते हुए कहता है कि वह अब फूल और फल नहीं दे सकता इसलिए चिड़ियाँ उस पर नहीं बैठतीं। गांधी कहते हैं, 'तू कुल्हाड़ी के इंतज़ार में है और मैं गोली के'। पेड़ कहता है, 'ऐसा मत कहिये. लोगों को अब भी मेरी छांह की ज़रूरत है'। जब गांधी नहीं रुकते तो पेड़ ही उनके साथ चल पड़ता है और कुछ हवा चलने के बाद उस पर सफ़ेद फूल आ जाते हैं। कविता के अंत में गोली लगने पर गांधी की देह से निकला हुआ लाल खून पेड़ पर लाल रंग के फूलों में बदल जाता है। यह कविता प्रकृति और मानवीय संघर्ष की एकता को भी एक नए ढंग से रेखांकित करती है। तीसरी कविता 'अहिंसा के बारे में एक विमर्श' में बलात्कार की शिकार एक गर्भवती महार स्त्री, ज़मींदार-सवर्ण अत्याचार से पीड़ित एक गूंगा भील युवक और तेंदुए के हमले में घायल एक कोरबा आदिवासी गांधी के पास आकर बताते हैं कि उनकी अहिंसा को अपनाने की वजह से उनकी ऐसी हालत हुई है। गांधी उन्हें अहिंसा का वास्तविक अर्थ समझाने की कोशिश करते हुए कहते हैं कि तेंदुए ने अपने स्वभाव के अनुसार काम किया, इसलिए उसे माफ़ किया जा सकता था, लेकिन स्त्री के बलात्कारी और अत्याचारी ज़मींदार से प्रतिशोध लेना ही सच्ची अहिंसा होती। 'मैंने यह कभी नहीं कहा कि अपने जीवन और सम्मान की रक्षा करने के लिए हिंसा करना गलत है। हां, इसे आखिरी उपाय के रूप में ही अपनाना होगा।' तीनों पीड़ित गांधी की बात समझ नहीं पाते, लेकिन महार स्त्री की कोख में पल रहे शिशु की एक मद्धिम सी आवाज़ सुनाई पड़ती है, 'मुझे समझ में आ रहा है।' यह कविता गांधी के अहिंसा-विचार को एक सार्थक परिप्रेक्ष्य में रखती है और गर्भस्थ शिशु के माध्यम से उसे भविष्य के लिए भी प्रासंगिक बनाती है।

इस सिलसिले में सूचना-प्रसारण मंत्रालय से अवकाश-प्राप्त एक अधिकारी और गांधी विचार से प्रभावित महिलाकल्पना पालकीवाला की कोशिश भी गौर करने लायक है। उन्होंने कुछ वर्ष पहले गांधी से जुड़ी कविताओं और उनके गायन की एक परियोजना 'बापू गीतिका' शुरू की जिसमें 14 भाषाओं की 108 कविताएं और 'वैष्णव जन तो तेने कहिये/ जे पीर पराई जाने रे' जैसे गीत भी शामिल हैं, जो गांधी को प्रिय थे। इन कविताओं का संकलन कभी प्रकाशन विभाग से छपा था और कल्पना के प्रयासों से इसका पुनर्प्रकाशन संभव हुआ। कविताओं को सांगीतिक संरचना देना अक्सर कठिन होता है, लेकिन संगीतकार उमाशंकर चंदोला ने बहुत परिश्रम से इसे अंजाम दिया और उसका एल्बम भी जारी हुआ। कल्पना पालकीवाला ने 'बापू गीतिका' की परिकल्पना गांधी के जीवन दर्शन को विद्यालयी छात्रों तक पहुंचाने के उद्देश्य से की थी और इसमें उन्हें कामयाबी भी हासिल हुई है। ●

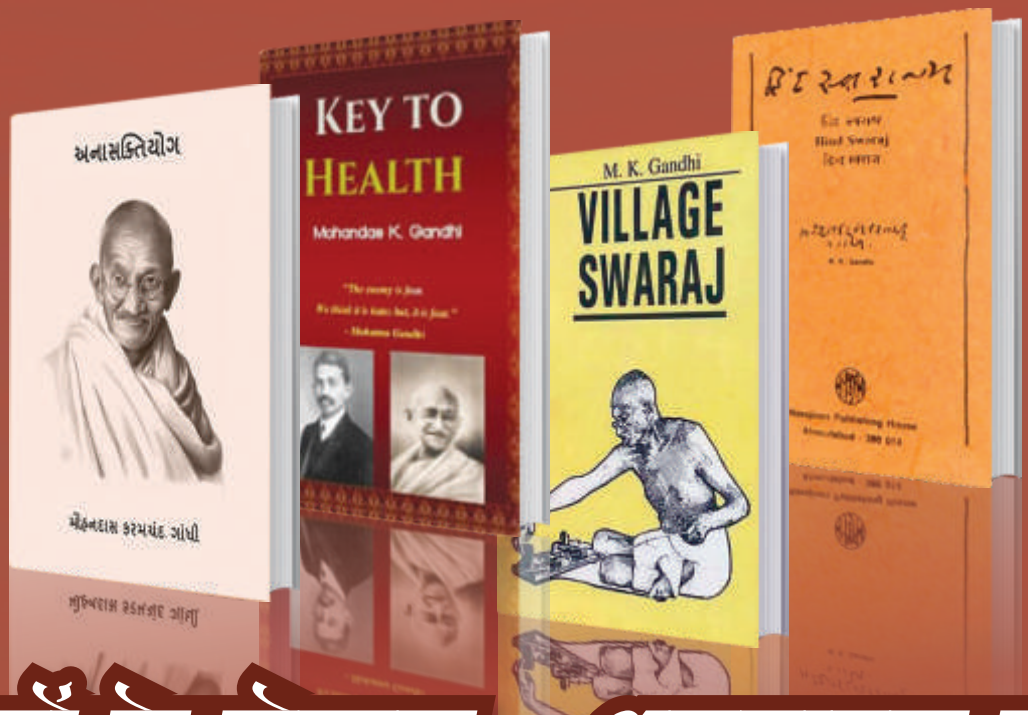

पुस्तकों के लेखक - अनुवादक गांधी

रोशनी का नया दरवाजा खोलती गांधी की पुस्तकें

- दीपक मंजुल

किताबें सभ्यता की वाहक हैं। किताबों के बिना इतिहास मौन है, साहित्य गूंगा है, विज्ञान अपंग है, विचार और अटकलें स्थिर हैं। ...किताबें परिवर्तन का इंजन हैं, विश्व की खिड़कियां हैं, समय के समुद्र में खड़े प्रकाश स्तंभ हैं।....वे सच्ची साथी हैं, शिक्षक हैं, जादूगर हैं...

अमरीकी इतिहासकार और विचारक बारबरा तुचमन ने पुस्तक के संबंध में जो कहा वह उनके समय में भी उतने ही सही थे जितने उनसे पहले, और उनकी मृत्यु के बाद आगे के समयों में भी। कहना न होगा कि पुस्तकें मनुष्य की सबसे अच्छी दोस्त हैं, आज के लिए भी और हमेशा के लिए।

विश्व के बड़े-से-बड़े लेखक, विचारक और दार्शनिक पुस्तकों के सान्निध्य में रहकर ही बड़े, विद्वान और महान बन पाए। 19वीं-20वीं सदी के भारत के ही नहीं, विश्व के भी सबसे बड़े नायक मोहनदास करमचंद गांधी का संपूर्ण जीवन प्रेरणा और संदेश देने वाला एक प्रकाश स्तंभ की तरह रहा, जिसने अपने समय को जितना बदला उससे अधिक भविष्य को बदल देने वाला साबित हुआ। अपने बालपन में माता के स्नेहपूरित आंचल में रहकर धार्मिक-आध्यात्मिक बातों का श्रवण करने वाला बालक युग के अनुरूप ऐसे ही ग्रंथों को पढ़ते हुए बड़ा हुआ और बड़े होकर विलायत जाकर वकालत की पढ़ाई कर वकील बना। प्रारब्ध ने दक्षिण अफ्रीका जाकर रहने और लिंगभेद के विरुद्ध लड़ने का एक महत्त्वपूर्ण अवसर उन्हें प्रदान किया, जहां रहकर उन्होंने सत्य और अहिंसा का प्रारंभिक पाठ सीखा। लगभग बीस वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका में रहकर जब वे भारत लौटे तो फिर मातृभूमि को पराधीनता की बेड़ी से मुक्त कर और विश्व मानवता को सत्य और अहिंसा का नया शस्त्र देकर ही वे इस असार संसार से मुक्त हुए। ऐसे महान व्यक्तित्व के जीवन में पुस्तकों की क्या भूमिका रही यह जानना बड़ा रोचक, दिलचस्प और ज्ञानवर्धक एवं उत्प्रेरक होगा।

मूल रूप से अपनी मातृभाषा गुजराती में लिखी उनकी पुस्तक 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग की कहानी', जो वस्तुतः उनकी आत्मकथा है, जिसे उन्होंने 1925 के अंतिम समय से लिखना शुरू कर 1929 के शुरू में समाप्त किया, उनके जीवन को जानने-समझने का एक सर्वप्रमुख दस्तावेज है। अपनी इसी पुस्तक में उन्होंने उस पुस्तक का उल्लेख किया है, जिसने उन्हें गहरे तक प्रेरित और प्रभावित किया। दक्षिण अफ्रीका का पेशे से वकील युवक, जो तब 'मोहनदास' (करमचंद गांधी) था, और जिसे बाद में महात्मा गांधी होना था, दक्षिण अफ्रीका की एक घटना का वर्णन अपनी ऊपर लिखित पुस्तक में इस प्रकार करता है, '...मैं नेटाल के लिए (जोहांसबर्ग से) रवाना हुआ। पोलाक (दक्षिण अफ्रीका के उनके मित्र, 'क्रिटिक' पत्रिका के उपसंपादक) मुझे छोड़ने स्टेशन तक आए और यह कहकर कि 'यह रास्ते में पढ़ने योग्य है, आप इसे पढ़ जाइए, आपको पसंद आएगी' उन्होंने रस्किन की 'अनटू दिस लास्ट' पुस्तक मेरे

हाथ में रख दी। इस पुस्तक को हाथ में लेने के बाद मैं इसे छोड़ ही न सका। इसने मुझे पकड़ लिया। जोहांसबर्ग से नेटाल का रास्ता लगभग 24 घंटों का था। ट्रेन शाम को डरबन पहुंचती थी। वहां पहुंचने के बाद मुझे सारी रात नींद न आई। मैंने पुस्तक में सूचित विचारों को अमल में लाने का इरादा किया।... मेरा पुस्तकीय ज्ञान बहुत ही कम है।... जो थोड़ी पुस्तकें मैं पढ़ पाया हूं, कहा जा सकता है कि उन्हें मैं ठीक से हजम कर सका हूं। इन पुस्तकों में से जिसने मेरे जीवन में तत्काल महत्व के रचनात्मक परिवर्तन कराए, वह 'अनटू दिस लास्ट' ही कही जा सकती है।...मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मेरे अंदर गहराई में छिपी पड़ी थी, रस्किन के ग्रंथरत्न में मैंने उनका प्रतिबिंब देखा और इस कारण उसने मुझ पर अपना साम्राज्य जमाया और मुझसे अमल करवाया।...

'अनटू दिस लास्ट' पुस्तक के संबंध में गांधी जी ने कहा था कि इससे पूर्व उन्होंने रस्किन की किसी पुस्तक को नहीं पढ़ा था। विद्याध्ययन के समय भी पाठ्यपुस्तकों से इतर उन्होंने अन्य पुस्तकें नहीं पढ़ी थीं। बाद में, उन्होंने रस्किन की इस पुस्तक का गुजराती में 'सर्वोदय' नाम से अनुवाद किया। पुस्तक पढ़कर उन्होंने जो संदेश ग्रहण किया उनमें से एक था कि 'सबकी भलाई में ही हमारी भी भलाई सन्निहित है'। दूसरा यह कि आजीविका का सबको बराबर अधिकार है, पेशा चाहे जो हो उसका मूल्य एक होना चाहिए। तीसरा, सादा, किंतु मेहनत करके जीने वाला जीवन ही सच्चा जीवन है। कहना न होगा कि सत्य, अहिंसा और बराबरी का भाव जैसे भावी जीवनादर्श को उन्होंने इसी पुस्तक को पढ़कर, मनन कर अपनाया और अमल में लाया था। एक पुस्तक मनुष्य के जीवन को कैसे बदल देती है इसे इस प्रसंग को पढ़कर जाना-समझा जा सकता है। तुचमन की इस पंक्ति 'ये (पुस्तकें) परिवर्तन का इंजन हैं' का अर्थ भी इस प्रसंग में खुलता हुआ हम देख सकते हैं। एक अन्य विद्वान के पुस्तक के संबंध में कहे गए कथन का अर्थ भी यहां खुलता और स्पष्ट होता दिखता है जिसमें वे कहते हैं कि - किताबें आपके मस्तिष्क को खोलती हैं, आपकी सोच को बड़ा करती हैं और आपको मजबूत बनाती हैं। जब वेरा नाजीरियन यह कहते हैं कि 'जब भी आप एक अच्छी पुस्तक पढ़ते हैं तो कहीं-न-कहीं दुनिया में आपके लिए रोशनी का एक नया दरवाजा खुलता है', तो लगता है कि वे बिलकुल सही कह रहे हैं।

महात्मा गांधी जितने अच्छे नेता थे, उतने ही अच्छे लेखक भी थे। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। यद्यपि उनका जीवन एक अनथक संघर्ष का सफरनामा था, किंतु उन्होंने तमाम संघर्षों और अवरोधों के बावजूद लिखना नहीं छोड़ा। चाहे जीवन के प्रारंभ में दक्षिण अफ्रीका में उनका संघर्षपूर्ण जीवन रहा हो या फिर, 1915 में भारत लौटने पर स्वाधीनता का संघर्ष रहा हो, यह सब कुछ उन्होंने अपनी पुस्तक में दर्ज किया जो आज विश्व की धरोहर बन गई है। गांधी जी ने पहली पुस्तक 'हिंद स्वराज' लिखी। यह पुस्तक उन्होंने इंग्लैंड से भारत लौटते समय 'कैसिल' नामक जहाज पर मूल गुजराती में लिखी। जनवरी, 1910 में प्रकाशित इस पुस्तक पर बंबई सरकार ने रोक लगा दी थी। इस पुस्तक के परिशिष्ट में उन्होंने उन 20 पुस्तकों की सूची दी है जिन्हें पढ़कर उन्होंने इस पुस्तक को लिखने का विचार बनाया।

दूसरी पुस्तक 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' पहली बार मूल गुजराती में यरवदा जेल में रहते हुए लिखी गई थी (1923 में लिखना शुरू)। बाद में इसका हिंदी व अंग्रेजी अनुवाद भी हुआ। इस पुस्तक में दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी के संघर्ष का वर्णन है, साथ ही, अंग्रेजों के प्रति अहिंसक प्रतिरोध के प्रथम प्रयोग का भी।

'सत्य के साथ मेरे प्रयोग की कहानी' गांधी जी की आत्मकथा है। इस पुस्तक में 1920 तक के गांधी जी के निजी जीवन तथा कुछ मुख्य ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। 1925 के नवंबर से शुरू करके 1929 के फरवरी तक इस पुस्तक की लेखन-अवधि रही। यह लिखने के साथ ही 'नवजीवन' के गुजराती एवं हिंदी संस्करणों तथा 'यंग इंडिया' में अंग्रेजी में साथ-साथ धारावाहिक प्रकाशित होती रही।

'गीता पदार्थ कोश' गांधी जी की एक अन्य महत्वपूर्ण पुस्तक है। यह पुस्तक 'गीता' पर उनके सतत चिंतन-मनन का प्रतिफलन है। 1930 में नवजीवन प्रकाशन से 'अनासक्ति योग' शीर्षक से यह पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई।

'ग्राम स्वराज' और 'स्वास्थ्य की कुंजी' गांधी जी द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें हैं।

गांधी जी में लिखने की प्रवृत्ति आरंभ से ही थी। यह लिखना पुस्तक रूप में, पत्रिकाओं के संपादक रूप में तथा छिटपुट टिप्पणियों एवं पत्रों के रूप में प्रकट होता रहा। गांधी जी एक सफल लेखक होने के साथ-साथ सफल पत्रकार और संपादक भी थे। कई दशकों तक उन्होंने अनेक पत्रों का संपादन किया। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' जर्नल की शुरुआत की। भारत वापस लौटकर उन्होंने 'हरिजन' और 'यंग इंडिया' का संपादन किया। 'नवजीवन' शीर्षक से उन्होंने मासिक पत्रिका भी निकाली। 'नवजीवन' गुजराती के अलावा हिंदी में भी छपती थी। इन पत्रों के माध्यम से उन्होंने देश में विमर्श और संवाद का एक लोकतांत्रिक वातावरण बनाया और स्वाधीनता संघर्ष का एक वैचारिक परिवेश निर्मित किया। उनका लेखन सामन्य तौर पर देश में लोगों को जागरूक करने के लिए होता था। एक सफल लेखक होने के अलावा वे एक सफल पत्राकार और संपादक भी थे।

गांधी जी गुजराती के अलावा अंग्रेजी और हिंदी में भी लिखते थे। बहुत कम लोगों को पता होगा कि वे एक अच्छे अनुवादक भी थे। रस्किन के 'अनटू दिस लास्ट' का गुजराती भाषा में अनुवाद 'सर्वोदय' नाम से प्रकाशित हुआ था। गांधी जी के विचार जीवन के प्राय: सभी क्षेत्राों और अनुशासनों में देखने-पढ़ने को हमें मिल जाते हैं। राजनीति, समाज, धर्म, अध्यात्म, शिक्षा, स्वास्थ्य, नैतिकता, उद्योग, ब्रषि आदि शायद ही कोई विषय या क्षेत्रा हो गांधी जी वाचिक या लिखित रूप में प्राय: सभी पर अपने विचार समय-समय पर प्रकट करते थे। भारत सरकार ने उनके समस्त कार्यों को 1960 में अनेक वॉल्यूम में प्रकाशित किया था। वर्ष 2020 में हम गांधी जी की 151वीं जयंती मनाते हुए उनके लेखक-संपादक-अनुवादक रूप को याद कर पुस्तकों के प्रति उनके अप्रतिम लगाव को भी स्मरण करें यह सहज-स्वाभाविक एवं प्रासंगिक तथा समीचीन भी है। ●

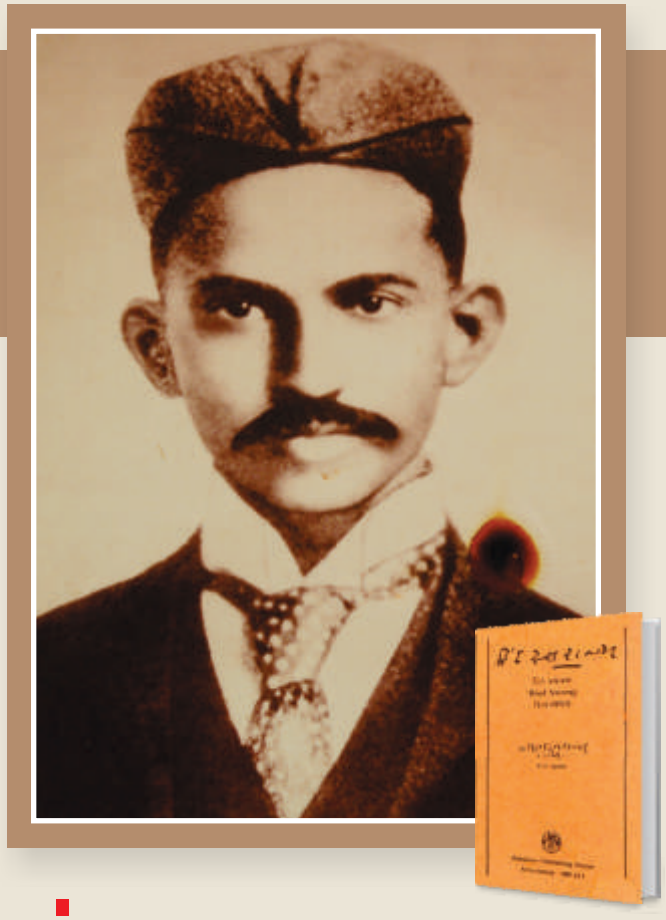

हिन्द स्वराज

आधुनिक भारतीयता

- डॉ. कमल किशोर गोयनका

गांधी के 'हिन्द स्वराज' की इधर काफी चर्चा है। 'हिन्द स्वराज' की रचना की शताब्दी नवम्बर, 2009 से आरम्भ होती है। गांधी ने इंग्लैंड में चार महीने रहने के बाद 13 नवम्बर, 1909 को 'किल्डोनन कैसिल' नामक जलयान से दक्षिण अफ्रीका के लिए प्रस्थान किया और इसी तिथि से गुजराती में 'हिन्द स्वराज' का लेखन आरम्भ हुआ। गांधी ने इसे 3 से 22 नवम्बर, 1909 को समाप्त किया। वे 30 नवम्बर, 1909 को जोहान्सबर्ग पहुंचे। दक्षिण अफ्रीका पहुंचते ही गांधी ने गुजराती में लिखित 'हिन्द स्वराज' को 'इंडियन ओपिनियन' के दिनांक 11 व 18 दिसम्बर, 1909 के अंकों में प्रकाशित किया और पुस्तक रूप में इसका प्रकाशन जनवरी, 1910 में हुआ। गांधी ने हिन्द स्वराज के गुजराती में प्रकाशित प्रथम संस्करण की प्रस्तावना जहाज पर ही 22 नवम्बर, 1909 को लिख ली थी, जिसका अर्थ है कि गांधी ने इसे 'इंडियत ओपिनियन' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित करने के साथ उसे पुस्तकाकार रूप में भी प्रकाशित करने का निर्णय एक साथ किया था। 'हिन्द स्वराज' के मूल गुजराती संस्करण (प्रथम) की प्रतियां मुम्बई पहुंचीं तो ब्रिटिश सरकार ने इसे 'राजद्रोहात्मक' मानकर उसे जब्त कर लिया और प्रतिबन्ध लगा दिया। ब्रिटिश सरकार ने 24 मार्च, 1910 को प्रकाशित गजट में इस जब्ती की सूचना प्रकाशित की, किन्तु गांधी को कुछ दिन पूर्व ही इसकी सूचना मिल गई थी और उनके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। 'इंडियन ओपिनियन' के 19 मार्च, 1910 के अंक में 'हिन्द स्वराज पर रोक' शीर्षक से छपी खबर में लिखा है – भारत से तार द्वारा खबर मिली है कि भारत मैं श्री गांधी की लिखी 'हिन्द स्वराज' पुस्तक को बेचने पर रोक लगा दी गई है। यह एकदम आश्चर्य की बात तो नहीं है। इस पुस्तक के कुछ विचार ब्रिटिशराज के विरुद्ध पड़ते हैं।

'हिन्द स्वराज' (गुजराती) की जब्ती पर गांधी ने निर्भयता से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की और तत्काल कुछ निर्णय लिए। गांधी ने तत्काल 'हिन्द स्वराज' के मूल गुजराती रूप का अंग्रेजी में अनुवाद करने का निर्णय किया। गांधी ने इसका शब्दश: अनुवाद नहीं किया और मूल के भावों को सही रूप में रखने का प्रयत्न किया, यद्यपि उन्होंने माना कि इसमें उन्हें पूरी सफलता नहीं मिली। गांधी गुजराती के अंश को पढ़कर उसका अंग्रेजी अनुवाद बोलते थे और उनके सहयोगी कैलेन बैक उसे लिखते थे। गांधी ने अंग्रेजी अनुवाद अंग्रेजों को पुस्तक को समझाने के लिए किया था और इसीलिए इसका शीर्षक 'इंडियन होमरूल' रखा। गांधी ने माना कि वे यदि इस पुस्तक को मूल रूप में अंग्रेजों के लिए लिखते तो विषय का प्रतिपादन एवं लेखन-शैली भिन्न होती। 'हिन्द स्वराज' (गुजराती) की जब्ती के लगभग दो महीने बाद ही इसका अंग्रेजी अनुवाद 'इंडियन होमरूल' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस अंग्रेजी अनुवाद में गांधी की लिखी एक भूमिका है जिस पर 20 मार्च, 1910 की तिथि छपी है। यह एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है। इसमें गांधी ने 'हिन्द स्वराज' की जब्ती के कारणों और अंग्रेजी अनुवाद की प्रक्रिया आदि पर अपना पक्ष स्पष्ट किया है। गांधी ने जब्ती के कारणों में जो सर्वप्रमुख माना वह यह है कि ब्रिटिश सरकार भयग्रस्त है। 'हिन्द स्वराज' में ब्रिटिश सरकार के तौर-तरीकों तथा पश्चिमी सभ्यता जिसका प्रतिनिधित्व ब्रिटिश सरकार करती है, उसकी निन्दा की गई है। गांधी ने सरकार द्वारा 'राजद्रोहात्मक' मानने की आपत्ति का उत्तर देते हुए लिखा कि इसमें हिंसा का तनिक-सा भी समर्थन नहीं है, बल्कि वह तो हिंसा के आधुनिक तरीके के अपनाने का विरोध करता है, लेकिन मैं 'न्याय और नीति' के नाम पर जो सरकार कर रही है, मैं उसका आलोचक हूं और अगर मैं ऐसा नहीं करता तो मैं सत्य का, भारत का और जिस साम्राज्य के प्रति वफ़ादार हूं उसका द्रोही बनता। गांधी ने कुछ समय बाद फिर 'इंडियन ओपिनियन' (7 मई, 1910) को लिखा कि जब्ती के मूल में भारत सरकार का भयग्रस्त होना है, किन्तु ऐसे दमन से खतरनाक प्रकाशनों का प्रचार रुक नहीं सकता और वैसे ही सत्याग्रही पर दमन का कोई असर नहीं होता। सत्याग्रह ही हिंसा को रोक सकता है और यदि सरकार चाहे तो हम भी योग देना चाहेंगे।

'हिन्द स्वराज' के सम्बन्ध में गांधी के इन विचारों को समझने तथा उसके सूत्रों को जानने के लिए उसकी रचना की पृष्ठभूमि जानना आवश्यक है। इस जिज्ञासा का उत्तर खोजना जरूरी है कि क्या 'हिन्द स्वराज' की रचना अचानक हुए बौद्धिक विस्फोट के रूप में हुई या इसकी रचना की भूमिका उनके विगत वर्षों के अनुभवों तथा निर्मित प्रतिमानों से तैयार हो रही थी? दक्षिण अफ्रीका के गांधी के अनुभवों तथा उनके जीवन-सिद्धान्तों एवं संघर्ष में किए गए प्रयोगों के इतिहास को देखें तो सत्याग्रह, अहिंसा, सविनय अवज्ञा, आत्मबल, पश्चिमी सभ्यता का विरोध जैसी कई धारणाओं को 'हिन्द स्वराज' में स्थान मिला है। गांधी ने माना भी है कि 'हिन्द स्वराज' अनेक वर्षों के चिन्तन का दोहन है तथा ये संघर्ष के दौरान परिपक्व हुए हैं और इन्हें बहुत सोच-समझकर व्यक्त किये हैं। यदि हम 'हिन्द स्वराज' की रचना से लगभग एक महीने पहले दिऐ गए उनके एक भाषण तथा एक पत्र को देखें तो इनमें व्यक्त विचारों से स्पष्ट होता है कि गांधी 'हिन्द स्वराज' को लिखने के कितने दबाव में थे। गांधी ने 13 अक्टूबर, 1909 को इंग्लैंड में हैम्प स्टेड पीस एंड आर्बिट्रेशन सोसाइटी के कार्यक्रम में पूर्व और पश्चिम पर एक भाषण दिया। इसमें गांधी ने आधुनिक सभ्यता अर्थात पश्चिमी सभ्यता की कटु आलोचना की और आत्मा के स्थान पर दम देने, यन्त्रों से नैतिकता का पतन होने, तीर्थ स्थानों को आमोद-प्रमोद का केन्द्र पवित्रता को भंग करने की प्रवृत्ति को घातक माना।

'हिन्द स्वराज' की रचना में देश-विदेश में होने वाली हिंसात्मक घटनाओं तथा आतंकवादी वित्तारधारा की प्रेरणा को गांधी ने स्वीकार किया है। गांधी ने 'यंग इंडिया' (26 जनवरी, 1921) में 'हिन्द स्वराज' शीर्षक टिप्पणी में लिखा, जब मैं लन्दन से (1909) दक्षिण अफ्रीका लौट रहा था, उस समय समुद्री-यात्रा के दौरान भारतीय आतंकवादी विचारधारा और उससे मिलती-जुलती विचारधारा रखने वाले दक्षिण अफ्रीका के लोगों के जवाब में मैंने इसे लिखा था। लन्दन में मुझे हर जाने-पहचाने भारतीय आतंकवादी के सम्पर्क में आने का मौका मिला था। उनकी बहादुरी ने मुझे प्रभावित किया, लेकिन मैंने उनके जोश को गुमराह पाया। मैंने महसूस किया कि भारत की मुसीबतों का इलाज हिंसा नहीं है और भारतीय सभ्यता को आत्मरक्षा के लिए दूसरी तरह के और ज्यादा ऊंचे किस्म के हथियार की ज़रूरत है।

गांधी अपने विचारों की सत्ता के सम्बन्ध में यह स्पष्टीकरण देते हैं कि 'हिन्द स्वराज' में व्यक्त विचार उनके हैं और उनके नहीं भी हैं। गांधी इस पहेली को स्पष्ट करते हैं। ये विचार उनके हैं, क्योंकि वे उनकी आत्मा में बसे हैं, उनकी उन पर पूरी आस्था है और वे उन्हें आचरण में उतारते हैं, लेकिन वे यह भी कहते हैं कि वे मेरे नहीं हैं, क्योंकि मैंने उन्हें अनेक पुस्तकों के अध्ययन से निकाला है। गांधी 'इंडियन ओपिनियन' के 2 अप्रैल, 1910 के अंक में लिखते हैं, 'हिन्द स्वराज' में प्रकट किए गए विचार मेरे विचार हैं और मैंने भारतीय दर्शनशास्त्र के आचार्यों के साथ टॉल्स्टॉय, रस्किन, थोरो, इमर्सन और अन्य लेखकों का भी नम्रतापूर्वक अनुसरण करने का यत्न किया है। इस प्रकार गांधी अनेक विद्वानों के विचारों में से अपने अनुकूल विचारों को संश्लिष्ट करके अपना बनाकर प्रस्तुत करते हैं और 'हिन्द स्वराज' में वे अपना एक हिन्द-दर्शन देते हैं। 'हिन्द स्वराज' में एक शब्द भी ऐसा नहीं है जिसकी उपयुक्तता की पुष्टि न की जा सके। गांधी कहते हैं कि यदि मुझे उसे आज फिर से लिखना पड़े तो हो सकता है कि उसकी भाषा में बदलाव करूं, लेकिन विचारों में कभी बदलाव नहीं कर सकता। गांधी इस सत्य को भी जान रहे थे कि 'हिन्द स्वराज' में व्यक्त सभी विचारों का आचरण तथा उन्हें क्रियान्वित करना सरल नहीं है, किन्तु इससे वे अपने विचारों को गलत मानने को तैयार नहीं थे। उन्होंने 'नवजीवन' (गुजराती) के 18 अप्रैल, 1926 के अंक में लिखा 'हिन्द स्वराज' में मैंने जो विचार प्रकट किए हैं, उन्हें मैं पूरी तरह व्यवहार में न ला सकता होऊं तो मुझे भी ऐसा नहीं लगता कि इन विचारों को सही कहना गलत है। गांधी इस प्रकार जीवन के अन्त तक 'हिन्द स्वराज' के विचारों में पूरी आस्था रखते रहे तथा उसके असली मुद्दों में उन्हें कभी परिवर्तन करने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। वे ज्यादा-से-ज्यादा उसके अनुच्छेदों के क्रम में, उसके प्रस्तुतीकरण तथा भाषा में ही कुछ परिवर्तन की बात लिखते रहे, परन्तु इन्हें भी करने की ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं हुई। उन्होंने लिखा कि चालीस वर्ष के बाद भी मेरे वही विचार हैं जो उस वक्त थे और मेरी कलम कभी 'दुरुस्ती' के लिए तैयार नहीं हुई।

गांधी ने 2 मई, 1910 को गोपालकृष्ण गोखले को पत्र में लिखा कि मैं 'हिन्द स्वराज' पर आपकी बहुमूल्य राय चाहता हूं। इसकी काफी आलोचना हुई है, परन्तु मैं आपसे बहस नहीं करूंगा और जब आपसे मिलने का सौभाग्य होगा तो मैं उन कतिपय विचारों की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करूंगा जिनमें मेरा दृढ़ विश्वास है और जो मुझे बिल्कुल ठीक लगते हैं। इन विचारों में पश्चिमी सभ्यता, स्वराज, पत्रकारिता, स्वदेशी आन्दोलन, अंग्रेजी की नकल, यन्त्रीकरण, हिन्दू-मुस्लिम एकता, सत्याग्रह, देश- प्रेम, आत्मबल, अहिंसा, मैकाले की शिक्षा, भाषा आदि पर व्यक्त विचारों में उनकी आस्था-विश्वास बना रहता है और वे जीवन-पर्यन्त यथावसर इसका उल्लेख करते चलते हैं। ये सभी विषय उस गांधी-दर्शन के अंग हैं जिसे गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में रूप दिया और विकसित किया तथा जिसका भारत आकर उन्होंने अपने स्वाधीनता-संग्राम में भरपूर प्रयोग किया। गांधी के इस चिन्तन-दर्शन में असहयोग, रचनात्मक कार्यक्रम, ग्राम-विकास, चरखा और खादी एवं हरिजनोद्धार आदि के कार्यक्रम भी जुड़े और 'भारत छोड़ो' जैसा राष्ट्रव्यापी आन्दोलन भी आरम्भ किया, किन्तु 'हिन्द स्वराज' के गांधी और उनका जीवन-दर्शन सर्वत्र पूरे विश्वास और दृढ़ता के साथ मिलता है। 'हिन्द स्वराज' के गांधी भारत के कार्यकाल में बहुत बड़ी मात्रा में वैसे ही गांधी बने रहते हैं।

गांधी के 'हिन्द स्वराज' में व्यक्त विचारों के विरोध तथा आलोचना एवं उनकी अनुपयुक्तता तथा अव्यावहारिक होने की आवाज़ बराबर उठती रही। गांधी ने अपनी पुस्तक से देश-विदेश में एक हलचल उत्पन्न कर दी थी। 'हिन्द स्वराज' पहले गुजराती में, फिर अंग्रेजी में और उसके बाद हिन्दी में आने तथा उसके उपरान्त अन्य भाषाओं में प्रकाशित होने पर उसका एक व्यापक पाठक वर्ग बन गया था जो उसके विरोध एवं समर्थन में बैठता दिखाई देता था। गांधी को अनेक बार ऐसे पाठकों, पत्रकारों, नेताओं, विचारकों आदि का सामना करना पड़ा जो उसके विचारों को चुनौती देने और उनसे प्रश्न करने के लिए उनके सामने खड़े

> **गांधी ने 13 अक्टूबर, 1909 को इंग्लैंड में हैम्प स्टेड पीस एंड आर्बिट्रेशन सोसाइटी के कार्यक्रम में पूर्व और पश्चिम पर एक भाषण दिया। इसमें गांधी ने आधुनिक सभ्यता अर्थात पश्चिमी सभ्यता की कटु आलोचना की और आत्मा के स्थान पर दम देने, यन्त्रों से नैतिकता का पतन होने, तीर्थ स्थानों को आमोद-प्रमोद का केन्द्र पवित्रता को भंग करने की प्रवृत्ति को घातक माना।**

थे। देश-विदेश के क्रान्तिकारियों और हिंसक आतंकवादियों के विचारों से तो गांधी की सीधी टक्कर थी। गांधी अहिंसा, सत्याग्रह और आत्मबल के साथ थे और क्रान्तिकारी हिंसा और आतंक के। गांधी क्रान्तिकारियों की वीरता और आत्म-त्याग के प्रशंसक थे, किन्तु वे उन्हें अहिंसा के रूप में उत्तम विचार देना चाहते थे।

गांधी इस बात से परेशान थे कि 'हिन्द स्वराज' के कुछ विचारों को सन्दर्भ ये काटकर उनकी आलोचना की जा रही है और उन्हें समाज के सामने विकृत रूप में रखा जा रहा है। गांधी के इन आरोपों का उत्तर देते हुए 'यंग इंडिया' के 20 जनवरी, 1921 के अंक में लिखा पुस्तिका (हिन्द स्वराज से कुछ उद्धरण देकर वर्तमान आन्दोलन को बदनाम करने का प्रयत्न हो रहा है। इन लोगों ने कहा है कि मैं कोई गहरी चाल चल रहा हूं, भारत पर अपनी सक्त और खामखयालियां थोपने के लिए मौजूदा अशान्ति का लाभ उठा रहा हूं और भारत को नुकसान पहुंचाकर धार्मिक प्रयोगों और परीक्षण कर रहा हूं। इसके जवाब में सत्याग्रह एक बहुत ही ठोस और खरी वस्तु है, उसमें छिपाने और गुप्त जैसा कुछ भी नहीं। 'हिन्द स्वराज' में जीवन के जिन सिद्धान्तों का मैंने वर्णन किया है, उसके एक अंश पर आज केवल आचरण किया जा रहा है। अगर समूचे पर आचरण किया जाए तो उससे भी कोई खतरा नहीं है। ऐसी सूरत में लेखों से ऐसे अंश उद्धृत करके, जिनका देश के मौजूदा मसले से कोई भी ताल्लुक नहीं, लोगों को डराना उचित नहीं है। गांधी अनुभव कर रहे थे कि उनके विचारों को सन्दर्भ से काट करके उनके प्रति अन्याय किया जा रहा है, इसलिए वे पाठकों पर छोड़ देते हैं कि वे खुद ही निर्णय करें कि उनका मन्तव्य क्या है? वे मानते हैं कि 'हिन्द स्वराज के सभी विचारों पर चलने का वे उपदेश नहीं दे रहे हैं, परन्तु उनकी अपने विचारों के प्रति आस्था और विश्वास अटूट बना रहता है, चाहे वे अकेले ही उसे मानने वाले क्यों न रहें। 'हिन्द स्वराज' की रचना के लगभग 36 वर्ष के बाद 5 अक्टूबर, 1945 को उन्होंने पं. जवाहरलाल नेहरू को पत्र में लिखा, 'हिन्द स्वराज' में मैंने जो लिखा है उस राज्य-पद्धति पर मैं बिल्कुल कायम हूं। यह सिर्फ कहने की बात नहीं है, लेकिन जो चीज़ मैंने 1909 साल में लिखी है उसी चीज का सत्य मैंने अनुभव से आज तक पाया है। आखिर में मैं एक ही उसे मानने वाला रह जाऊं, उसका मुझे जरा-सा भी दु:ख न होगा, क्योंकि मैं जैसा सत्य पाता हूं, उसका मैं साक्षी बन जाता हूं।

गांधी के अपने विचारों में अकेले पड़ जाने के सत्य की अनुभूति के बावजूद उनमें निर्भयता तथा दृढ़ता बनी रहती है और वे अपने विचारों के मार्ग पर चलने का संकल्प लेते हैं। उनमें अपने विचारों के प्रति दृढ़ता अपने उच्च एवं पवित्र उद्देश्य के कारण उत्पन्न होती है। गांधी का यह दृढ़ विश्वास था कि यदि 'हिन्द स्वराज' के अहिंसा दर्शन का पूर्णतः क्रियान्वयन हो तो सिर्फ एक ही दिन में भारत में स्वराज कायम हो जाए। यह गांधी का अतिविश्वास था, परन्तु इसमें देश की स्वाधीनता का पवित्रतम एवं आत्मिक मनोभाव था। उसमें केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता की ही कामना नहीं थी, बल्कि उनकी स्वराज कल्पना में देश की संस्कृति, धर्म, नीति, दर्शन, ग्राम्यता, शिक्षा, भाषा, जीवन-दर्शन, समाज, भाषा, अस्तित्व-बोध आदि की संश्लिष्ट चेतना थी जो गांधी ने समय-समय पर अपने वक्तव्यों, लेखों, पत्रों आदि के द्वारा अभिव्यक्त की है। 'हिन्द स्वराज' को अधिकांश विचारकों ने उसे एक राजनीतिक पुस्तक के रूप में देखा है। अंग्रेज शासकों ने तो उसे इसी रूप में समझकर उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया था, परन्तु गांधी तो 'हिन्द स्वराज' को 'धर्मराज्य अथवा रामराज्य' का पर्याय मानते हैं। वे वर्ष 1926 में लिखते हैं, यह पुस्तक केवल राजनीतिक पुस्तक नहीं है। इसमें मैंने राजनीति के बहाने धर्म की कुछ झांकी दिखाने की चेष्टा की है। 'हिन्द स्वराज' का अर्थ क्या है? धर्मराज्य अथवा रामराज्य। मैंने पुरुषों की जितनी सभाओं में भाषण दिया है, उतनी ही स्त्रियों की सभाओं में भी दिए हैं। उनमें मैंने स्वराज शब्द का नहीं, अपितु रामराज्य शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार 'हिन्द स्वराज' की विचार-भूमि में पश्चिमी विचारकों की चाहे कितनी ही प्रेरणा-भूमिका रही हो, उसकी आधार-भूमि तो प्राचीन भारत की धर्मराज्य की धारणा ही रही है। गांधी ने अपने इस उद्देश्य को 'हिन्द स्वराज' के साथ उसके बाद के जीवन में अनेक बार उसे भिन्न-भिन्न रूप तथा उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों को उद्घाटित किया है। गांधी बार-बार 'हिन्द स्वराज' के उद्देश्यों की चर्चा करते हैं, किन्तु वे चाहे हमें भिन्न-भिन्न दिखाई दें, लेकिन वे उनके 'हिन्द स्वराज' अर्थात धर्मराज्य अर्थात रामराज्य के ही अंग हैं। गांधी द्वारा 'हिन्द स्वराज' के प्रस्तुत इन उद्देश्यों की एक झलक यहां प्रस्तुत है-

मेरा उद्देश्य सिर्फ देश की सेवा करने, सत्य को ढूंढ़ने और उसके अनुसार आचरण करने का है। इसलिए यदि मेरे विचार गलत सिद्ध हों तो मैं उनसे चिपटे रहने का आग्रह नहीं करूंगा और यदि वे सही निकले तो देशहित के अनुरोध से मैं सामान्यत:: यह इच्छा रखूंगा कि दूसरे लोग उनके अनुसार आचरण करें।

हमें अंग्रेजी राज्य से नहीं, बल्कि पाश्चात्य सभ्यता से बचना है। यह हमने 'हिन्द स्वराज' में देखा है।

मेरे देशवासी आधुनिक सभ्यता की बुराइयों के लिए अंग्रेज जाति को दोषी ठहराते हैं इसातिए वे समझते हैं कि अंग्रेज बुरे लोग हैं, न कि वह सभ्यता जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए वे मानते हैं कि अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए उन्हें आधुनिक सभ्यता और हिंसा के आधुनिक तरीके अपनाने चाहिए। 'हिन्द स्वराज' यह दिखाने के लिए लिखा गया है कि यह आत्मघाती नीति पर चलना होगा। उसका उद्देश्य यह दिखाना भी है कि अगर वे अपनी गौरवमयी सभ्यता का ही पुन: अनुसरण करेंगे तो अंग्रेज या तो उसको स्वीकार कर लेंगे और भारतीय बन जाएंगे या भारत से उनका अधिकार ही उठ जाएगा।

'हिन्द स्वराज' (गुजराती) के मई, 1914 में प्रकाशित दूसरे संस्करण की प्रस्तावना में गांधी ने लिखा है कि 'हिन्द स्वराज' किसी भी स्थिति और किसी भी समय शरीर बल का आश्रय लेने की सीख नहीं देता, बल्कि अपना साध्य आत्मबल से ही प्राप्त करना चाहता है। उसमें अंग्रेजों के प्रति तिरस्कार का भाव, हथियारों से लड़ना तथा उन्हें किसी तरह मारकर भारत से निकालने का कोई विचार नहीं है, क्योंकि ये 'हिन्द स्वराज' लिखने के बिल्कुल हेतु नहीं हैं। मैं तो यूरोप की आधुनिक सभ्यता का शत्रु हूं और 'हिन्द स्वराज' में मैंने इसी विचार को निरूपित किया है और यह बताया है कि भारत की दुर्दशा के लिए अंग्रेज नहीं, बल्कि हम लोग ही दोषी हैं जिन्होंने आधुनिक सभ्यता स्वीकार कर ली है। इस सभ्यता को छोड़कर हम सच्ची धर्मनीति से युक्त अपनी प्राचीन सभ्यता पुन: अपना लें तो भारत आज ही मुक्त हो सकता है। 'हिन्द स्वराज' को समझने की कुंजी इस बात में है कि हमें दुनियावी प्रवृत्ति से निवृत्त होकर धार्मिक जीवन ग्रहण करना चाहिए। ऐसे जीवन में काले या गोरे किसी भी मनुष्य के प्रति हिंसक व्यवहार के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता।

यह नफरत के बदले प्यार का पाठ सिखाती है। यह '(हिन्द स्वराज') हिंसा पर आत्म-बलिदान को तरजीह देती है। यह पशुबल पर आत्मबल से विजय पाने का रास्ता दिखाती है।

'गीता', 'रामायण', 'हिन्द स्वराज' से हमें जो बात सीखनी है, वह तो परमार्थ ही हैं। बालकों को भी हमें यही सिखाना है।

गांधी के कर्तव्यों के उपर्युक्त कुछ उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि 'हिन्द स्वराज' में हिन्दुस्तान के स्वराज्य का स्वप्न विद्यमान है। गांधी कैसा स्वराज्य चाहते हैं, वर्तमान में हिन्दुस्तान के सामने क्या-क्या समस्याएं हैं, पश्चिम से आने वाली आधुनिकता ने तथा अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने हिन्दुस्तान को कहां-कहां और कैसे-कैसे अपने धर्म-नीति, सत्य, अहिंसापूर्ण जीवन से पथभ्रष्ट किया है और उसे अपनी राजनीतिक, मानसिक, यान्त्रिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि दासताओं से मुक्त होकर किस रूप में स्वाधीन भारत की रचना करनी है, यह सब 'हिन्द स्वराज' के लक्ष्य में समाहित है। 'हिन्द स्वराज' बीसीं शताब्दी के आरम्भ में आधुनिक भारतीयता की खोज है, जैसा कि उस काल-खंड में अन्य कुछ भारतीय अपनी-अपनी दृष्टि से कर रहे थे। यह खोज भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों को अपने विचार-पथ में रखकर ही हो सकती थी। गांधी अन्य विचारकों से इस रूप में भिन्न थे कि वे हिन्दुस्तान में स्वराज्य चाहते थे और फिर उसके लिए रामराज्य की

"गांधी अपने विचारों की सत्ता के सम्बन्ध में यह स्पष्टीकरण देते हैं कि 'हिन्द स्वराज' में व्यक्त विचार उनके हैं और उनके नहीं भी हैं। गांधी इस पहेली को स्पष्ट करते हैं। ये विचार उनके हैं, क्योंकि वे उनकी आत्मा में बसे हैं, उनकी उन पर पूरी आस्था है और वे उन्हें आचरण में उतारते हैं, लेकिन वे यह भी कहते हैं कि वे मेरे नहीं हैं, क्योंकि मैंने उन्हें अनेक पुस्तकों के अध्ययन से निकाला है।"

संकल्पना करते थे। वास्तव में, 'हिन्द स्वराज' साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवादी चेतना से मुक्ति और भारतीय आत्मा की तलाश का महाग्रन्थ है। स्वतन्त्र भारत में भारतीय आत्मा की रूप-रचना के प्राय: सभी प्रश्न गांधी के सामने हैं, जिनमें उस समय का भारत घोर अन्तर्द्वन्द्व से गुजर रहा था। गांधी 'हिन्द स्वराज' से भारत के साथ विश्व को बदल देने का महान स्वप्न देखते हैं और वे पूरी तरह ईमानदारी से पश्चिमी सभ्यता की घोर विनाशकारिता का उद्घाटन करने के साथ भारत की धर्म-नीतिपूर्ण संस्कृति की श्रेष्ठता को स्थापित करते हैं और उसे ही विश्व मानवीय समाज के लिए उपयोगी और कल्याणकारी मानते हैं। 'आर्थन पाथ' (सितम्बर 1938, 'हिन्द स्वराज' पर प्रकाशित विशेषांक) में रोराल्ड हर्ड ने लिखा था कि 'हिन्द स्वराज' रूसो के सोशल कांट्रेक्ट और कार्ल मार्क्स के 'दास कैपिटल' से श्रेष्ठ है, क्योंकि यह युगान्त का नहीं, अपितु एक नई व्यवस्था के आरम्भ का सूचक है।

लगभग एक शताब्दी के बाद, विश्व की वर्तमान परिस्थितियों में 'हिन्द स्वराज' के विचार मानवीय सृष्टि के लिए कितने उपयोगी और आवश्यक हैं, उसे सरलता से समझा जा सकता है। 'हिन्द स्वराज' को यदि हम 'मानव स्वराज्य' के रूप में देखें, पढ़ें और क्रियान्वित करें तो वह विश्व मानव के सम्मुख उत्पन्न अस्तित्व और महा विनाश के मयावह संकट का समाधान कर सकता है। 'हिन्द स्वराज' में गांधी का यही पक्ष है जिसका अनुपालन करके हम पृथ्वी पर जीव-सृष्टि की रक्षा कर सकते हैं। इक्कीसवीं सदी के मनुष्य के लिए 'हिन्द स्वराज' विश्व को एक अनुपम देन है, वह एक ऐसा मन्त्र है जिसे हृदयंगम करके हम निरन्तर, निष्कम्प, निर्भय, आत्मिक उन्नति के साथ भविष्य के पथ पर चलते रह सकते हैं। इसे जितनी जल्दी समझा जाए, उतना ही विश्व के लिए कल्याणकारी होगा। ●

अपने बारे में
मोहनदास करमचंद गांधी

- मेरा अनुयायी सिर्फ एक है और वह खुद मैं हूं।
- भला 'गांधीवादी' भी कोई नाम में नाम है? उसके बजाय 'अहिंसावादी' क्यों नहीं? क्योंकि गांधी तो अच्छाई और बुराई, कमजोरी और मजबूती, हिंसा और अहिंसा का मिश्रण है, जबकि अहिंसा में कोई मिलावट नहीं है।
- मुझे इस महात्मा की पदवी को अपने हाल पर छोड़ देना चाहिए। यद्यपि मैं एक असहयोगी हूं, पर यदि ऐसा कोई विधेयक लाया जाए जिसके अनुसार मुझे महात्मा कहना और मेरे पांव छूना अपराध घोषित किया जा सके तो मैं खुशी-खुशी उसका समर्थन करूंगा। जहां मैं अपना कानून चलाने की स्थिति में हूं, जैसे कि अपने आश्रम में, वहां ऐसा करने पर एकदम पाबंदी है।
- मैं अविवेकी लोगों द्वारा की जानेवाली आराधना-स्तुति से सचमुच परेशान हूं। इसके स्थान पर यदि वे मेरे ऊपर थूकते, तो मुझे अपनी असलियत का सच्चा अंदाजा रहता।
- मैं 'संत के वेश में राजनेता' नहीं हूं। लेकिन चूंकि सत्य सर्वोच्च बुद्धिमत्ता है, इसलिए मेरे कार्य किसी शीर्षस्थ राजनेता के जैसे कार्य प्रतीत होते हैं। मैं समझता हूं कि सत्य और अहिंसा की नीति के अलावा मेरी कोई और नीति नहीं है।
- बहुत से लोग इस भ्रम में पड़े हुए हैं कि मेरे पास सारे रोगों का उपचार है। काश! ऐसा होता। हालांकि कह नहीं सकता कि ऐसा हो तो वह विशुद्ध वरदान ही साबित होगा। अगर मैं ऐसी बातों का बिना विचारे सर्वत्र प्रयोग करने लगता तो लोगों को असहाय बना देता।
- तुम सब्जियों के रंग में सुंदरता क्यों नहीं देख पाते? और निरभ्र आकाश भी तो सुंदर है। लेकिन नहीं, तुम तो इंद्रधनुष के रंगों से आकर्षित होते हो, जो केवल एक दृष्टिभ्रम है। हमें यह मानने की शिक्षा दी गई है कि जो सुंदर है, उसका उपयोगी होना आवश्यक नहीं है और जो उपयोगी है, वह सुंदर नहीं हो सकता। मैं यह दिखाना चाहता हूं कि जो उपयोगी है, वह सुंदर भी हो सकता है।
- यदि मैं अपने अंदर ईश्वर की उपस्थिति अनुभव न करता तो प्रतिदिन इतनी कंगाली और निराशा देखते-देखते प्रलापी पागल हो गया होता या हुगली में छलांग लगा लेता।
- जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब कुछ चीजों के लिए हमें बाह्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। हमारे अंदर से एक हल्की-सी आवाज हमें बताती है, 'तुम सही रास्ते पर हो, दाएं-बाएं मुड़ने की जरूरत नहीं है, सीधे और संकरे रास्ते पर आगे बढ़ते जाओ।'
- मैं कितना ही तुच्छ होऊं, पर जब मेरे माध्यम से सत्य बोलता है तब मैं अजेय हो जाता हूं।
- मैं मानता हूं कि मुझमें अनेक सुसंगतियां हैं। लेकिन चूंकि लोग मुझे 'महात्मा कहते हैं, इसलिए मैं इमर्सन की उक्ति को साधिकार दुहराते हुए कह सकता हूं कि मूर्खतापूर्ण सुसंगति छोटे दिमागों का हौवा है। मेरा खयाल है कि मेरी असंगतियों में भी एक पद्धति है।'
- मुझे जीवनभर गलत समझा जाता रहा। हर एक जनसेवक की यही नियति है। उसकी खाल बड़ी मजबूत होनी चाहिए। अगर अपने बारे में कही गई हर गलत बात की सफाई देनी पड़े और उन्हें दूर करना पड़े, तो जीवन भार हो जाए।
- अंतत: मेरा काम ही शेष रह जाएगा, जो मैंने कहा अथवा लिखा है, वह नहीं। ●

मेरे पाठकों से

मेरे लेखों का मेहनत से अध्ययन करने वालों और उनमें दिलचस्पी लेने वालों से मैं कहना चाहता हूं कि मुझे हमेशा एक ही रूप में दिखाई देने की कोई परवाह नहीं है। सत्य की अपनी खोज में मैंने बहुत से विचारों को छोड़ा है और अनेक नई बातें मैं सीखा भी हूं। उम्र में भले मैं बूढ़ा हो गया हूं, लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरा आन्तरिक विकास होना बन्द हो गया है या देह छूटने के बाद मेरा विकास बन्द हो जाएगा। मुझे एक ही बात की चिन्ता है, और वह है प्रतिक्षण सत्य-नारायण की वाणी का अनुसरण करने की मेरी तत्परता। इसलिए जब किसी पाठक को मेरे दो लेखों में विरोध जैसा लगे। तब उसे मेरी समझदारी में विश्वास हो तो वह एक ही विषय पर लिखे दो लेखों में से मेरे बाद के लेख को प्रमाणभूत माने।

मोहनदास करमचंद गांधी

मानवतायुक्त विकास की वैज्ञानिक दृष्टि

- अभिषेक कुमार मिश्र

राजनीतिक, सामाजिक आदि कई विषयों पर गांधीजी के विचारों की चर्चा तो होती रहती है पर विज्ञान के प्रति उनके विचारों को समग्र रूप से देखने के प्रयास कम ही मिलते हैं। उनकी छवि विज्ञान और तकनीक के विरोधी सदृश्य बनाई जाती है। बाजार आधारित अर्थव्यवस्था में यह स्वाभाविक भी है क्योंकि गांधी जी के विचार लोगों को आत्मनियंत्रण की ओर प्रवृत्त करते हैं। ऐसा प्रतीत करवाया जाता है कि वो तकनीक के विकास के विरोधी थे। क्या यही वास्तविकता भी है! यदि उनके विचारों को गहराई से जानें, समझें और उनके सिद्धांतों की आज के वैज्ञानिक विकास की दिशा से तुलना करें तो इस क्षेत्र में गांधी विचार की अहमियत का कुछ अनुमान लगा सकेंगे।

22 अक्टूबर, 1925 को 'यंग इंडिया' में महात्मा गांधी ने 7 सामाजिक पापों की एक सूची प्रकाशित की थी। नि:संदेह उनकी यही इच्छा रही होगी कि पढ़ने वाले इन बातों पर दिल से विचारें और इनसे बचने का प्रयास करें। उन 7 सामाजिक पापों की सूची में थे- 1. सिद्धांत के बिना राजनीति, 2. कर्म के बिना धन, 3. आत्मा के बिना सुख, 4. चरित्र के बिना धन, 5. नैतिकता के बिना व्यापार, 6. मानवीयता के बिना विज्ञान, 7. त्याग के बिना पूजा। गांधीजी के अनुसार अर्थ, राजनीति, धर्म, विज्ञान आदि पृथक इकाइयां हैं, पर सबका उद्देश्य एक ही है- सर्वोदय। ये सब यदि अहिंसा और सत्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं, तभी अपनाने योग्य हैं; वरन यदि लक्ष्यहीन है, निश्चित आदर्शों पर नहीं टिके हुए तो वह पवित्र नहीं। गांधीजी के इन विचारों को देखें तो इनमें विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े साध्यों के लिए साधन की शुचिता का विचार भी झलकता है जो विज्ञान के लिए भी सत्य है। हम सिर्फ अनुमान ही लगा सकते हैं कि आजादी के बाद जब वो अन्य विषयों की ओर भी अपनी भूमिका तय कर रहे थे। ऐसे में भारत का वैज्ञानिक विकास भी उनके सिद्धांतों से निश्चित रूप से प्रभावित हुआ होता। क्या गांधीजी के विचारों पर आधारित मानव के विकास और सहयोग के लिए विकसित विज्ञान में आणविक बम की अंधी होड़ एवं ऐसे अन्य विध्वंसक आविष्कारों की जगह होती! क्या वैज्ञानिक उन वैष्णव जनों से अलग हो सकते हैं जो पीड़ पराई और आमजन की मूल आवश्यकता को जान

सकें! इस प्रश्न का उत्तर स्वयं ही समझा जा सकता है। क्या वास्तविक विज्ञान का मूल उद्देश्य सर्वजन के हित से अलग होता है!

महात्मा गांधी कहते थे कि 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है', अपने जीवन को वो सत्य के साथ प्रयोग मानते थे। गौर से देखें तो पाएंगे कि यह उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही था जो प्रयोगों के आधार पर अपने निष्कर्षों में सुधार करता अपनी खोज में सतत आगे बढ़ता रहता है। वो अपने किसी एक निष्कर्ष से बंधे नहीं रहते लेकिन अपने प्रयोग की शुद्धता बनाए रखने के लिए साध्य और साधन की शुचिता पर जरूर ध्यान देते हैं।

गांधी जी के अंदर के इसी वैज्ञानिक चिंतक को पहचान कर ही शायद एक अन्य महान वैज्ञानिक आइंस्टीन के अंदर से यह भावना निकली होगी कि आने वाली पीढ़ियां शायद मुश्किल से ही यह विश्वास कर सकेंगी कि गांधी जैसा हाड़-मांस का पुतला कभी इस धरती पर था।'' - गांधी जी को इंसानों में एक चमत्कार मानने वाले महान् वैज्ञानिक आइंस्टीन यदि इन शब्दों में उन्हें याद करते हैं तो हमें समझना होगा कि उनके इस आकलन में अतिशयोक्ति या मात्र औपचारिकता नहीं बल्कि एक संवेदनशील वैज्ञानिक व्यक्तित्व का एक अन्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण के व्यक्तित्व से आत्मीय जुड़ाव भी है जिसे आज भी कई लोग समझ न सके हैं।

भारत की विश्व को योगदान की बात उठती है तो उसमें एक नाम गांधीविचार का भी आता है। गांधी जी की कार्यशैली, उनके विचारों ने पूरी मानवता को प्रभावित किया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तो उनकी भूमिका से प्रभावित है ही, उससे पहले भी दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने अपने विचारों को अमल में लाने की पहल शुरू कर दी थी। उससे भी पूर्व ब्रिटेन प्रवास के दौरान गांधीजी की पारंपरिक सोच और वहां की आधुनिक जीवन पद्धति के मेल ने उनके विचारों को प्रभावित करना शुरू कर दिया था जिसे उन्होंने वहां कुछ लेखों और बाद में अपनी आत्मकथा में भी स्पष्ट किया है।

अंधविश्वास और धर्म एक चीज नहीं हैं। इसी प्रकार विज्ञान का विरोध भी धर्म से नहीं बल्कि अंधविश्वास से है। धर्म यदि मनुष्य को जीने की सही पद्धति सिखाता है, सभी के प्रति समान व्यवहार, समान विकास की सीख देता है तो विज्ञान इसकी स्थापना में एक सहायक की भी भूमिका निभा सकता है। गांधीजी व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक आदि हर क्षेत्र में धर्म की स्थापना चाहते थे। किन्तु उनका धर्म संकीर्णता लिए नहीं बल्कि समाज के हर स्तर के व्यक्ति के हित को सुनिश्चित करने वाला होता था और अपनी इस धारणा को उन्होंने अपने प्रयास से प्रत्येक क्षेत्र में अमल में लाने के प्रयास किए। गांधीजी के विचारों का प्रथम परिचय करवाती 'हिन्द स्वराज' में उनके द्वारा प्रस्तुत विचारों की एक तरफ़ा व्याख्या से उन्हें वैज्ञानिक विकास का विरोधी करार दिया जाता है। परंतु यह पूरी तरह सच नहीं है। वैसे भी उनके विचार बंधे तालाब की तरह नहीं वरन बहती जलधारा के सदृश्य थे जो विभिन्न मोड़ लेती आगे बढ़ती ही जाती है।

विकास की उनकी अवधारणा थोड़ी पृथक थी। वो विज्ञान और विकास के कल्याणकारी मानवीय पहलू के समर्थक थे। 'हिन्द स्वराज' में उन्होंने विज्ञान के विध्वंसकारी और मुनाफाखोर रूप का विरोध किया है।

गांधी जी के विज्ञान संबंधी विचार मूलत: श्रम प्रधान और पर्यावरण संरक्षण से जुड़े हैं। उन्होंने विज्ञान का सबसे विध्वंसकारी रूप हीरोशिमा और नागासाकी की तबाही के रूप में देखा था, इसलिए भारतीय परंपरा को ध्यान में रखते हुए उन्होंने विज्ञान के प्रति अपनी एक विशिष्ट विचारधारा विकसित की थी। उनका मानना था कि विज्ञान का विकास एक संयुक्त प्रयास के द्वारा होना चाहिए, जिसमें सभी की सहभागिता हो। वो विज्ञान में संवेदना और नैतिकता के सम्मिलित होने के पक्षधर थे। वह अक्सर वैज्ञानिक एल्फ्रेड वॉलेस के उन शब्दों को दोहराया करते थे, जिसमें उन्होंने कहा था कि विज्ञान की बढ़ती खोजों के साथ इंसान की नैतिक इन्द्रियों का विकास नहीं हुआ है।

गांधीजी आधुनिक वैज्ञानिकों के प्रति भी काफी सम्मान रखते थे। आइंस्टीन से उनके पत्राचार होते थे और उन्होंने उनसे अपने आश्रम में मुलाक़ात होने की कामना भी व्यक्त की थी। आइंस्टीन भी अपने कक्ष में उनकी तस्वीर रखते थे जो उनके वैज्ञानिक विचारों पर नैतिकता के प्रभाव का संकेत था। उन्होंने कहा था कि 'समय आ गया है कि हम सफलता की तस्वीर की जगह सेवा की तस्वीर लगा दें।'

विज्ञान के प्रति समर्पण को लेकर मैडम क्युरी के योगदान और बलिदान से भी वो अवगत तथा प्रभावित थे। 1942 में उनकी सुपुत्री से मुलाक़ात होने पर उन्होंने मैडम क्युरी को एक तपस्विनी बताया और डॉ. सुशीला नायर जी से उनकी पुत्री द्वारा उन पर लिखी किताब के अनुवाद पर भी चर्चा की। डॉ. नायर ने अपने संस्मरण 'कारावास की कहानी' में गांधीजी के उद्गार को निम्न शब्दों में लिखा है - वह तो सच्ची तपस्विनी थी। मेरे मन में होता है कि पेरिस जाकर उसका घर देख आऊं। हमारे किसी वैज्ञानिक ने इतना दुख नहीं भोगा।

गांधी जी की औद्योगीकरण आदि के विरुद्ध होने की धारणा बनाई गई, किन्तु उनका कहना था कि उनकी प्रगति में रोड़ा अटकाने की कोई मंशा नहीं है। वह मानते थे कि मशीन ऐसी कोई गलती नहीं कर सकती, जिसे सुधारा न जा सके। जरूरत केवल अपनी मानसिक दशा को दुरुस्त रखने की है। वह मशीन के इंसानों पर हावी होने के समर्थन में नहीं थे।

विभिन्न अवसरों पर उन्होंने समय-समय पर अपने विचार व्यक्त किए थे -

विज्ञान को लेकर अपने प्रति नकारात्मक धारणा से वो तब भी भली-भांति अवगत थे। शायद तभी दक्षिण भारत के त्रिवेंद्रम (अब तिरुवनंतपुरम) में कॉलेज के छात्रों के लिए 1925 के एक भाषण में इसके संदर्भ में उन्होंने अपने संदर्भ में इस धारणा को एक सामान्य अंधविश्वास बताया। इसी संबोधन में उन्होंने यह भी कहा कि हम विज्ञान के बिना नहीं रह सकते हैं, लेकिन इसकी जवाबदेही तय होने की आवश्यकता भी बताई। उन्होंने यह भी कहा कि मेरी विनम्र राय में वैज्ञानिक खोज की भी सीमाएं हैं, और मेरी ओर से वैज्ञानिक खोजों पर जो सीमाएं हैं, ये वही हैं जो मानवता के द्वारा हमारे ऊपर है।

गांधी जी विनाशकारी यंत्रों के विरोध में थे लेकिन जनहित वाले और अधिकतम लोगों को सहायता पहुंचा सकने वाले यंत्रों के नहीं जैसे

कि सिलाई मशीन। मिलों के विरोध पर अपनी आलोचनाओं के संदर्भ में उन्होंने कहा –

सारी मशीनों और मिलों को नष्ट करने के तो मैं और भी कम प्रयास कर रहा हूं। इसके लिए जितनी सादगी और त्याग की अपेक्षा है, उसके लिए लोग अभी तैयार नहीं हैं।

विज्ञान को आत्मिक विकास से जोड़ने के भाव रखते उन्होंने कहा – मैं समृद्धि चाहता हूं, मैं आत्मनिर्णय चाहता हूं, मैं आजादी चाहता हूं लेकिन ये सभी चीजें मैं आत्मा के लिए चाहता हूं। मुझे संदेह है कि चकमक युग से इस्पात के युग तक पहुंचना कोई उन्नति है। मैं इसके प्रति उदासीन हूं। आत्मा का विकास ही एक ऐसी चीज है जिसके लिए हमारी बुद्धि और समस्त क्षमताओं का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

सभ्यताएं आई हैं और गई हैं, और हमारी समस्त तथाकथित प्रगति के बावजूद मुझे बार-बार यह पूछने की इच्छा होती है कि – इस सबका प्रयोजन क्या है?

आज पर्यावरण एक वैश्विक समस्या है। नि:संदेह गांधीजी के समय में यह उतने गंभीर विमर्श का विषय नहीं बना था, किन्तु उनका यह कथन आज भी इस समस्या के मूल को इंगित करता है जिसमें उन्होंने कहा था कि – पृथ्वी सभी मनुष्यों की जरूरत पूरी करने के लिए पर्याप्त संसाधन प्रदान करती है, लेकिन लालच पूरा करने के लिए नहीं।

एक भविष्यवक्ता की भांति गांधीजी ने आगाह किया था कि – ऐसा समय आएगा जब अपनी जरूरतों को कई गुना बढ़ाने की अंधी दौड़ में लगे लोग अपने किए को देखेंगे और कहेंगे, ये हमने क्या किया?

इन विचारों और सवालों पर मंथन करने वाले महात्मा गांधी की विचारधारा की एक झलक हमें मिल सकती है। किसी खास काल में किसी विषय पर उनकी राय की आलोचना हो सकती है, किन्तु उनके विचारों को समग्र रूप से देखने और समझने की आवश्यकता है।

गांधीजी प्रथम दृष्टि में चाहे जितने धार्मिक दिखें किन्तु गौर से देखें तो उनके विचारों में हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही मिलेगा। विज्ञान ईश्वर को नहीं मानता, वह सत्य की खोज का प्रयास करता है। गांधीजी भी सत्य को ही ईश्वर मानते थे। इस सत्य को पाने के लिए वो विभिन्न प्रयोग करते थे। उनका कहना था कि एक ही विषय पर उनके दो मतों में विरोधाभास दिखे तो बाद वाले मत को ही उनकी राय मानी जाए, क्योंकि वह वक्त के साथ प्रयोगों से और परिपक्व हुआ होगा। ध्यान से देखें तो यह किसी खोज के विभिन्न पहलुओं को तलाशने का वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही है।

गांधीजी का आधुनिक तकनीक/यंत्रों से बैर नहीं था वो बस उसके मानव पर नैतिक, आर्थिक आदि प्रभाव को लेकर चिंतित थे। उन्होंने स्वयं रेल, जलयान, रेडियो, टेलीफोन आदि विभिन्न आविष्कारों का प्रयोग किया किन्तु सबके ऊपर उनका आग्रह इनके नैतिक पहलुओं पर रहता था।

गांधीजी को विज्ञान विरोधी निरूपित किया जाना इन नैतिक जिम्मेदारियों के दबाव से बचने का एक प्रयास मात्र है, जिसकी आवश्यकता आने वाले समय में और बढ़नी ही है। विभिन्न अवसरों पर जब सरकारों या प्रयोगशाला प्रशासन के दिशा-निर्देशों से अलग हट किसी वैज्ञानिक का किसी परियोजना के मानवता विरोधी स्वरूप का

> "गांधी जी प्रथम दृष्टि में चाहे जितने धार्मिक दिखें किन्तु गौर से देखें तो उनके विचारों में हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही मिलेगा। विज्ञान ईश्वर को नहीं मानता, वह सत्य की खोज का प्रयास करता है। गांधीजी भी सत्य को ही ईश्वर मानते थे। इस सत्य को पाने के लिए वो विभिन्न प्रयोग करते थे।"

खुलासा उसी नैतिकता युक्त वैज्ञानिक सोच का ही प्रभाव है जिससे स्वार्थ से प्रेरित मानसिकताएं निकालना चाहती हैं।

चरखा जो गांधीजी की छवि के साथ सुदर्शन चक्र के तौर पर सा जुड़ा हुआ है के लिए उनका आकर्षण और आग्रह काफी पुराना था। देश में चरखे की परंपरा काफी पुरानी है लेकिन समय के साथ यह भी खो रही थी। गांधी जी के विचारों में चरखे ने कब से जगह बना ली थी इसका मात्र अनुमान ही इस तथ्य से लगा सकते हैं कि 1908 में इंग्लैंड में भी वो चरखे की तलाश करने लगे थे। 1916 में भारत लौट अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना के दो वर्ष पश्चात 1918 में गंगा बहन जिनके नाम पर आज नई दिल्ली के कनाट प्लेस में 'चरखा संग्रहालय' है ने काफी ढूंढकर बीजापुर गांव से उन्हें चरखा उपलब्ध करवाया। गांधीजी ने स्वयं भी इसके स्वरूप में कई आवश्यक बदलाव किए ताकि यह पारंपरिक रूप से हटकर हल्का और कहीं लेकर जाने में सुविधाजनक हो।

आज वैज्ञानिक परिकल्पनाओं को बढ़ावा देने हेतु कई आयोजन होते हैं। गांधीजी की यह वैज्ञानिक चेतना ही थी कि चरखे में वैज्ञानिक सुधार के लिए उन्होंने पहले 1923 और फिर 1929 में प्रतियोगिताएं आयोजित करवाईं जिनमें क्रमश: 5000 और 1 लाख रुपये का पुरस्कार भी रखा गया। यरवडा जेल में रहते उन्होंने स्वयं 'किसान चरखा' को 'पेटी चरखा' का रूप दिया।

गांधीजी की दिलचस्पी खगोल विज्ञान में भी थी। तारों को देखना और उन्हें जानना उन्हें पसंद था। 1932 में यरवड़ा जेल में रहते हुये उनके साथ डी. बी. केलकर (काका केलकर) भी थे जो स्वयं खगोल विज्ञान में गहरी रुचि रखते थे, के सान्निध्य में उन्हें इस पर अपनी जानकारी कुछ और बढ़ाने का भी अवसर मिला। अपनी अन्य जिम्मेदारियों के कारण उन्हें इस दिशा में अपनी रुचि को आगे बढ़ाने का चाहे यथेष्ट समय न मिल पाया, किन्तु उन्होंने साबरमती आश्रमवासियों आदि को लिखे विभिन्न पत्रों में उन्हें आकाशीय अवलोकन के लिए इसे 'शांति और स्वास्थ्य देने वाली गतिविधि' के रूप में प्रेरित किया। खगोल विज्ञान में उनकी रुचि को ध्यान में रखते हुये 2019 में उनकी 150वीं जयंती पर देश के कई भागों में 'बापू खगोल मेला' की शृंखला भी आयोजित की गई जिसके माध्यम से आम लोगों और बच्चों में खगोल विज्ञान के प्रति जागरूकता लाने के प्रयास किए गए।

उन्होंने स्पष्ट किया था कि उनका विरोध यंत्रों के प्रति नहीं बल्कि यंत्रों के पीछे जो पागलपन चल रहा है उसके प्रति है। उनका उद्देश्य तमाम यंत्रों का नाश करना नहीं बल्कि उनकी हद बांधने का था। अपनी बात को साफ करते हुए उन्होंने कहा था कि ऐसे यंत्र नहीं होने चाहिए, जो काम न रहने के कारण आदमी के अंगों को जड़ और बेकार बना दें। निष्कर्ष यह कि गांधी जी मनुष्य को यंत्रशक्ति के समक्ष पराजित होते नहीं देखना चाहते थे। वो मनुष्य की मुक्ति के पक्षधर थे। उन्हें मनुष्यता की शर्त पर न मशीनें चाहिए थीं और न कारखाने।

बुनियादी शिक्षा की अपनी योजना में उन्होंने मातृभाषा और इसमें ही विज्ञान की शिक्षा शामिल करने का सुझाव इसीलिए दिया था। वो भी मानते थे कि मातृभाषा में विज्ञान की शिक्षा छात्रों में स्वतंत्र वैज्ञानिक सोच विकसित करने में सहायक होगी। उन्होंने इस दिशा में जापान का उदाहरण देते हुये इसे स्पष्ट किया था, जहां स्थानीय भाषा में विज्ञान शिक्षा दी जाती है। अपने राज्य गुजरात में उन्होंने गुजरात विद्यापीठ के विद्यार्थियों से अपील की थी कि वह विज्ञान का पाठ गुजराती भाषा में ही करें और जहां जरूरी हो, अंग्रेजी की मदद लें। 1937 में उनके द्वारा दिया गया 'नई तालीम' का विचार इन्हीं संदर्भों में था, जिसके अंतर्गत उन्होंने गांव-देहात की युवा प्रतिभाओं के आगे आने की बात की थी।

निश्चित रूप से उनका उद्देश्य बुनियादी स्तर, ग्राम स्तर से ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ विकास की प्रक्रिया सुनिश्चित करना रहा होगा। हम सिर्फ अनुमान ही लगा सकते हैं कि तभी से भारत सहित पूरे विश्व में प्रमुख वैज्ञानिकों का अपने वैज्ञानिक ज्ञान का आधार से ही प्रयोग सुनिश्चित किया जाना आज विश्व को किस रूप में हमारे सामने रख रहा होता।

22-23 अक्टूबर, 1937 को वर्धा में आयोजित 'अखिल भारतीय शैक्षिक सम्मेलन' की अध्यक्षता गांधीजी ने की थी। इसके अन्तिम दिन निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किए गए-

(1) बच्चों को 7 वर्ष तक राष्ट्रव्यापी, नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दी जाए।

(2) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

(3) इस दौरान दी जाने वाली शिक्षा हस्तशिल्प या उत्पादक कार्य पर केंद्रित हो। अन्य सभी योग्यताओं और गुणों का विकास, जहां तक सम्भव हो, बच्चों के पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए बालक द्वारा चुनी हुई हस्तकला से सम्बन्धित हो।

1935 ई. के गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट की घोषणा के फलस्वरूप ब्रिटिश भारत के सात प्रांतों में जब कांग्रेसी सरकारों ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए कार्यक्रम बनाया तो उसकी आधारशिलाओं में बुनियादी शिक्षा भी एक थी। यही नीति आजादी के बाद की शिक्षानीतियों

में किसी-न-किसी रूप में शामिल रही। गांधी जी की नजर में बुनियादी शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक साधन थी। आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता को ही वो मनुष्य के पूर्ण विकास का आधार मानते थे, जिसे सुनिश्चित करने में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

स्वास्थ्य को लेकर भी गांधीजी ने व्यक्तिगत रूप से और अपने आश्रमों आदि के माध्यम से कई प्रयोग किए। कुष्ठ रोगियों की सहायता, महामारियों आदि में उनके राहत अभियान, दक्षिण अफ्रीका में रहते बोअर युद्ध में भारतीय एम्बुलेंस कोर के माध्यम से राहत कार्य आदि उनके इस दिशा में गंभीर पहलों को दर्शाते हैं। आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा में शोध द्वारा वो इसके विकास को सुनिश्चित करना चाहते थे। वो चाहते थे कि बीमारी के इलाज की जगह इसे उभरने से ही रोका जाए। शरीर को मंदिर मानना और स्वच्छता पर ज़ोर देना उनके इसी विचार के अंग थे। उस दौर में जबकि कुष्ठ रोग को लेकर तमाम अंधविश्वास और धारणाएं प्रचलित थीं, गांधीजी का उनकी सेवा का साहसिक निर्णय उनकी वैज्ञानिक दृष्टि का ही परिचायक है।

1934 में राजनीति से सन्यास लेकर उन्होंने रचनात्मक पहल के उद्देश्य से अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना की तो इसकी सलाहकार समिति में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ उन्होंने प्रसिद्ध वैज्ञानिकों श्री सी.वी. रमन, प्रो. जगदीश चंद्र बोस तथा श्री पी.सी. रे जैसे मूर्धन्य वैज्ञानिकों को भी रखा। वो सर जगदीश चंद्र बोस की प्रयोगशाला में भी गए और इसे एक आध्यात्मिक अनुभव बताया। उनके साथ उनका आत्मीय पत्र व्यवहार भी रहा।

समझा जा सकता है कि यदि उन्हें और समय मिला होता तो विज्ञान को भी वो पूंजीपतियों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित में स्वार्थसिद्धि के साधन से अलग सत्य और अहिंसा पर आधारित, नैतिक रूप से सुदृढ़ आधार देते हुये मानव की समग्र उन्नति से जोड़ते। नरसंहार और बेरोजगारी की संभावना बढ़ाने वाले आविष्कारों की जगह मानव को एक-दूसरे से जोड़ने और शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सभ्यता की समेकित विकास को सुनिश्चित करने वाले आविष्कारों को प्रोत्साहित किया जाता।

समय और परिस्थिति के अनुसार हम उनकी किसी राय से असहमत हो सकते हैं। परंतु असहमति और संवाद से बचने का उन्होंने कभी यत्न भी नहीं किया। घोर विरोधी विचार वाले व्यक्ति से भी वो संवादरत रहते थे। यह भी एक वैज्ञानिक प्रवृत्ति ही कही जाएगी। लेकिन यह अवश्य है कि उनके किसी भी विचार को मात्र अपने संदर्भ के लिए न लेते समग्र रूप से देखें, और वो खुद भी इसमें आवश्यक सुधार के लिए प्रस्तुत तो रहे ही हैं।

गांधीजी ने जिस क्षेत्र में भी अपनी अहम भूमिका निभाई उस पर उनकी छाप पड़ी। चाहे वो राजनेता गांधी हों, समाजसुधारक गांधी या पत्रकार के रूप में गांधी। इन क्षेत्रों में उनके प्रभाव ने एक मानदंड स्थापित किए जो आज भी आदर्श माने जाते हैं। गांधी जी विज्ञान के क्षेत्र में भी अपनी ऐसी ही छाप छोड़ सकते थे। वैज्ञानिक विकास की दिशा आज भी

समस्त विश्व के समक्ष एक विचारणीय विषय है। मानव के वास्तविक विकास के संदर्भ में इसकी भूमिका सुनिश्चित करने के लिए हम गांधी जी की ही एक सलाह को याद रख सकते हैं।

गांधीजी के दिए इस जंतर को याद रखें तो विज्ञान सहित किसी भी क्षेत्र में कभी भी, कोई भी निर्णय लेने से पहले उसके औचित्य को स्पष्ट करने में सहायता मिलेगी जिसमें उन्होंने सुझाया था कि –

मैं तुम्हें एक जंतर देता हूं। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम तुम पर हावी होने लगे तो यह कसौटी अपनाओ-जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा, क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त.. तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम समाप्त होता जा रहा है।

गांधीजी के विचारों के साथ देश के भविष्य को नई दिशा दी सकती है। वर्तमान परिदृश्य एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बहु भाषा जिसमें अंग्रेजी की भी उपयुक्त जगह हो का उचित प्रावधान तथा क्रियान्वयन हो, ताकि अंग्रेजी ज्ञान के आधार पर बच्चों का नया वर्गीकरण न निर्मित हो तथा सभी को समान अवसर प्राप्त हो पाए। इसी से गांधी जी तथा अन्य महापुरुषों के सपनों का भारत आकार ले पाएगा।

गांधीजी के विचार मानवता के लिए एक धरोहर हैं, जिनकी प्रासंगिकता हर क्षेत्र में सदा बनी रहेगी और राह दिखाती रहेगी। ●

सत्याग्रही वैज्ञानिक

- चंद्रकुमार

पिछली एक-डेढ़ शताब्दी की आधुनिक विज्ञान-उन्मुख सभ्यता उत्पादक-उपभोक्तापरक हो गयी है। दरअसल आधुनिक मानव सभ्यता का यह मूल स्वभाव वैज्ञानिक, खासकर प्रौद्योगिकीय तकनीकों व संसाधनों के एक-रेखीय विकास को केन्द्र में रख कर इतना कुरूप हो गया है कि अब इसके मानवतावादी होने के जरा-से भी प्रमाण नहीं दिखते। एक तरह से यह नीतिहीनता और कमजोर वर्ग के शोषण के साथ ही प्रकृति के निरकुंश दोहन का सतत् साधन बनता ही दिख रहा है। मानव इतिहास में जितनी 'वैज्ञानिक तरक्की' पिछली एक-डेढ़ शताब्दी में हुई है वह चकित कर देने वाली है, लेकिन साथ ही यही समय कमजोर, वंचित और गरीब तबके की घोर उपेक्षा, शोषण और उन पर हो रहे अन्याय का समय भी माना जा सकता है। वैज्ञानिक विकास, खासकर औद्योगिक-प्रौद्योगिकी विकास के इस अमानवीय स्वरूप को हमें भले ही स्वीकार करना पड़ रहा हो, लेकिन गांधी कभी भी इस विरूपित विकास के पक्षधर नहीं रहे और इसी वजह से कुछ विद्वानों ने गांधी को 'एंटी-साइंस' करार दिया जबकि यह पूर्णतया सही नहीं है।

गांधी जिन सिद्धान्तों को जीवनमूल्य बना कर गांधी बने, उन सिद्धान्तों के मूल में समतामूलक व समावेशी समाज और ग्रामीण विकास हमेशा से अन्तर्निहित होता था। अगर इस नज़रिए से देखें तो यह प्रतीत होगा कि गांधी वस्तुत: औद्योगिक विकास की बजाय मानवीय विकास की तकनीकों पर ज़्यादा ध्यान केन्द्रित करते रहे थे। लेकिन वे विज्ञान विरोधी नहीं, बल्कि जिस तरह से वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास के पश्चिमी अन्धानुकरण को हमारे सम्मुख विकास की इकलौती अवधारणा के रूप में रखा गया, उसके खिलाफ थे। ज़रूरत वैज्ञानिक व औद्योगिक-प्रौद्योगिकी के ज़रिए विकास के उनके नज़रिए को समझने की है ताकि जो भ्रांतियां हैं, उन्हें दूर किया जा सके। दुर्भाग्यवश इस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है और एक प्रचलित छवि, जो कि सत्य से परे है, वह हमारे सामने रखी गई है।

ज्ञान और विद्या का वह स्वरूप जो अध्ययन और सतत् प्रयोग से अर्जित होता है, तथा जो प्रकृति की मूल स्थापनाओं से साम्य स्थापित करने में सहयोगी हो, वह विशिष्ट ज्ञान ही विज्ञान है। तर्क की कसौटी पर सदा खरे उतरने के अपने नैसर्गिक गुणधर्म के कारण विज्ञान सर्वमान्य ज्ञान-स्वरूप है। इस आलोक में देखें तो यह बिल्कुल सन्देह से परे होगा कि गांधी, जो खुद हमेशा तार्किक बातों के पक्षधर रहे, वे 'एंटी साइंस' थे! जीवन-पर्यन्त जो प्रयोगशील रहे, तर्क आधारित नैतिक कसौटियों पर मानव समाज को जांचते-परखते रहने की सीख देते रहे, वे कभी भी विज्ञान (या वैज्ञानिक विकास) के विरोधी नहीं हो सकते। उन की चिन्ता दरअसल कुछ और है जिस पर वे बार-बार ध्यानाकर्षण करते रहे थे।

गांधी यह ज़रूर मानते थे कि उपभोक्तावादी समाज अन्तत: हमारे धर्मविहीन होने का कारण बनेगा। यहां उनका मन्तव्य प्रचलित 'धर्म' से न हो कर, जिसे वे 'धर्म' मानते हैं, वह है। सत्य को ईश्वर मानने वाले गांधी के लिए दरअसल मनुष्यमात्र के मर्म को अनुभूत करने वाली नैतिक व्यवस्था ही मुख्यत: धर्म है। इसी तरह, उनके लिए मानवीय चेतना का विकास या कि आत्म चेतना का विकास ही सही मायनों में विकास है जिससे नैतिक बल हासिल हो। स्पष्ट है कि गांधी के लिए विकास की अवधारणा यह है जिससे मनुष्य के भौतिक विकास के साथ ही नैतिक विकास की संभावनाएँ बनती हो। हालांकि वे नैतिक और भौतिक विकास को अलग नहीं बल्कि एक ही मानते थे।

जैसा कि पहले कहा गया है, गांधी वैज्ञानिक विकास और औद्योगिक-प्रौद्योगिकी के स्वीकार किए गए स्वरूप से सहमत नहीं थे क्योंकि वे मानते थे कि यह वृत्ति अन्तत: शोषण की तरफ बढ़ेगी। गांधी जी जिसे अहिंसा कहते-मानते हैं वह केवल हिंसा तथा हिंसक-वृत्तियों की अनुपस्थिति नहीं बल्कि एक ऐसी नैतिक व्यवस्था की स्थापना है जहां समस्त आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था एक अहिंसक आर्थिक तन्त्र और समतामूलक मानव समाज का निर्माण करने में सहायक हो। पश्चिम में औद्योगिक क्रांति और इसके फलस्वरूप हुए

विकास के साथ ही अर्थशास्त्र की नई व्याखाएं भी प्रतिपादित की गईं। लेकिन इन सब के केन्द्र में जो उपभोक्तावादी शक्तियां थी, उन का मूल कर्म अन्ततः लाभकारी तन्त्र का निर्माण करना ही था। आधुनिक अर्थशास्त्र के प्रणेता एडम स्मिथ तक का यह मानना था कि आर्थिक प्रक्रियाएं एवं विकास वस्तुतः लाभकारी तन्त्र द्वारा ही पोषित होते है जिसमें नैतिकता सदैव दूसरे छोर पर पर ही नज़र आती है। दूसरे अर्थों में, लाभकारी तन्त्र के निर्माण और विकास में जितने भी आविष्कार होंगे, उन से उत्पादकता तो निःसन्देह बढ़ेगी लेकिन इसकी कोई गारण्टी नहीं कि वह मानव में नैतिक विकास कर सकने में सक्षम होंगे। इसके उलट, इसकी पूरी संभावना है कि यह एक असन्तुलित समाज का निर्माण करेगा जिसमें साधनों (कृत्रिम और प्राकृतिक) पर क़ब्ज़ा कुछ सम्पन्न लोगों/ समूहों के हाथों में रहेगा, और अधिकांश जन-समूह महज़ उपभोक्ता ही बने रहेंगे। यह असन्तुलन आखिर में हिंसा को जन्म देगा, जो कि गांधी किसी भी सूरत में स्वीकार नहीं करते हैं। इसीलिए पश्चिम से आयातित औद्योगिक विकास की अवधारणा को वे भारतीय परिप्रेक्ष्य में, उसके उस स्वरूप में अस्वीकार करते थे।

लेकिन वही गांधी चरखे के विकास और उसे उन्नत बनाने के लिए नये प्रारूपों के आविष्कार हेतु लोगों को प्रेरित कर रहे थे। यह कोई द्वंद्व नहीं है कि एक ओर औद्योगिक-प्रौद्योगिकी के अन्धाधुन्ध प्रयोग से वे चिंतित थे, वहीं दूसरी ओर आत्म-निर्भर ग्रामीण समाज के लिए वे विज्ञान के ही सहयोग से विकास हेतु प्रयत्नशील थे। दरअसल यही वो फ़र्क़ है जिसे समझते ही सारे भ्रम दूर हो जाएंगे। गांधी चरखे (और अन्य सभी लघु, कुटीर और समुदाय आधारित कार्यों) को ग्रामीण भारत के स्वावलम्बन की नींव मानते थे जिससे न केवल उनकी अंग्रेज़ी शासन पर निर्भरता घटेगी बल्कि समृद्ध आर्थिक तन्त्र के निर्माण के साथ ही हर गांव-क़स्बे में उत्पादन कार्यों से सर्वांगीण विकास होगा। वे इस बात के प्रबल समर्थक थे कि ग़रीबी नैतिक समाज के निर्माण के रास्ते में सबसे बड़ा रोड़ा है। अतः ग़रीबी से जूझ रहे जन-समुदायों के उच्चतम नैतिक जीवन और इसके नियमों से बंधे रहना सबसे बड़ी चुनौती है। स्वावलम्बन एवं आर्थिक उन्नति के ज़रिए ही नैतिक समाज की स्थापना की जा सकती है - इसी आग्रह के चलते वे हमेशा स्वदेशी के अपने मार्ग पर टिके रहे।

कलाकृति : अपरा पुरोहित

गांधी मानते थे कि सत्ता के विकेन्द्रीकरण की पहली और ज़रूरी शर्त यह है कि संसाधनों पर सब का हक़ हो और आर्थिक प्रक्रियाएं अहिंसक बनी रहे। इसका आशय यह है कि वे औद्योगिक विकास/ मशीनीकरण के नाम पर संसाधनों और सत्ता के केन्द्रीकरण के विरुद्ध थे जबकि वैज्ञानिक विकास/ प्रौद्योगिकी के सहारे हर गांव-समाज को आत्म-निर्भर/ स्वावलम्बी बनाने के लिए तैयार थे। चरखे को देशभर में लोकप्रिय बनाने और अंग्रेज़ी शासन के आधिपत्य के विरुद्ध एक हथियार बनाने के पीछे उनकी मंशा चहुमुखी विकास की रही थी जबकि अन्धाधुन्ध मशीनीकरण से समाज में उत्पन्न भिन्नताएं और परिणामस्वरूप हिंसक तन्त्र के निर्माण की प्रबल संभावनाओं के कारण अराजक समाज की स्थापना उनके इस मन्तव्य के विरुद्ध जाती दिखाई देती है। यही प्रमुख कारण था कि तकनीकी के साथ आयातित पश्चिमी मानसिकता के उनके विरोध को अज्ञानतावश उनका विज्ञान विरोध मान लिया गया।

यह महज़ संयोग नहीं कि गांधी की चिन्ताएं अब हमारे सामने समस्याएं बन कर खड़ी हैं। वर्तमान में ग़रीबी, कुपोषण, आर्थिक विषमताओं जैसी सामाजिक समस्याओं सहित वैश्विक शक्ति-असन्तुलन, जलवायु परिवर्तन से पर्यावरण पर मंडरा रहे दीर्घकालीन खतरे, प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन, जैव-विविधता के लगातार हो रहे ह्रास जैसी जीवन पर संकट पैदा कर रही समस्याएं बड़ी चुनौतियों के रूप में विकराल होती जा रही है। काश कि हमने गांधी की विकास अवधारणा को अंगीकार कर के, पश्चिम से आयातित औद्योगिक - प्रौद्योगिकी के स्थानीकरण और भारतीय समाज के अनुरूप उन को स्वीकार किया होता तो आज हम बर्बादी के इस मुहाने पर नहीं होते। गांधी हमेशा मानते थे कि ऐसे मनमाने विकास के दुष्परिणाम समाज के गरीब, वंचित और कमजोर लोगों को सबसे पहले और सबसे ज़्यादा भोगने पड़ेंगे। उनका सन्देह निराधार नहीं था। इसी कारण वे मानते थे कि विकास हेतु प्रयोग में ली जा रही, तकनीकीकरण सहित, कोई भी युक्ति जब तक असल कामगारों के हाथ नहीं आएगी या समुदायों द्वारा नियंत्रित-निर्देशित नहीं होगी, वह हमारे लिए कारगर नहीं हो सकती। हस्त, लघु और कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने की नीतियां ही भारत जैसे विविधता

सम्पन्न, वृहद् भू-भाग वाले राष्ट्र के लिए किसी भी केन्द्रीकृत मशीनीकरण की प्रक्रिया से ज़्यादा लाभकारी और हितकारी होगी – ऐसा मानने में कोई गुरेज़ नहीं होना चाहिए। साथ ही कृषि-आधारित उद्योगों और ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना ही सही अर्थों में भारत के विकास का समुचित ज़रिया होगा। ग्रामीण अंचलों और दूर-दराज तक फैले समाजों के सर्वांगींण विकास हेतु इसके अलावा कोई और चारा अभी नज़र नहीं आता जो सम्पन्नता, खुशहाली और प्रकृति से साम्यता रखते हुए विकास में सफल हो।

विकास की आधुनिक अवधारणाओं के प्रचार-प्रसार से बिल्कुल भी विचलित हुए बिना गांधी प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्फ्रेड वॉलेस के हवाले से मानते थे कि युरोप तक में, विज्ञान के नवीनतम आविष्कारों और तदुपरान्त विकास से लोगों की नैतिकता ज़रा भी नहीं बढ़ी है। बल्कि इससे हिंसा, द्वेष और अन्याय ही बढ़ा है। फिर विकास की ऐसी अवधारणा को गांधी कैसे स्वीकार करते? यह दरअसल विज्ञान-प्रौद्योगिकी का नहीं बल्कि उसके नाम पर जबरन थोपी गयी व्यवस्था का विरोध था, जिसे उन के 'एंटी-साइंस' होने का निराधार आक्षेप बना दिया गया है। चिकित्सा क्षेत्र में प्रयोगों के नाम पर असहाय प्राणियों पर होने वाली हिंसा गांधी कभी सहजता से नहीं ले सके। गांधी ही क्यों, कोई भी संवेदनशील व्यक्ति इस हिंसा के विरोध में खड़ा होगा जो हम अपनी स्वार्थ-वृत्तियों से कारित करते हैं। उनका पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियों पर भरोसा रहा था। हालांकि वे मानते थे कि उनमें विज्ञान सरीखी दृष्टि का अभाव है। वे प्रशिक्षित व दक्ष लोगों को ही इनके प्रयोग हेतु सक्षम मानते थे और लगभग आगाह करते थे कि बिना दक्ष कर्मियों के, हम अपने स्वास्थ्य के साथ ही उन पद्धतियों का भी नुक़सान करेंगे। गांधी जब तर्क या नैतिक रूप से प्रतिकूल होने पर धर्म की व्याख्या स्वीकार नहीं करते, वे विज्ञान का विरोध कैसे करेंगे जिसकी स्थापना ही तार्किक सिद्धान्तों से हुई है? गांधी के यहां तर्क-सम्मत होना ही किसी विषय-वस्तु का किसी भी कसौटी पर खरा उतरने के समान है। चरखा-क्रांति हेतु उनके अभियान को जन-जन तक पहुंचाने के लिए तैयार कुशल और प्रशिक्षित 'सत्याग्रही वैज्ञानिक' दरअसल उन सारे प्रश्नों का जवाब है जो गांधी की विज्ञान-दृष्टि और विकास की अवधारणाओं पर उठाए जाते रहे हैं।

तकनीकी आधारित विकास की अवधारणा से गांधी की एक और असहमति भी है। औद्योगिक प्रौद्योगिकी जहां एक ओर उत्पादन में लगातार वृद्धि के लिए विकसित हुई है वहीं इससे पोषित अर्थतन्त्र द्वारा ज़रूरतों की कृत्रिम मांग पैदा करना भी आवश्यक है – नहीं तो बढ़े हुए उत्पादन के उपभोक्ता कहां मिलेंगे! इस वजह से इसके मनुष्य और प्रकृति, दोनों के विरुद्ध हिंसक व अनैतिक होने की पूरी संभावना देखते हुए गांधी इस थोपी हुई विकास व्यवस्था के खिलाफ खड़े हैं। वे दरअसल हर उस व्यवस्था के खिलाफ है जो मनुष्य को केवल उपभोक्ता समझती है और अन्ततः उसकी स्वाधीनता के हक़ का क्षरण करती है। उनके लिए विकास वही है जिसमें स्वाधीनता व स्वावलम्बन के साथ ही हमारे नैतिक विकास की प्रक्रिया आवश्यक रूप से समाहित हो। गांधी-दृष्टि के इस आलोक में देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रचलित वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रौद्योगिकी विकास की अवधारणा मानवता को ग़ैर-बराबरी, हिंसक और महज़ उपभोग को बढ़ावा देने वाली व्यवस्था की तरफ़ धकेल रही थी इसीलिए उन्होंने उस व्यवस्था के भारत में (या कहीं भी होने वाले) अन्धानुकरण का विरोध किया।

नैतिकता/नैतिक बल के समर्थन में स्वामी विवेकानन्द और गांधी-दृष्टि समान दिखाई देती है। वे मानते थे कि असीमित ताकत के बूते निर्बल कि असमर्थता का फायदा उठाना सम्पन्न लोगों का विशेषाधिकार रहा है, और इस विशेषाधिकार को ध्वस्त करना ही हर युग की नैतिकता होगी। गांधी इसी नैतिकता के लिए उस व्यवस्था के खिलाफ खड़े दिखते हैं जिसमे निर्धन, निर्बल, वंचित और शोषित लोगों का हक़ मारा जा रहा हो। प्रसिद्ध इतिहासविद् जॉर्ज मैकॉले ट्रेवल्यन ने कहा है कि शिक्षा ने ऐसी बहुत बड़ी आबादी पैदा की है जो पढ़ तो सकती है, पर यह पहचानने में असक्षम है कि क्या पढ़ने लायक़ है। हमें गांधी-दृष्टि के आलोक में यह देखना होगा कि उनका वह विरोध क्या था, और उससे भी महत्वपूर्ण, वह क्यों था। गांधी पर जबरन उनके विज्ञान-विरोधी होने के थोपे गए आरोपों को जॉर्ज मैकॉले ट्रेवल्यन के उक्त कथन से देखना चाहिए। उनके मर्म को जाने-समझे बिना, यह कहना कि वे विज्ञान-विरोधी हैं, उचित नहीं जान पड़ता।

गांधी की विज्ञान-दृष्टि के जिक्र के साथ ही एक लोकप्रिय छायाचित्र याद आ जाता है जिसमें गांधी इत्मिनान से सूक्ष्मदर्शी यन्त्र में कुछ देख रहे हैं। गांधी की सबसे बड़ी थाती यही सूक्ष्मदृष्टि ही तो है कि वे किसी भी व्यवस्था-तन्त्र के आगामी खतरों को बहुत पहले से ही भांप सकते थे। संपोषणीय/ सतत (Sustainable) विकास की उनकी अवधारणा और मानवीय तकनीकों के विकास हेतु उनका आग्रह आज ज्यादा प्रासंगिक है, जब हम आसन्न खतरों से रुबरू हो रहे हैं। गांधी-दृष्टि में, किसी भी आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के मूल में मानव का नैतिक विकास और अहिंसक प्रक्रियाएं अनिवार्य रूप से उपस्थित होनी चाहिए तभी वह व्यवस्था मानवीय होगी। इसके इतर हिंसक, अनैतिक और शोषण-असमानता को जन्म देने और पोषित करने वाली किसी भी व्यवस्था के विरुद्ध उनका खड़े होना मानवीय दृष्टिकोण में बिल्कुल सही जान पड़ता है। दरअसल, सत्य के साथ अविचलित खड़े रहना ही तो गांधी होना है। ●

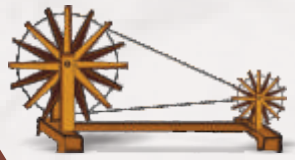

चरखे का संगीत

- मोहनदास करमचंद गांधी

महात्मा गांधी की पुस्तक 'मेरे सपनों का भारत' विभिन्न विषयों की महत्ती वैचारिकी है। विभिन्न विषयों पर उनके मन की बातें इस पुस्तक में है। विकसित भारत की सोच से संबद्ध उनके इस पुस्तक के आलेख पढ़ते लगता है, उनकी प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है जितनी लिखते समय में थी। उनकी इसी पुस्तक 'मेरे सपनों का भारत' से यहां प्रस्तुत 'चरखे का संगीत' आलेख 'सुजस' के पाठकों के लिए खासतौर से दिया जा रहा है।

– सम्पादक

मैं जितनी बार चरखे पर सूत निकालता हूं उतनी ही बार भारत के गरीबों का विचार करता हूं। भूख की पीड़ा से व्यथित और पेट भरने के सिवा और कोई इच्छा न रखने वाले मनुष्य के लिए उसका पेट ही ईश्वर है। उसे जो रोटी देता है वही उसका मालिक है। उसके द्वारा वह ईश्वर के भी दर्शन कर सकता है। ऐसे लोगों को, जिनके हाथ-पैर सही-सलामत हैं, दान देना अपना और उनका दोनों का पतन करना है। उन्हें तो किसी-न-किसी तरह के धंधे की जरूरत है; और वह धंधा, जो करोड़ो को काम देगा, केवल हाथ-कताई का ही हो सकता है। ... इसलिए मैंने कताई को प्रायश्चित या यज्ञ बताया है। और चूंकि मैं मानता हूं कि जहां गरीबों के लिए युद्ध और सक्रिय प्रेम है वहां ईश्वर भी है, इसलिए चरखे पर मैं जो सूत निकालता हूं उसके एक-एक धागे में मुझे ईश्वर दिखाई देता है।

मेरा पक्का विश्वास है कि हाथ-कताई और हाथ-बुनाई के पुनर्जीवन से भारत के आर्थिक और नैतिक पुनरुद्धार में सबसे बड़ी मदद मिलेगी। करोड़ों आदमियों को खेती की आय में वृद्धि करने के लिए कोई सादा उद्योग चाहिए। बरसों पहले वह गृह-उद्योग कताई का था; और करोड़ों को भूखों मरने से बचाना हो तो उन्हें इस योग्य बनाना पड़ेगा कि वे अपने घरों में फिर से कताई जारी कर सकें और हर गांव को अपना ही बुनकर फिर से मिल जाए।

जब मैं सोचता हूं कि यज्ञार्थ किए जाने वाले शरीर-श्रम का सबसे अच्छा और सबको स्वकार्य रूप क्या होगा, तो मुझे कताई के सिवा और कुछ नहीं सूझता। मैं इससे ज्यादा उदात्त और ज्यादा राष्ट्रीय किसी दूसरी चीज की कल्पना नहीं कर सकता कि प्रतिदिन एक घंटा हम सब कोई ऐसा परिश्रम करें, जो गरीबों को करना ही पड़ता है, और इस तरह उनके साथ और उनके द्वारा सारी मानव-जाति के साथ अपनी एकता साधें। मैं भगवान की इससे अच्छी पूजा की कल्पना नहीं कर सकता उसके नाम पर मैं गरीबों के लिए गरीबों की ही तरह परिश्रम करूं। चरखा दुनिया के धन का अधिक समानतापूर्ण बंटवारा सिद्ध करता है।

मैं चरखे के लिए इस सम्मान का दावा करता हूं कि वह हमारी गरीबी की समस्या को लगभग बिना कुछ खर्च किए और बिना किसी दिखावे के अत्यंत सरल और स्वाभाविक ढंग से हल कर सकता है। इसलिए चरखा न केवल उपयोगी ही हैं। बल्कि वह एक ऐसी आवश्यक चीज है जो हर एक घर में होनी चाहिए। वह राष्ट्र की समृद्धि का और इसलिए उसकी आजादी का चिह्न है।

चरखा व्यापारिक युद्ध की नहीं, व्यापारिक शांति की निशानी है। उसका संदेश संसार के राष्ट्रों के लिए दुर्भाव का नहीं, परंतु सद्भाव का और स्वावलंबन का है। उसे संसार की शांति के लिए खतरा बनने वाली या उसके साधनों का शोषण करने वाली किसी जल सेला के संरक्षण की जरूरत नहीं होगी, परंतु उसे जरूरत होगी ऐसे लाखों लोगों के धार्मिक निश्चय की, जो अपने-अपने घरों में उसी तरह सूत कात लें जैसे आज वे अपने-अपने घरों में भोजन बना लेते हैं। मैंने करने के काम न करके ऐसी अनेक भूलें की हैं, जिनके लिए मैं भावी संतान के शाप भाजन बन सकता हूं। मगर मुझे विश्वास है कि चरखे का पुनरुद्धार सुझाकर तो मैं उनके आशीर्वाद का ही अधिकारी बना हूं। मैंने उस पर सारी बाजी लगा दी है, क्योंकि चरखे के हर तार में शांति, सद्भाव और प्रेम की भावना भरी है और चूंकि चरखे की छोड़ देने से हिंदुस्तान गुलाम बना है, इसलिए चरखे के सब फलितार्थों के साथ उसके स्वेच्छापूर्ण पुनरुद्धार का अर्थ होगा हिंदुस्तान की स्वतंत्रता।

कताई के पक्ष में जो दावे किए जाते हैं वे ये हैं :

- जिन लोगों को फुरसत है और जिन्हें थोड़े से पैसों की भी जरूरत है, उन्हें इससे आसानी से रोजगार मिल जाता है;
- इसका हजारों को ज्ञान है;
- यह आसानी से सीखी जाती है;
- इसमें लगभग कुछ भी पूंजी लगाने की जरूरत नहीं होती;
- चरखा आसानी से और सस्ते दामों में तैयार किया जा सकता है। हममे से अधिकांश को यह मालूम नहीं है कि कताई एक ठीकरी और बांस की खपच्ची से यानी तकली पर भी की जा सकती है;
- लोगों को इससे अरुचि नहीं है;
- इससे अकाल के समय तात्कालिक राहत मिल जाती है;
- विदेशी कपड़ा खरीदने से भारत का जो धन बाहर चला जा रहा है, उसे यही रोक सकती है;
- इससे करोड़ों रुपयों की जो बचत होती है, वह अपने-आप सुपात्र गरीबों में बंट जाती है;
- इसकी छोटी-से-छोटी सफलता से भी लोगों को बहुत कुछ तात्कालिक लाभ होता है;
- लोगों में सहयोग पैदा करने का यह अत्यंत प्रबल साधन है।

अब आलोचक यह पूछेगा कि 'अगर हाथ-कताई में वे सब गुण हैं जो आप बताते हैं, तो क्या बात है कि अभी तक वह सब जगह नहीं अपनाई गई है?' प्रश्न बिलकुल न्यायपूर्ण है। उत्तर सीधा है। चरखे का संदेश ऐसे लोगों के पास पहुंचाना है, जिनमें कोई आशा, कोई आरंभ-शक्ति रह नहीं गई है और जिन्हें यों ही छोड़ दिया जाए तो भूखों मर जाना मंजूर है, परंतु काम करके जिंदा रहना मंजूर नहीं। पहले यह हाल नहीं था, परंतु लंबी उपेक्षा ने आलस्य को उनकी आदत बना दिया है। यह आलस्य ऐसे चरित्रवान और उद्योगी मनुष्यों के सजीव संपर्क से ही मिटाया जा सकता है, जो उनके सामने चरखा चलाएं और उन्हें प्रेमपूर्वक रास्ता दिखाएं। दूसरी बड़ी कठिनाई खादी के लिए यह है कि उसकी तुरंत बिक्री नहीं होती। मैं स्वीकार करता हूं कि फिलहाल वह मिल के कपड़े के साथ स्पर्धा नहीं कर सकती। मैं ऐसी किसी घातक स्पर्धा में पड़ूंगा भी नही। पूंजीपति लोग बाजार पर कब्जा करने के लिए अपना माल मुफ्त में भी बेच सकते हैं। लेकिन जिस आदमी की एकमात्र पूंजी श्रम है, वह ऐसा नहीं कर सकता। क्या जड़ कृत्रिम गुलाब में-फिर वह कितना ही सुंदर और सुडौल हो-और जीवित कुदरती गुलाब में, जिसकी कोई दो पंखुड़ियां समान नहीं होतीं, कोई तना हो सकती है? खादी सजीव वस्तु है। लेकिन हिंदुस्तान ने सच्ची कला की परख खो दी है। इसलिए वह बाहरी कृत्रिम सुंदरता से संतुष्ट हो जाता है। उस स्वस्थ राष्ट्रीय सुरुचि को फिर से जगाइए और भार का हर गांव उद्योगों से गूंजने लगेगा। अभी तो

खादी-संस्थाओं को अपनी अधिकांश शक्ति खादी बेचने में ही लगानी पड़ती है। अद्‌भुत बात यह है कि भारी कठिनाइयां होते हुए भी यह आंदोलन आगे बढ़ रहा है।

मैं हाथ-कताई के पक्ष में ऊपर जो कुछ कहा है, उससे किसी तरह का विचार-भ्रम नहीं होना चाहिए। मैं हाथ-करघे के विरुद्ध नहीं हूं वह एक महान और फलता-फूलता गृह-उद्योग है। अगर चरखा सफल हुआ तो हाथ-करघे की प्रगति अपने-आप होगी। अगर चरखा असफल हुआ तो हाथ-करघा मरे बिना नहीं रहेगा।

चरखा मुझे जन-साधारण की आशाओं का प्रतीक मालूम होता है। चरखे को खोकर उन्होंने अपनी आजादी, जैसी कुछ भी वह थी, खो दी। चरखा देहात की खेती की पूर्ति करता था और उसे गौरव प्रदान करता था। वह विधवाओं का मित्र और सहारा था। वह देहातियों को आलस्य से बचाता था, क्योंकि चरखें में पहले और पीछे के सब उद्योग-लोढ़ाई, पिंजाई, ताना करना, मांड़ लगाना रंगाई और बुनाई-आ जाते थे। और इनमें गांव के बढ़ई और लुहार काम में लगे रहते थे। चरखे से सात लाख गांव आत्म-निर्भर रहते थे। चरखे के चले जाने पर तेलघानी आदि दूसरे ग्रामोद्योग भी खत्म हो गए। इन धंधों की जगह और किसी धंधे ने नहीं ली इसलिए गांवों के विविध धंधे, उनकी उत्पादक प्रतिभा और उनसे होने वाली थोड़ी आमदनी, सबका सफाया हो गया।

इसलिए अगर ग्रामीणों की फिर से अपनी स्थिति में वापस आना हो, तो सबसे स्वाभाविक बात जो सूझती है, वह यह है कि चरखे और उसके साथ लगी हुई बात बातों का पुनरुद्धार हो।

यह पुनरुद्धार तब तक नहीं हो सकता जब तक बुद्धि और देश-भक्ति वाले नि:स्वार्थ भारतीयों की एक सेना न हो और वह चरखे का संदेश देहातियों में फैलाने और उनकी निस्तेज आंखों में आशा और प्रकाश की किरण जगाने के लिए दत्तचित होकर काम न करने लगे। यह सही ढंग के सहयोग और प्रौढ़ शिक्षा का जबरदस्त प्रयत्न है। यह चरखे की शांत परंतु प्राणदायक गति की तरह ही एक शांत और निश्चित क्रांति को लाने वाला है।

हमारी मिलें अभी इतना सूत पैदा नहीं कर सकतीं कि कपड़े की हमारी सारी जरूरत उनसे पूरी हो जाए, और यदि वे करती होती, तो भी जब तक उन्हें बाध्य न किया जाता वे कीमत कम करने के लिए तैयार न होतीं। उनका उद्देश्य जाहिर तौर पर पैसे कमाना है और इसलिए यह तो हो नहीं सकता कि वे राष्ट्र की आवश्यकताओं का खयाल करके अपनी कीमतों का नियमन करें। अत: हाथ-कताई ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा गरीब देहातियों के हाथों मे करोड़ों रुपए रखे जा सकते हैं। हर एक कृषि-प्रधान देश को ऐसे एक पूरक उद्योग की जरूरत होती है, जिससे किसान अपने अवकाश के समय का उपयोग कर सकें। भारत में यह पूरक उद्योग हमेशा कताई रहा है। जिस उद्योग के नाश के फलस्वरूप गुलामी और गरीबी आई और उस अनुपम कला-प्रतिभा का लोप ही गया, जो किसी समय चमत्कार पूर्ण भारतीय वस्त्रों में दिखाई देती थी और जो दुनिया की ईर्ष्या का विषय बन गई थी, उस प्राचीन उद्योग को पुनर्जीवित करने के प्रयत्न को क्या स्वप्न-सेवियों का आदर्श कहा जा सकता है?

आम तौर पर यह दावा जरूर किया जा सकता है कि बड़ा मिल-उद्योग हिंदुस्तानी उद्योग है। पर जापान और लंकाशायर के साथ टक्कर लेने की शक्ति होते हुए भी यह उद्योग जितने अंशों में खादी के ऊपर विजय प्राप्त करता है, उतने ही अंशों में जन-साधारण का शोषण खड़े कर देने की इस जमाने की धुन में मेरे इस विचार को यद्यपि बिलकुल ठुकरा नहीं दिया गया है, तो भी इसके विषय में कुछ लोगों ने शंका तो उठाई ही है। इसके विरोध में यह कहा गया है कि यांत्रिक उद्योगों की प्रगति के कारण जन-साधारण की दरिद्रता जो बढ़ती जाती है वह अनिवार्य है, और इसलिए उसको सहन करना ही चाहिए। इस अनिष्ट को सहन करना तो दूर, मैं तो यह भी नहीं मानता कि वह अनिवार्य है। अखिल भारत चरखा-संघ ने सफलतापूर्वक यह बता दिया है कि लोगों के फुरसत के समय का उपयोग अगर कातने और उसके पूर्व की क्रियाओं में किया जाए, तो इतने से ही गांवों में हिंदुस्तान की जरूरत के लायक कपड़ा पैदा हो सकता है। कठिनाई तो जनता से मिल का कपड़ा छुड़वाने में है।

मिल-मालिक कुछ परोपकारी तो हैं नहीं कि वे हाथ-करघे के बुनकरों को तब भी सूत देते रहेंगे जब ये उनके साथ उन्हें नुकसान पहुंचाने वाली प्रतिस्पर्धा करने लगेंगे।

ज्यों ही मिल-मालिकों को ऐसा लगेगा कि सूत बेचने के बजाय बुनने में ज्यादा लाभ हैं, त्यों ही वे उसे बेचना बंद कर देंगे और बुनना शुरू कर देंगे। वे कोई परोपकारी नहीं है। उन्होंने मिलें पैसा कमाने के लिए ही खड़ी की हे। यदि वे देखेंगे कि सूत बुनने में ज्यादा लाभ है, तो वे उसे हाथ-करघा के बुनकरों को बेचना बंद कर देंगे।

मिल के सूत का उपयोग हाथ-करघा उद्योग के मार्ग की एक घातक बाधा है। उसकी मुक्ति हाथ-कताई के सूत का उपयोग करने में ही है। अगर चरखा असफल रहा और मिट गया, तो हाथ-करघे का नाश भी निश्चित ही है।

मैं अनेक कंपनियों के संघबद्ध होकर काम करने या बड़े-बड़े यंत्रों का उपयोग करके उद्योगों का केंद्रीकरण करने के खिलाफ हूं। अगर भारत खादी को और खादी के फलितार्थों को अपनाएं, तो मैं ऐसी आशा करता हूं कि भारत आधुनिक यंत्रों में से केवल उतनों का ही उपयोग करेगा, जो जीवन की सुख-सुविधा बढ़ाने और श्रम की बचत के लिए आवश्यक माना जाए।

चंद लोगों के हाथ में धन और सत्ता का केंद्रीकरण करने के लिए यंत्रों के सघटन को मैं बिलकुल गलत समझता हूं। आजकल यंत्रों की अधिकांश योजनाओं का यही उद्देश्य होता है। चरखे का आंदोलन यंत्रों द्वारा होने वाला शोषण और धन तथा सत्ता का यह केंद्रीकरण रोकने के लिए किया जा रहा संघटित प्रयत्न है। इसलिए मेरी योजना में यंत्रों के अधिकारी अपने लाभ की या अपने देश के उदाहरण के लिए, लंकाशायर के लोग अपने यंत्रों का उपयोग भारत के या दूसरे देशों के शोषण के लिए नहीं करेंगे; उलटे वे ऐसे साधन ढूंढ़ेंगे जिनसे भारत अपने कपास को अपने गांवों में ही कपड़े का रूप देने में समर्थ हो जाए। इसी तरह मेरी योजना में अमेरिका के लोग भी अपनी आविष्कारक प्रतिभा के द्वारा दुनिया की दूसरी जातियों का शोषण करने की कोशिश नहीं करेंगे। ●

गांधी का आर्थिक चिंतन

- डॉ. अजय जोशी

अपने आर्थिक चिंतन को जीवन शैली के रूप में परिभाषित करते थे। पश्चिम के बहुत से अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र के अलग अलग सिद्धांत प्रतिपादित करते हैं लेकिन महात्मा गांधी का मानना था अर्थशास्त्र में कोई सिद्धांत नहीं होता वरन यह जीवन जीने का एक तरीका है। उनकी दृष्टि में जो भी आर्थिक किया हो उसे मोटे तौर पर सत्य और अहिंसा की कसौटी पर कस कर उसकी जांच परख की जानी चाहिए। ऐसी कोई भी आर्थिक गतिविधि जो सत्य और अहिंसा की कसौटी पर खरी नहीं उतरे उसे गांधीवादी आर्थिक क्रिया में शामिल नहीं किया जा सकता।

महात्मा ने आर्थिक गतिविधियों को मोटे तौर पर पांच प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट किया। इनको उन्होंने आदमखोर, लुटेरा, कारोबारी, गिरोहबंद और सेवा गतिविधि के रूप में वर्गीकृत किया। उनका मानना था कि चोर और डाकू भी आर्थिक क्रियाएं करते हैं लेकिन उनकी क्रियाएं आदमखोर गतिविधि है क्योंकि वे बिना कुछ काम किए धन-दौलत प्राप्त करने के लिए आदमियों को मार डालते हैं। लुटेरे का उदाहरण देते हुए गांधी जी ने लिखा कि मान लीजिए कोई चुपके से आपकी जेब से पर्स निकाल कर धन प्राप्त कर रहा है तो लुटेरा है यद्यपि उसके द्वारा की जाने वाली यह क्रिया भी आर्थिक गतिविधि ही है। उनका मानना था कि किसान कारोबारी श्रेणी की गतिविधि करते हैं क्योंकि वे जमीन जोतते हैं, बीज बोते हैं, कड़ी मेहनत करते हैं और उसका फल प्राप्त करते हैं।

महात्मा गांधी संयुक्त हिंदू परिवार को गिरोहबंद अर्थ नीति की मिसाल मानते थे। उनका मानना था कि परिवार का मुखिया और सभी भाई केवल अपने लिए नहीं वरन सारे खानदान के लिए कार्य करते हैं इसमें काम करने वाला व्यक्ति अपनी कमाई को अपनी व्यक्तिगत कमाई ना मानकर पूरे खानदान की मानता है। गांधी जी सेवा अर्थ नीति का सबसे उपयुक्त उदाहरण मां को मानते थे। उनका मानना था कि मां सभी बच्चों के लिए काम करती है लेकिन इसके बदले किसी पुरस्कार की कामना नहीं करती। वह यह मानती है कि सेवा ही उसका पुरस्कार है।

गांधीजी कहते थे कि जिस प्रकार यह सब बातें एक व्यक्ति, परिवार और समाज में लागू होती है उसी प्रकार राष्ट्रों में भी लागू होती है। उनका मानना था कि भारत की अंग्रेजों की गुलामी के दौरान अंग्रेजों की अर्थनीति को आदमखोर अर्थ नीति की श्रेणी में रखा जा सकता है। दूसरे देशों पर दबाव डालकर अपने आर्थिक हित साधने की अमेरिका की नीति को वे लूटेरा अर्थ नीति की श्रेणी में रखते थे। भारत की कृषि अर्थ नीति को वे कारोबारी अर्थ नीति की मिसाल के रूप में देखते थे गांधीजी तत्कालीन सोवियत संघ और नाजी जर्मन को गिरोह बंद अर्थ नीति का प्रतीक मानते थे। उनका कहना था कि सेवा अर्थ नीति की मिसाल किसी भी देश में नहीं मिलती। वे भारत की अर्थ नीति को सेवा अर्थ नीति की ओर अग्रसर करने का प्रयास करना चाहते थे।

आचार्य डॉ. जे. सी. कुमारप्पा, ने महात्मा गांधी के आर्थिक विचारों पर 'गांधीयन इकोनॉमिक थॉट' नाम से एक पुस्तक लिखी। मुंबई के प्रख्यात अर्थशास्त्री प्रोफेसर सी.एन. वकील जो बंबई यूनिवर्सिटी के स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स एंड सोशियोलॉजी के निदेशक थे, उन्होंने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा कि 'जहां तक आर्थिक विकास की बात है हमारे ऊपर असर दो चीजों का पड़ता है' एक तो पश्चिमी विचारों का और दूसरा गांधीजी के आर्थिक विचारों का। यदि सरकारें इन दोनों विचारधाराओं में सही ढंग से तालमेल नहीं बिठा पाए तो कई विसंगतियां उत्पन्न हो सकती है और हुई भी इस पुस्तक में डॉ. कुमारप्पा ने गांधी जी के आर्थिक चिंतन के कई पहलुओं की व्याख्या की जिनमें अर्थ नीति का आधार, कृषि अर्थ नीति और ग्राम सुधार, कृषि से जुड़े काम धंधों, मिल वाली आर्थिक नीति, समाजवाद, साम्यवाद आदि शामिल थे।

महात्मा गांधी अर्थ नीति को नैतिकता से अलग नही मानते थे। विदेशी विद्वान बिजनेस एथिक्स या व्यवसायिक नीतिशास्त्र के रूप में जिसको अलग से देखते हैं वह गांधीजी के विचार में नैतिकता ही है। उनका मानना था कि जिस गतिविधि में नैतिकता नहीं है वह कभी भी आर्थिक गतिविधि नहीं मानी जा सकती। आजकल जो व्यवसाय के

सामाजिक उत्तरदायित्व की बात की जा रही है और कंपनियों के लिए कॉरपोरेट सोशल रेस्पॉन्सबिलिटी कि जो अवधारणा कंपनी कानून में शामिल की गई है वह मूल रूप से महात्मा गांधी के व्यवसायिक नैतिकता की अधारणा का एक छोटा सा हिस्सा मात्र है।

गांधीजी श्रम को मानव जीवन का अभिन्न अंग मानते थे। उन्होंने भगवत गीता के कर्मयोग सिद्धांत को अपने जीवन में उतार लिया था। उनका मानना था कि गीता के 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' सिद्धांत को प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन का अभिन्न अंग मानना चाहिए। उन्होंने कहा कि मैंने टालस्टाय का 'रोटी के लिए शारीरिक श्रम' से संबंधित लेख पढ़ा। वैसे इससे पहले भी रस्किन का 'अनटू दिस लास्ट' पढ़ने के बाद श्रम के महत्व की पुष्टि हो गई। महात्मा गांधी ने श्रम के सिद्धान्त की पुष्टि गीता के तीसरे अध्याय में जहां यह कहा गया है कि जो व्यक्ति यज्ञ किये बिना भोजन करता है, वह चोरी का अन्न खाता है। इस सम्बन्ध में गांधी जी का मानना था कि यहां यज्ञ का आशय श्रम से ही है। यद्यपि आज के परिवेश में श्रम के आयाम बदल रहे है। शारीरिक श्रम की तुलना में मानसिक श्रम को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। गांधी जी का मानना था कि व्यक्ति चाहे कितना ही बड़ा हो उसे कुछ न कुछ शारीरिक श्रम अवश्य ही करना ही चाहिये। गांधी जी श्रम विभाजन सिद्धांत में मजदूरी के विभेद को उचित नहीं मानते थे उनका मानना था कि शारीरिक श्रम का पारश्रमिक मानसिक श्रम करने वालों की तुलना में कम नहीं होना चाहिए। इसीलिये वे तकनीकी विकास के संबंध में कहते थे कि तकनीकी विकास की तरफ मत भागो इससे पहले यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि इसका गरीबों के रोजगार और जीवन स्तर पर क्या प्रभाव पड़ेगा। उनका मानना था कि तकनीकी विकास से यदि बेरोजगारी और गरीबी बढ़ती है तो उसको नहीं अपनाया जाना चाहिए।

गांधीजी रोजगारपरक विकास को अधिक महत्व देते थे। उनका मानना था कि देश के लोगों को रोजगार दिए बिना विकास का कोई मायने नहीं है। उन्होंने व्यापक रोजगार अवसर सृजित करने की दृष्टि से खादी और ग्रामोद्योगो को बढ़ावा देने की बात कही थी। हमने देखा भी कि खादी और ग्रामोद्योगों के माध्यम से गांव गांव और घर घर करोड़ों रोजगार के अवसर उत्पन्न हुए। बीच के वर्षों में लोगों का खादी के प्रति झुकाव कम हो गया था लेकिन अब खादी एक ब्राण्ड बन रही है। 'खादी इण्डिया' ब्राण्ड से खादी युवाओं में प्रचलित फैशन बनता जा रहा है। जिस खादी को महात्मा गांधी ने चरखे से सूत कात कर शुरू किया था आज वही खादी देश ही नहीं वरन् विदेशों में एक लोकप्रिय ब्राण्ड बन गई है।

> **"आजकल जो व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व की बात की जा रही है और कंपनियों के लिए कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी कि जो अवधारणा कंपनी कानून में शामिल की गई है वह मूल रूप से महात्मा गांधी के व्यवसायिक नैतिकता की अधारणा का एक छोटा सा हिस्सा मात्र है।"**

गांधीजी के आर्थिक चिंतन को वामपंथी, दक्षिण पंथी, मध्यमार्गी, कम्यूनिस्ट या समाजवादी-पूंजीवादी विचारधाराओं में बंधना संभव नहीं है। परम्परागत समाजवाद में भी उनका विश्वास नहीं था उनका कहना था कि समाजवाद शब्द का शब्दकोश अर्थ देखने के बावजूद मैं उस स्थान से कतई आगे नहीं बढ़ा जहां मैं यह परिभाषा पढ़ने से पहले था। आशय स्पष्ट है कि समाजवाद की प्रचलित अवधारणा उनके आर्थिक चिंतन का हिस्सा नहीं थी। कई विचारकों का मानना है कि गांधी एक सहज समाजवादी थे जिनका पूंजीवाद से कठोर विरोध नहीं था। उनका मानना था कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि पूंजी निर्जीव है लेकिन पूंजीवादी सजीव है और उन्हें परिवर्तन हेतु तैयार किया जा सकता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए गांधीजी ने 'ट्रस्टीशिप अवधारणा' का प्रतिपादन किया। इस संबंध में उनका कहना था कि अमीर लोगों को समाज के भले के लिए अपनी संपत्ति ट्रस्ट में रखनी चाहिए। व्यापारियों को अपने उद्यम लाभ के लिऐ चलाने चाहिए लेकिन इनसे कमाया गया लाभ व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं बल्कि समाज के सभी वर्गों के लाभ के लिए होना चाहिए।

टाटा औद्योगिक समूह ने गांधीजी की इस विचारधारा को स्वीकार किया उन्होंने अपने लाभ को सभी शेयर धारकों के ट्रस्टीशिप में रखा। इसके स्वरूप को बदलकर इसकी मूल भावना के अनुसार कई पश्चिमी देशों के उद्योगपति कार्य कर रहे है। इन दिनों अमेरिका के उद्योगपतियों में एक शपथ लेने का प्रचलन बढ़ा है जिसे वे 'द गिविंग प्लेज' का नाम देते है इसके अन्तर्गत वे अपनी आधी से अधिक संपति दानार्थ दे देते है। प्रतिष्ठित निवेशक वारेन बफिट ने बिल गेट्स व कुछ अन्य अरबपतियों के साथ मिलकर यह कार्यक्रम शुरू किया जिसके अन्तर्गत अरबों खरबों रुपयों की सम्पति को दान करके समाज के हित के लिए लगाया जाता है। इस कार्यक्रम में 150 से ज्यादा अरबपति अपनी आधी संपति दान देने की प्रतिज्ञा कर चुके है। इनमें मार्क जकर बर्ग, विनोद खोसला, ऐलान मास्क, लैरी एलिसन और डेविड राकफेथर आदि प्रमुख है। भारत में भी नारायण मूर्ति, अजीम प्रेमजी और शिव नाडेकर जैसे अरबपति इसी तरह से परोपकार के लिये खर्च कर रहे है। यह गांधीजी की ट्रस्टीशिप की अवधारणा की स्वीकारोक्ति ही है।

आज के परिवेश में एकबारगी हमें ऐसा लग सकता है कि गांधी जी का आर्थिक चिंतन प्रांसगिक नहीं है। उनके मूल विचार स्वदेशी, ग्राम स्वराज्य, कुटीर उद्योग, स्वरोजगार, श्रम का सम्मान, मशीनीकरण की बजाय मानव श्रम पर बल, व्यावसायिक नैतिकता आदि आज के परिवेश में अधिक उपयुक्त दिखायी नहीं जान पड़ते लेकिन उनकी प्रांसगिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता।

इन दिनों प्रचलित होने वाली अवधारणाएं जैसे आत्मनिर्भर भारत, वोकल फोर लोकल, मेक इन इण्डिया, मेक फॉर इण्डिया, स्किल इंडिया आदि के मूल में महात्मा गांधीकी आर्थिक दृष्टि ही है। इन सभी अवधारणाओं की सफलता भी गांधी जी के मूल चिंतन नैतिकता, सत्य, अहिंसा के प्रयोग से ही संभव है। इन सभी के क्रियान्वयन के किसी भी निर्णय को लागू करते समय समाज के अंतिम छोर पर खड़े गरीब व्यक्ति को ध्यान में रखना ही होगा तभी इनकी सफलता संभव है। ●

महात्मा गांधी का कला चिंतन

- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

महात्मा गांधी ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम एक साथ कई-कई मोर्चों पर लड़ा था एवं उनके तौर-तरीके और साधन-संसाधन सब भारतीय मानस एवं माटी से ही जुड़े थे। गांधी केवल सामाजिक एवं राजनैतिक आन्दोलन के केन्द्र बिन्दु ही नहीं थे, वरन् परोक्ष रूप से कलात्मक सृजन के अंतस को भी छूआ एवं गहराई से प्रभावित किया। मसलन गांधी ने अन्याय के प्रतिकार स्वरूप जो औजार गढ़े हैं, वे उनके कला चिंतन को प्रासंगिक बनाते हैं। आत्मा के उजास में सच को देखने और उत्थान का नया अध्याय गढ़ने वाले महात्मा गांधी का जीवन भारतीय जीवन मूल्यों में रची-बसी संस्कृति का ही आदर्श रहा है, जिसके वशीभूत शिल्प, कला, संस्कृति एवं संगीत में उनकी उपस्थिति दिखती है। 1924 में शांतिनिकेतन के युवा कला छात्र रामचन्द्रन द्वारा 'भारतीय कला एवं संस्कृति का पुनर्जागरण में योगदान' विषयक प्रश्न के प्रत्युत्तर में गांधी जी का कथन 'मैं कला के बाहरी लकदक रूप का नहीं बल्कि आंतरिक सौन्दर्य का पुजारी हूं' इसके इतर एक अन्य अंश - 'मैं सत्य में या सत्य के द्वारा सौन्दर्य देखता हूं। मुझे तो सत्य की प्रतिबिंब वाली सभी वस्तुएं सुन्दर लगती हैं - सच्चा चित्र, सच्चा काव्य और सच्चा गीत। आमतौर पर लोगों को सत्य में सौन्दर्य नहीं दिखाई देता। उन्हें वह भयंकर लगता है। लोग सत्य को भीषण देखकर भागते हैं, क्योंकि सत्य का सौन्दर्य उन्हें सूझता ही नहीं। यह समझो कि मनुष्य सत्य में सौन्दर्य देखने लगा तो कला देखने लगा, कला रसिक हुआ (महादेव भाई देसाई की डायरी से साभार; गांधी जी के साथ पच्चीस वर्ष, खंड चार)। यही विचार उनके कलात्मक चिंतन के खाके को सिरजते हैं।

अपने फकीरी लिबास और कृशकाय शरीर के बावजूद महात्मा गांधी दुनियाभर के रचनाधर्मियों, संस्कृतिकर्मियों एवं लिखने-पढ़ने वाले लोगों का आकर्षण का केन्द्र हैं। उन पर किताबें लिखे जाने, फिल्में बनाने, नाटक लिखने एवं करने का, चित्र बनाने एवं रचनात्मक कामकाजों में भी स्वत: प्रेरित ढंग से गांधी एवं उनके चिंतन के प्रकटीकरण का सिलसिला अनवरत जारी है। सौन्दर्यबोध के निर्माण में जितनी भूमिका सामाजिक परिवेश की है, उतनी ही प्राकृतिक परिवेश की भी है। हमारे इन्द्रियबोध को ही नहीं तथापि भावबोध के भी कई स्तरों को प्राकृतिक परिवेश निर्धारित करता है। गांधी का कला चिंतन पूर्णत: प्रकृति से उपजा हुआ सच था, जिसका सौन्दर्यबोध उनके कामकाज में स्वत: ही प्रस्फुटित होता था।

सत्य और अहिंसा गांधी की मौलिक खोज नहीं थे। अपितु भारतीय चिंतन परम्परा में ये मूल्य चिरकाल से प्रतिष्ठित एवं स्वीकृत रहे हैं। बल्कि गांधी की महानता इस बात में थी कि इन निजी जीवन-मूल्यों को उन्होंने सामाजिक, कलात्मक एवं राजनैतिक प्रतिरोध के सार्वजनिक मूल्यों के रूप में पुनराविष्कारित किया। गांधीजी ने कहा था कि 'जहां अहिंसा है वहां सत्य है, और जहां सत्य है, वहां ईश्वर।' कला को मानवीय सत्य की रक्षा का ध्येय लेकर चलने का समय आ गया है और यह सत्य बिना हिंसा को निर्मूल किए नहीं पाया जा सकता। गांधी के इसी चिंतन के बरक्श ही हम कहते आए हैं कि कला हर तरह की हिंसा, चाहे वह दैहिक हो या मानसिक, उसका प्रतिकार है।

गांधीजी का जीवन सत्य, अहिंसा, सादगी और भाईचारे पर आधृत था, इसलिए कला के सम्बन्ध में उनके विचार भी सादगी, सरलता, जीवन्तता और जनमानस से सहज जुड़ने की प्रक्रिया के अनुकूल थे। वे कला को सत्यं शिवं सुन्दरम् में सुन्दरम् के स्थान पर रखते थे। महात्मा टाल्सटाय के कला सम्बन्धी विचारों से वे सहमत थे। उन्होंने अपनी कला पुस्तक 'व्हाट्ज आर्ट' में कहा है कि आजकल ऐसी कोई सच्ची कला नहीं हो सकती, जो जनता के हाथों द्वारा प्रस्तुत न की गई हो। वहीं गांधी जी का कथन था कि मशीन युग की दौड़ में हृदय की सच्चाई को मेहनत के हाथों द्वारा प्रकट करना ही असली कला है। चरखा और खादी इस कला के प्रतीक थे। स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग उनकी दृष्टि में लोक जीवन और लोक कला को बढ़ावा देना था (महात्मा गांधी और

कलात्मक सृजन, समकालीन कला, अंक 17, मई- 1996, पृ. 32)। महात्मा गांधी की कार्यशैली और चिन्तन शैली को रविन्द्रनाथ टैगोर एवं शांतिनिकेतन ने कहीं-न-कहीं प्रभावित और स्पंदित अवश्य किया था। दरअसल यहीं के प्रभाव स्वरूप कला-मनीषी नन्दलाल बसु को गांधी द्वारा 'हरिपुरा पोस्टर्स' सरीखा मंच प्रदान कर इसकी परिभूमि में श्रमिकों की मेहनत, किसानों, कामगारों एवं दस्तकारों की दुनिया और दस्तकारी, शिल्प-कौशल, घरेलू जीवन के चिरपरिचित चित्रों तथा उत्सवों द्वारा ग्रामीण अंचलों की कलाओं को सहेजने की कोशिश है। इसे गांधी जी की कलादृष्टि ही कहेंगे कि नन्दबाबू को कांग्रेस अधिवेशनों में शिल्प-प्रदर्शनी आयोजित करने का दायित्व सौंपा। ये अधिवेशन एक कलानुष्ठान में तत्पश्चात् विराट कला-तीर्थ में परिणत हो गए थे। नन्दबाबू के इतर शांतिनिकेतन के अन्य कलाकारों में बिनोद बिहारी मुखर्जी, प्रभातमोहन मुखोपाध्याय एवं विनायक मासोजी प्रमुख थे, जो इस कलात्मक यज्ञ को समिधा दे रहे थे। लखनऊ (मार्च, 1936), फैज़पुर (दिसंबर, 1936) तथा हरिपुरा (19-21 फरवरी, 1938) के कांग्रेस अधिवेशनों में नन्द बाबू ने भारतीय शिल्प चेतना एवं स्वदेशी की भावना का अद्भुत परिचय दिया जो कहीं न कहीं गांधी के कला चिंतन को ही पुष्ट करता है।

निश्चय ही कलाओं के साथ महात्मा गांधी का जो साहचर्य रहा है, वह उनके दैनिक जीवन की कार्यप्रणाली एवं शैली में दिखाई देता है। गांधी के 'चरखा संगीत' के मायने उनके कला चिंतन के स्पर्श एवं मर्म को बतलाते हैं। संगीत की शक्ति एवं विचार पर गांधी को अगाद्ध श्रद्धा थी। वे संगीत को कामधेनु कहते थे। सात स्वरों की सोहबत में वे शांति, सद्भाव, एकता व आपसदारी का अटूट सनातन संदेश मानते थे। यही वजह रही कि अपने स्वाधीनता आंदोलन में 'रघुपति राघव राजा राम', 'वैष्णवजन तो तेने कहिए', 'हरि तुम हरो जन की पीर' व 'राम धुन' सरीखे भक्ति पदों द्वारा लोक की आत्मा में स्वाभिमान का आलोक बिखेरा जो निस्संदेह गांधी की कलात्मक समझ एवं सम्बन्ध को उजागर करता है जिनका इस्तेमाल स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान शान्ति, समरसता, शुचिता व आंतरिक मनोबल बनाए रखने के लिए उन्होंने किया।

गांधीजी देहात (गांव) के गरीबों तक कला के प्रसार के पक्षपाती थे इसलिए आदिवासी कलात्मक उपकरणों में उनका गहरा लगाव था। उनका विचार था कि आदर्श ग्राम में एक 'ग्राम रंगशाला' हो, जो सांस्कृतिक गतिविधियों के केन्द्र के रूप में कार्य करें। ये गांधी जी के कला चिंतन की उपज थी कि वे सदैव भारतीय लोक कला के पुनरुत्थान एवं जनसामान्य की कला को बढ़ावा देने की हिमायती रहे।

महात्मा गांधी के कला चिंतन की पैठ इस बात से रेखांकित होती है, जब उन्होंने दक्षिण से आए युवा कलाकार के. वेंकटप्पा को कहा कि 'मैं प्रसन्न हूं एवं मेरा आशीर्वाद आपके साथ है, किंतु यदि आप आम जीवन पर चरखे के प्रभाव को दर्शाता हुआ चित्रण कर पाओ तो मुझे ज्यादा खुशी होगी।' गांधी जी कला को अपने उद्देश्यों और आदर्शों के अनुरूप देखना चाहते थे, जो उनके स्पष्ट लक्ष्यों की ओर इशारा करता है। (इलाशंकर गुहा लिखित शोध से साभार अंश)

दरअसल सच कहा जाए तो गांधी का सम्पूर्ण चिंतन एवं दर्शन भारत, भारतीय और भारतीयता की बुनियाद पर रचित और आधारित था। इसी मॉडल पर चलकर बुनियादी शिक्षा में रचनात्मक चिंतन के तहत 'शिक्षा की वर्धा योजना' में मूलभूत हस्तकलाओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने का विचार प्रस्तुत किया। गांधी इस बात से बखूबी परिचित थे कि कला एवं शिल्प के द्वारा ही बालक का सर्वांगीण विकास सम्भव है, जो वैज्ञानिक रूप से सिखाई जाए, यंत्रवत नहीं। मैं इसे गांधी की दूरदृष्टि ही कहूंगा कि वो कलाओं के मार्फत अहिंसक समाज निर्माण का कार्य करना चाहते थे। उक्त 'बुनियादी शिक्षा योजना' को गांधी एक महत्त्वपूर्ण भेंट मानते थे जिसे उन्होंने 'नई तालीम' की संज्ञा दी। यह सब अनायास नहीं था बल्कि कहीं न कहीं गांधी को कला के साथ राब्ता रहा है, जो बारम्बार स्वदेशी, लघु एवं कुटीर उद्योगों तथा कला एवं शिल्प कौशल द्वारा आत्मनिर्भर भारत बनाने पर बल देता है। अन्त में गांधी केवल चरखा चलाने का परामर्श ही नहीं दे रहे थे बल्कि ग्रामीण सहकारिता को प्रोत्साहित करने के लिए अन्य सह-रचनात्मक गतिविधियों पर भी जोर दे रहे थे।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गांधीजी की अवधारणा ही ऐसी विचारधारा है, जो कभी भुलाई नहीं जा सकती। मशीनयुग के विपरीत लघु उद्योग, चरखा, खादी ग्रामीण जीवन की सादगी, हस्तकला तथा सत्य एवं अहिंसा के पोषक गांधीजी ने भारतीयों को सादे और सच्चे जीवन का पाठ पढ़ाया। सत्य, अहिंसा, सादगी और सरलता ने देश को ही नहीं वरन्

बापू का प्रिय भजन

वैष्णव जन तो तेने कहिये

वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दु:खे उपकार करे तो ये, मन अभिमान न आणे रे।
वैष्णव जन तो तेने कहिए।
सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे ।
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे।
वैष्णव जन तो तेने कहिए।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे ।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे।
वैष्णव जन तो तेने कहिए।
मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे ।
रामनाम शुं ताळी रे लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे।
वैष्णव जन तो तेने कहिए।
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्या रे ।
भणे नरसैय तेनुं दरसन करतां, कुळ एकोतेर तार्या रे।
वैष्णव जन तो तेने कहिए।

सम्पूर्ण संसार को एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया। फिर भला कलाजगत भी उससे अछूता कैसे रहता। गांधी जी कलाकारों का बहुत सम्मान करते थे। किन्तु वे कला में आध्यात्मिक ऊंचाईयों और गहन आस्था के दर्शन चाहते थे। चित्रकारों द्वारा बनाई गई कलाकृतियों पर तारीख सहित हस्ताक्षर करने के बाद वे संदेश लिखते थे - 'ट्रुथ इज गॉड'। वे कला में रचयिता की छाप के, विविधता एवं सौन्दर्यबोध के पक्षधर थे।

बतौर गांधी अपने जीवन-मूल्यों, आदर्शों एवं चिंतन को लेकर एक खास किस्म के लगाव से रचनाकारों को लुभाते रहे हैं गांधी के कलात्मक चिंतन ने बहुतेरे रचनाकारों को प्रभावित किया। जिसमें बद्रीनारायण, रसिक रावल, आत्मेलकर, शैलोज मुखर्जी, निरोध मजूमदार, परितोष सेन, बेन्द्रे, स्याबक्स चावड़ा, राम किंकर, हुसैन, हकुशाह, उपेन्द्र महारथी एवं अतुल डोडिया सरीखे कलाकारों की लम्बी फेहरिस्त है और आज भी सिनेमाई जगत (बॉलिवुड एवं हॉलिवुड), न्यूज रील, टी.वी. सीरियलों, डॉक्यूमेंट्री एवं यू-ट्यूब सरीखे माध्यमों में गांधी जी विराजमान हैं। यह सब अकारण नहीं है, बल्कि जब-जब 'अभिव्यक्ति की आजादी' पर प्रश्नचिह्न लगेगा, तब-तब गांधी हमारे सामने होंगे। इधर गांधी ने मुझे एक अन्य कारण से बहुत प्रभावित किया और वह है उनके कला संबंधी विचार तथा विचारधारा। मेरे स्वयं के कलाकर्म में गांधी की उपस्थिति उनके जीवन-मूल्यों के इर्द-गिर्द ही रची-बुनी दिखाई देती है। आज मुड़कर पीछे देखें तो साफ दिखाई देता है कि किसी अन्य व्यक्ति के से ज्यादा दूर तक देखते हुए गांधी ने हमारी रचनात्मक कल्पना की सच्ची मुक्ति का मार्ग खोला।

गांधी की पूजा नहीं बल्कि गांधी की दिशा में छोटा-बड़ा सफर ही उनकी कलादृष्टि, लोकदृष्टि व सौन्दर्य-दृष्टि को मौंजू रखेगा। स्वाधीनता के इस नायाब शिल्पी की शख़्यसियत संवेदना के उन सूत्रों में गुंथी है, जहां मन के अथाह में शब्द, स्वर, रंग, लय और गतियों के आरोह-अवरोह भी उन्हें आन्दोलित करते रहे। गुलामी के खिलाफ पूरे हिन्दुस्तान को लामबंद करने वाले इस नायक को जितनी बार देखो, हर बार एक नया अक्स नुमाया होता है।

सर्वस्व त्यागी

सर्वस्व आपका ही है। आपके लिए एक हजार रुपये लाने का मेरा विचार था। लेकिन हर वर्ष घाटा रहा, इस कारण अपने लड़कों से पांच सौ ही ला सका, शेष बाद में मंगा लूंगा।'' यह कहकर उसने बाकी के सारे नोट निकालकर दे दिए।

''तुमने आज मुझे अपना सर्वस्व दे डाला। वे बड़े-बड़े लखपति, तो मुझे सौ या हजार रुपये का ही तुच्छ दान देते हैं।'' बच्चों की तरह खुशी से उछलते हुए गांधीजी ने कहा : ''अपने बेटों से भी तो कहो, क्या वे भी मुझे कुछ देंगे? वे अकेले ही अपनी तमाम सम्पत्ति का उपयोग क्यों करें?''

''क्यों नहीं देंगे? आप विश्वास रखिए, मेरे लड़के भी आपको देंगे। मेरा कुछ नहीं है। सब कुछ आप का ही तो है। आपका धन आपको ही सौंप रहा हूं। इसमें मेरी कौनसी प्रशंसा की बात है। आज मेरी सब मनोकामनाएं सफल हो गईं, आपके दर्शन पाकर और आपके चरण छूकर। मुझे आज क्या नहीं मिल गया है? मैं आज सब तरह से कृतकृत्य हो गया हूं। धन्य भाग मेरा आज!'' यह कहकर वह सर्वस्व त्यागी पुनः आनन्दमग्न हो गया। वह अपने साथ सिर्फ एक टीन की छोटी-सी सन्दूकची, बिस्तर का छोटा-सा पुलिन्दा, मोटी खादी की मिरजई, खादी की टोपी व धोती लिए था। उसकी सन्दूकची में गीता की पोथी, 'हरिजन सेवक' के अंक, एक जोड़ कपड़े व सूत था।

- पुस्तक 'युग पुरुष गांधी' से

राजस्थानी लोक मानस में गांधी

- डॉ. गजादान चारण 'शक्तिसुत'

राजस्थानी लोक जीवन में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि ''ज्यांरी सोभा जगत में, वांरो जीवण धन्न'' अर्थात इस संसार में उन्हीं लोगों का जीवन धन्य माना जाता है, जिनकी सुकृति की शोभा लोकजिह्वा पर विराजमान रहती है। इस दृष्टि से विचार किया जाए तो विगत एक सदी में लोककंठ पर किसी एक व्यक्ति की सर्वाधिक शोभा विराजमान रही है तो वह नाम है- श्री मोहनदास कर्मचंद गांधी। राष्ट्रपिता के ख्यातनाम से विभूषित महान व्यक्तित्व के 'धनी महात्मा गांधी अपनी रहनी-कहनी की एकरूपता, उदात्त जीवन-दृष्टि, मानवीय मूल्यों के प्रति दृढ़ निष्ठा, सत्य में अडिग विश्वास, आत्मबल की पराकाष्ठा, राष्ट्र के प्रति अनुराग, वक्त की नजाकत को पहचानने के कौशल, अन्याय के प्रबल प्रतिकार और अहिंसा के सबल समर्थन इत्यादि वैयक्तिक विशिष्टताओं के कारण भारतीय लोकमानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में साफल्यमंडित हुए।' राजस्थानी लोकमानस भी इसका अपवाद नहीं है। राजस्थानी लोकमानस तो उत्कृष्ट के अभिनन्दन एवं निकृष्ट के निंदन के लिए अपनी विलग पहचान रखता है, यही कारण है कि यहां ऐसा माना जाता है कि ''नर होत बडो अपनी करनी, पितु वंस बडो तो कहा करिए'' अर्थात किसी व्यक्ति की महत्ता का कारण उसकी जाति या वंश परंपरा नहीं होती वरन उसकी स्वयं की 'करनी' ही उसे महान बनाती है। महात्मा गांधी ने जो कुछ कहा, वो किया। इसी का परिणाम है कि उनकी सुकृति-सुरभि को राजस्थानी भाषा के अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं का आधार बनाकर अपनी लेखनी को धन्य किया और यह क्रम आज भी जारी है। राजस्थानी लोकमानस के उम्दा गायक एवं डिंगल काव्य परंपरा के सबल संवाहक कवि देवकरण बारहठ 'इंदोकली' ने तो महात्मा गांधी के राष्ट्रानुराग को श्रीकृष्ण के राष्ट्र-प्रेम से जोड़ते हुए लिखा कि ''श्री कृष्ण एवं महात्मा गांधी दोनों की रग-रग में राष्ट्रानुराग था, दोनों ने ही विभिन्न प्रदेशों में पैदल भ्रमण किया और जन-मन पर अपनी अनुपम छवि स्थापित की। श्रीकृष्ण अर्जुन के सखा थे तो महात्मा गांधी हरिजनों के परम हितचिंतक''-

राष्ट्र-प्रेम रग रग रमै, पग पग भमै प्रदेस।
सो थे अरजन के सखा, वे थे हरजन वेस।।

कवि नाथूसिंह महियारिया ने भी महात्मा गांधी के योगदान को श्रीराम एवं श्री कृष्ण के योगदान की तरह भारतवासियों के लिए वरदान ही माना है। उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'गांधी-शतक' के समाहार में यह कामना व्यक्त की कि वह शुभ दिन कब आएगा, जब हम भारत के मंदिरों में राम एवं कृष्ण के मध्य गांधी की प्रतिमा को स्थापित कर सकेंगे-

कद देखांला मिंदरां, कद जोड़ांला हत्थ।
रांम कृष्ण रै बीच में, गांधी री मूरत।।

राजस्थानी लोकमानस में कृतघ्नता को कलंक माना गया है और कृतज्ञता को मानवीय स्वभाव का आभूषण। इसी पावन प्रवृत्ति से प्रभावित होकर राजस्थानी कवियों ने अपने-अपने ढंग से भारतीय आजादी के अग्रदूत राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की है। यहां कृतज्ञतापूर्ण भावाभिव्यक्तियों की एक समृद्ध एवं सुदीर्घ शृंखला है। राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के मनीषी विद्वान श्री उदयराज

उज्ज्वल ने संबोधन शैली की रचना 'भांनिया रा सोरठा' में गांधी का स्मरण करते हुए लिखा कि ''स्वतंत्रता रूपी सीता भारत भूमि से सुदूर समुद्र पार चली गई थी, उसे अपने तपोबल से महात्मा गांधी ही पुन: भारत में लेकर आए'', ऐसी हूतात्मा को वंदन करते हुए कवि का यह सोरठा द्रष्टव्य है-

पूगी समदां पार, सीता समो स्वतंत्रता।
तप बळ गांधी तार, भारत लायो भांनिया।।

राजस्थानी कवि भंवरदान बारहठ 'मधुकर' झिणकली ने 'गुणसबदी' छंद में महात्मा गांधी के भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में योगदान को बड़े विनोदपूर्ण ढंग से चित्रित किया है। उन्होंने गांधी को एक जादूगर एवं भारत माता का ज्येष्ठ पुत्र बताते हुए कहा कि मोहिनी मंत्र की सिद्धि प्राप्त श्री मोहनदास कर्मचंद गांधी ने ऐसा शंखनाद किया, जिसको सुनकर पहली बार भारत के हिंदू, मुस्लिम, इसाई आदि सब धर्मावलंबी एकमत हो गए। 'वोट' रूपी गोली की सटीक चोट से बड़े-बड़े कोट-कीले कंपायमान हो गए और सभी राजा एवं नवाब अपने उच्चासन छोड़कर बापू के पास सामान्य लोगों की पंक्ति में आ बैठे। इसी तरह की उपमाओं के साथ छंद है, जिसकी बानगी उद्धरण रूप में प्रस्तुत है-

मोहनी मंत्र फूंकियो मोहन, वाजिया संख विसेस।
पंडित मुल्ला पादरी सारा, हंमकै हूवा हेक।

वस्तुत: महात्मा गांधी ने अपने जीवन में जिन आदर्शों को व्यावहारिक धरातल पर व्यवहृत किया, वह अपने आपमें अनुपम है। अहिंसा के अस्त्र वाला यह अद्वितीय योद्धा युग-युग के यौद्धाओं का आदर्श बन गया। कवि कल्याणसिंह राजावत की ये पंक्तियां कितनी सटीक हैं-

जियो जमारो जस री जोतां, जग में कर्‌यो उजास रे।
जुग जुग रा जोधा रै खातर, खुद बणग्यो इतिहास रे।।

कवि अतुल कनक तो सुखद आश्चर्य व्यक्त करते हुए स्वयं गांधी से ही पूछते हैं कि हे बापू! तुम मनुष्य थे या सूरज, जो कि अकेला ही काली-अंधेरी रात्रि से भिड़ पड़ा और आजादी का उजाला निकाल लाया-

तूं मनख छो/ कै सूरज छो
जे अेकलो ही आंथड़ग्यो/ काळम्यां की/अंध्यारी रात सूं।।

यह किसी आश्चर्य से कम बात कहां है कि 'दे दी आजादी हमें बिना खड़ग बिना ढाल' के नायक एवं खाली 'हांड-मांस के एक पुतले' ने अंग्रेजी सत्ता के सूर्य को अस्त कर दिया। दो खारक की खुराक खाने एवं बकरी का दूध पीने वाले डगमगते डोकरे ने बड़ी से बड़ी ताकत वालों को झुकने पर विवश कर दिया। अल्पाहारी एवं कृशकाय गांधी की वैश्विक साख एवं धाक पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए लिखे गए राजस्थानी कवियों श्री बदरीदान कविया बासणी एवं ठा. नाहरसिंह आउवा के दो उल्लेखनीय दोहे क्रमश: देखिए-

खारक दोय खुराक री, अजया दूध आहार।
डोकरियो डिगतो वहै, सह धूजै संसार।।
पय अजिया रो पाव ले, चाहत खारक च्यार।
डोकरियो डिगतो वहै, सह धूजै संसार।।

कवि जसकरण सूमलियाई ने एक डिंगल गीत के माध्यम से गांधी के योगदान को रेखांकित किया। इस गीत का एक दुहाला विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसमें कवि ने लिखा कि भूखे एवं दुखी भारतवासियों के परतंत्रता रूपी तालों को तोड़कर चरखा घुमाने वाले गांधी ने सारा ब्रह्मांड हिला डाला-

भूखी दुखी दीन भारत रा, तूटा व्यापक ताळा।
घरटी ज्यूं ब्रहमंड घुमायो, वाह अरटियै वाळा।।

राजस्थानी इतिहास के गौरव चरित्रों को अपनी रचनाओं मे माध्यम से जन-जन तक पहुंचाने वाले 'सैनाणी' रचना के कवि श्री मेघराज मुकुल ने अपनी एक कविता में गांधी को लोकरंग में सृजन का सच्चा प्रतीक, युगवाणी का ज्योति-रूप एवं सटीक अक्षर बताया-

लोकरंग में सिरजण रो तूं, साचो है प्रतीक ओ गांधी।
जुगबांणी रो ज्योति रूप तूं, अक्षर है सटीक ओ गांधी।।

राजस्थानी साहित्य में किसी युग-पुरुष, महानायक, प्रियजन या प्रेरक व्यक्तित्व के निधन पर शोकसंतप्त कवि-हृदयों द्वारा 'मरसिया' काव्य सृजन की समृद्ध परंपरा रही है, जिसमें कवियों द्वारा दिवंगत व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषताओं का बखान करने के साथ ही उसके विरह में देश-समाज सहित संपूर्ण परिवेश में छाई विरानी का मार्मिक चित्रण किया जाता है। सहृदय कवि अपनी लोकमान्यताओं एवं विश्वासों के आधार पर तरह-तरह की कल्पनाएं करते हुए अपने चरित्र नायक के गुण एवं

विश्वव्यापी व्यक्तित्व

''अपने खास ढंग से जबर्दस्त ताकतों को जाग्रत करके छोड़ देने की गांधीजी में स्वाभाविक शक्ति थी, जो कि पानी की लहरों की तरह चारों ओर फैल जाती है और लाखों आदमियों पर अपना असर डालती है। चाहे वह प्रतिगामी हों या क्रांतिकारी, उन्होंने हिन्दुस्तान की सूरत तब्दील कर दी। उस जनता में, जो हमेशा हाथ जोड़ती और डरती रहती थी, स्वाभिमान और चरित्र-बल भर दिया। उन्होंने आम लोगों में शक्ति और चेतना पैदा की और हिन्दुस्तान की समस्या को संसार की समस्या बना दिया।''

- पंडित जवाहरलाल नेहरू

सुयश का गान करता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का दुखद निधन किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को आहत करने वाला था, फिर संवेदनसिक्त कवि-मन उससे आहत हुए बिना कैसे रह सकते थे? देश एवं विदेश में भी महात्मा गांधी के देहावसान पर अनेक रचनाकारों ने अपनी भावांजलियां भेंट की, उसी कड़ी में राजस्थानी भाषा के साहित्यकारों द्वारा लिखित 'मरसिए' अत्यंत मार्मिक हैं। कवि डूंगरसिंह भाटी ने लिखा कि महात्मा गांधी की मृत्यु से अनाथों की संपत्ति, सनाथों की सुमति, सनातन की नीति, सुधर्म की महिमा, अधर्म की निंदा, कुकर्म की भर्त्सना, अहिंसा की विशेषता और प्रतिहिंसा के प्रति घृणा इत्यादि का एक साथ अंत हो गया। बापू के आत्मशांति में विलीन होने से भारत में शांति के अथाह समुद्र की मर्यादित पाज जीर्णशीर्ण हो गई-

महात्मा गांधी की मौत को राजस्थानी कवियों ने देश का दुर्भाग्य माना। ऐसे अनेक रचनाकार हैं, जिनकी कलमों ने इस जघन्य मौत पर खून के आंसूं रोए हैं। महात्मा गांधी ऐसे विरले व्यक्ति थे, जिनकी मृत्यु पर हिंदू-मुस्लिम सहित सब लोग एक साथ विसादग्रस्त हो गए। कवि कन्हैयालाल सेठिया विरचित ये पंक्तियां कितनी मर्मभरी हैं-

ओ मिनख मर्‌यो क मर्‌यो पाखी/सै साथै नाड़ कियां नाखी।
बा सिर कूटै है हिंदवाणी/ बा झुर-झुर रोवै तुरकाणी।
इसड़ो कुण सजन सनेही हो/ सगळां रा हिवड़ा डगमगग्या।
बै कुण गमग्या, बै कुण गमग्या।।

राजस्थानी के वरिष्ठ रचनाकार श्री नानूराम संस्कर्ता ने तो अलख को उलाहना लिखते हुए कहा कि हे ईश! आपने हमें असमय पर अनाथ क्यों कर दिया?-

बिलखी सृष्टि है बाप बिना/रोवै डस डस टाबर हीना
हे अलख अजोग बखत बगस्यो/ अणसमै अनाथ कियां कीना? ।।

जनकवि रेवतदान चारण 'कल्पित' ने तो भगवान को उलाहना देते हुए लिखा कि हे ईश्वर! यदि तुम्हारे मन में फूल तोड़ने की आई तो फिर 'कमल' तोड़ लेते; यदि रूप चाहिए था तो पूनम का चंद्रमा ले लेते; यदि ज्योति की इच्छा थी तो सूर्य मांग लेते; यदि इंसान ही चाहिए था तो किसी राजा को मांग लेते। कवि कहता है कि हे दुर्देव! आप गांधी के बदले जो भी मांगते, हमारी भारत माता आपको वो-वो सब कुछ दे देती और उस पीड़ा को सहन कर लेती लेकिन आपने गांधी को लेकर बड़ा अन्याय किया। आज हमारी भारत माता की बिलखती-रोती सूरत तुम से सवाल करती है-

हुती जे फूल री मन में, कमल नैं तोड़ लेणो हो
हुती जे रूप री मन में, पूनम रो चांद लेणो हो
हुती जे जोत री मन में, सूरज नैं मांग लेणो हो
हुती जे मिनख री मन में, तो कोई भूप लेणो हो

राजस्थानी लोक में कवि आसा बारहठ की एक पंक्ति लोकोक्ति के रूप में प्रचलित है कि ''साजनियां सालै नहीं सालै आहीठांण'' अर्थात व्यक्ति को उसका बिछुड़ा हुआ प्रिय उतना दर्द नहीं देता, जितना दर्द बिछुड़े हुए प्रिय से जुड़ी घटनाएं, उसके गुणों की चर्चा एवं उससे संबंधित स्थान देते हैं। महात्मा गांधी के विषय में भी यही सत्य उद्‌घाटित होता रहा है। जब जब देश-समाज में अशांति हुई है, किसी अच्छे व्यक्ति का साया इस देश से उठा है या सत्य, अहिंसा, शांति, नीति, मर्यादा एवं सदाचार में कमी होती दृष्टिगोचर हुई है, तब-तब राजस्थानी कवियों ने अपने चरित्र-नायक महात्मा गांधी को याद किया है। कवियों ने गांधी को अपने मन की पीड़ा, शंका एवं आशंका बताने के साथ ही उनके प्रति अपने अपनत्व भाव को व्यक्त करते हुए राय-परामर्श तक भी दिए हैं। जहां कवियों का एक वर्ग गांधी से भारत भूमि पर पुनर्जन्म की अपेक्षा करता रहा है तो दूसरा वर्ग गांधी को आगाह करते हुए कहता रहा है कि हे बापू! भूल कर भी इस भारत में फिर से मत आना। राजस्थानी के मीठे गीतकार कवि कानदान कल्पित ने एक लंबा गीत महात्मा गांधी के नाम लिखकर कहा कि ''म्हांकी मानो तो गांधीजी, भारत में भूल'र मत आज्यो/ म्हे तो मर मर कर जीवां हां, थांकी के हालत है लिखज्यो'' तो प्रगतिशील कवि श्याम महर्षि ने भी गांधीजी को संबोधित करते हुए कहा कि ''गांधीजी थे पाछा मत आइज्यो/ जे आओला तो दुख पाओला/ अब थारी बात न जनता सुणैली/ अर न सुणैला नेता'।

गीतकार मोहम्मद सद्‌दीक ने समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को संकेतित करने हेतु प्रतीक रूप में लिखा कि ''फुटपाथां रा फोड़ा देखो, गांधीजी रै देस में/सुख रा सपना देख्यां जाओ, भरोसाळा भेस में''। गांधीजी के सपनों का भारत आज किस दिशा में जा रहा है तथा किस दशा को प्राप्त होने को अभिशप्त हुआ है, उसका उल्लेख करती रचनाएं भी राजस्थानी साहित्य में अनेक हैं। कवि पवन पहाड़िया 'डेह' तो मानते हैं कि इन हालातों के सुधार हेतु गांधी को भारत में पुनर्जन्म लेना होगा और एक बार फिर हमारे लिए गोलियां खानी पड़ेगी-

आं लखणां मरस्यो मिट जास्यो/अर देस घिरैलो आंधी में।
फेरूं गोळ्यां खाणी पड़सी, इण देस महात्मा गांधी नैं।।

कवि बंशीधर दर्जी भी यही मानते हैं कि -''पथ पांतर्‌योड़ै मिनख नैं/मारग बतावण सारू/मानव कल्याण सारू/लेणो पड़सी पुनरजलम'' तो कवि लालसिंह बारहठ तो करुणा निधान भगवान से अपने भारत की दुर्दशा सा हवाला देते हुए एक बार गांधी-अवतार लेने हेतु आग्रह करता है-

करुणा निधान यही विनय हमारी आज, सदा सुखकारी नेक श्रवण सु दीजिए।
आओ अरे आओ ओ पढाओ हमें शांति पाठ, देय के भुलाओ हमें छोड़ मत दीजिए।

सुधी समालोचक डॉ. दीनदयाल ओझा ने महात्मा गांधी को सत्य, अहिंसा, नीति एवं धर्म का रूंख बताते हुए लिखा कि यह ऐसा पेड़ है, जो अपनी सौरम को बिखेरता है तथा दुर्गंध को मिटाता है। यह वृक्ष मनुष्य में मनुष्यता का भाव भरते हुए, सत्य को अपने जीवन का संगी बनाकर सत के अवतार के रूप में इस धरा पर प्रकट हुआ है- ''माणस में मानखै री भावना भर/साच नैं जीवण संगी बणाय'र/साच रो अवतार हुय/धरा प्रगट्‌यो।'' 'वरदा' पत्रिका के संपादक एवं कवि उदयवीर शर्मा ने तो महात्मा गांधी को युग-पुरुष की संज्ञा देते हुए नमस्कार किया और लिखा कि ''हे बापू! आपकी वाणी में संसार अभिव्यक्त हुआ है तो आपकी कर्मशीलता में सत्य के सागर ने स्थान पाया है। आपने पिछड़ों

को उठाने एवं अहंकारी मुकुटों को भूतल पर गिराने का यशस्वी कार्य किया है अत: हे युग-मानव आपको बारम्बार नमस्कार-

थारी वाणी में जग बोल्यो, थारै करमां में सत-सागर।
पिछड़्यां ने बेगो तूं ठाया, मुकुटां नैं ल्या गेर्‌या भू पर।
हे जुग-मानव मन-बळ अपार, हे जुग थरपणियां नमस्कार।

राजस्थानी साहित्य में शूरवीरों, संतों, लोकदेवताओं, महापुरुषों तथा साधारण व्यक्तियों के असाधारण सुकृत्यों को रेखांकित करते हुए उनके प्रति कृतज्ञता जाहिर करने हेतु 'रंग देने की' यानी लखदाद देने की परंपरा रही है। डिंगल कवि रायभाण सिंढायच ने गांधीजी को रंग देते हुए कतिपय दोहों की रचना की, जिनमें कवि ने सौ से आरंभ करके हजार, लाख, करोड़, अरब, खरब, नील, पदम और अंत में असंख्य रंग दिए हैं, जो कि अपने आपमें विलक्षण एवं अत्यंत उल्लेखनीय प्रयोग है। कतिपय दोहे देखिए-

सहियो कष्ट सरीर में, दूर कियो दुख देस।
इणसूं गांधी आपनै, हरदम रंग हमेस।।
गाढ छोड़गा गोरिया, जिकां कियो नहं जंग।
इणसूं गांधी आपनै, सौ सौ रंग सुरंग।।
द्रिस्टी हेकण देखिया, सब मानव संसार।
इणसूं गांधी आपनै, है रंग बार हजार।।
गुण वधियो मोहन गजब, पूगै गरुड़ न पंख।
इणसूं गांधी आपनै, आखां रंग असंख।।

यह सनातन सत्य है कि इस संसार में जो आया है, उसे जाना ही पड़ेगा। यह संसार तो व्यक्ति के यश एवं अपयश को ही स्मृति में रखता है। राजस्थानी लोकजीवन में यश को जीवन एवं अपयश को मृत्यु माना गया है। महात्मा गांधी ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होंने अपने जीवन में अनंत यश कमाया। यही कारण है कि राजस्थानी कवियों ने महात्मा गांधी की सहिष्णुता, धैर्य, स्वदेश-प्रेम, आत्म-विश्वास, समदृष्टि, सत्याग्रह, पंचशील आदि विशिष्ट गुणों को आधार बना कर उन्हें कहीं युग पुरुष, कहीं महापुरुष तो कहीं कलियुग का राम कहकर संबोधित किया है। कवि वेदव्यास की ये पंक्तियां द्रष्टव्य है, जिसमें वे गांधी को कलियुग का राम बताते हैं-''मिनखां रा मेळा में, गांधी रो नाम/ भारत में जलम लियो, कळजुग रो राम।'' इसी शृंखला में कवि विश्वनाथ 'विमलेश' बापू को संबोधित करते हुए कहते हैं कि ''बापू तैं जोत जळाई बा जुग जुग तक जळती रैसी/मानवता का म्हैल बणैगा, दानवता का खंडहर रैसी।'' कवि रामेश्वर दयाल श्रीमाली ने गांधी को नीडर, सत्याग्रही एवं परोपकारी संत बताते हुए कहा कि उन्होंने सदैव सत्य-बाड़ी की रखवाली की और कीर्ति एवं सुयश की फसल अंवेरी, उन्होंने कभी कुर्सी को प्रेय नहीं बनाया-

साच नैं कैवतां संत नहं डरपियो, कूड़ रै लार नित धूड़ वाळी।
रुखाळी थे सदा सत-मोती वाड़ियां, कीरत जस जीत, कुरसी न रुखाळी।

कवि गिरधारीसिंह परिहार ने गांधी को भारत के नर-नारी सभी हेतु श्रद्धेय बताते हुए नेह-रूपी नारायण, निर्बलों का सहारा एवं भारत माता की आँखों का तारा बताया है-

वो संत लंगोटी वाळो हो, चाल्यो बळतै अंगारां में।
जिण करमजोग रो महामंत्र, फूंक्यो खादी रै तारां में।
वो नेह रूप नारायण हो, निबळां रो घणो सहारो हो।
धरती री आँख्यां रो तारो, भारत माता रो प्यारो हो।।

राजस्थानी जनमानस पुनर्जन्म तथा कर्मफल में विश्वास करने वाला होने के कारण यहां यह मान्यता है कि व्यक्ति की कीर्ति कभी मरती नहीं है-'सुयस नहं मरै सैकड़ां साल'। इसी लोकविश्वास को पुष्ट करती कवि लक्ष्मणदान कविया की रचना 'गांधी गुणतीसी' के समापन का यह दोहा समीचीन है-

अमर रहैली आपरी, दुनी कीरती दीह।
कथवी लक्ष्मणदान कवि, गांधी गुणतीसीह।।

इसी बात की प्रतिपुष्टि करते हुए कवि कान्ह महर्षि तो यहां तक कहते हैं कि ''वे लोग मिथ्याभाषण कर रहें हैं, जो कहते हैं कि गांधी मर गया। वस्तुत: गांधी तो युग-युगान्तर तक लोकमानस में जिंदा रहेंगे-

बै कूड़ा है जो गांधी नैं, धरती पर कायम नहं मानै।
बै साव हळाहळ झूठा है, जो गांधी नैं मरियो जाणै।।

कविमंचों के सशक्त हस्ताक्षर लक्ष्मणसिंह रसवंत तो यहां तक मानते हैं कि गांधी तो जहां भी रहेंगे, वहां भारत-भूमि का गौरवगान ही करेंगे। यहां तक कि वे स्वर्ग में भी भारत की कीर्ति का ही गान कर रहे हैं-

मोहन सत्त अहिंसा सागै, बिंदरावन में बीण बजावै।
सुख सांयत रा बाजा बाजै, भारत माँ री कीरत गावै।।

राजस्थानी जनमानस के रग-रग में जिन जीवनमूल्यों, आदर्शों एवं

तीर्थयात्री

एक बार एलोर के चार सौ तीर्थयात्री सिर्फ गांधीजी के दर्शनों के सेवाग्राम आए। वे गांधीजी से कोई बातचीत नहीं करना चाहते थे, केवल उनका दर्शन करना चाहते थे। उनमें से एक ने कहा ''हम लोगों ने पंढरपुर, नासिक और अन्य तीर्थस्थानों की यात्रा की है। अब हम उत्तर भारत में आये है। उत्तर भारत में गांधीजी के सिवा और कोई देवी-देवता नहीं है।''

शाम को वे आए और एक कायदे से चुपचाप बैठ गए। उन्होंने एक-दो भजन गाए, प्रार्थना में भाग लिया, 250 रुपये इकट्ठा करके गांधीजी को भेंट में दिए और शांतिपूर्वक उठकर चले गए। दूसरे दिन उन्होंने लगभग 700 रुपये की खादी खरीदी। वह देखने लायक दृश्य था, जब वे खादीधारी तीर्थयात्री वर्धा की सड़कों पर से निकले।

- पुस्तक 'युग पुरुष गांधी' से

नीति-नियमों ने गहरी पैठ बनाई है, उन्हीं जीवनमूल्यों, आदर्शों एवं नीति-नियमों को महात्मा गांधी के जीवन में व्यावहारिक रूप से प्रयुक्त होते देखकर ही लोक-चित्त ने गांधी को अपना श्रद्धेय स्वीकार किया है। चूंकि कवि तो समय का कैमरा होता है अत: जनमानस की सच्चाई को अपनी रचनाओं के माध्यम से स्वर देना ही सच्चा कवि-कर्त्तव्य है। आज लोकमानस को इस बात की पीड़ा है कि लोगों ने गांधी को अपनी स्वार्थपूर्ति का 'टूल' बना लिया है अत: गाहे-बगाहे गांधी का नाम लेकर अपना उल्लू सीधा करना आम बात हो गई है। इस आलेख के लेखक ने राष्ट्रपिता को इस सच्चाई से अवगत कराने हेतु अपनी काव्य रचना के माध्यम से बताया कि है कि ''हे बापू! आज दुनिया एवं उसकी रीति-नीतियों में बहुत बदलाव आ गया है। यहां सारे लोग आपका नाम तो लेते हैं लेकिन आदर देने के लिए नहीं वरन उद्धरण देकर अपनी बात को पुष्ट करने मात्र के लिए आपको उपयोग में लिया जाता है। आज लोग या तो आपकी वंदना करते हैं या निंदा करते हैं लेकिन आपका जिक्र एवं फिक्र अवश्य ही होता है-

सारा नाम तिहारो लेवै। आदर नहीं उद्धरण देवै।
मत ना बुरो मानजे बापू! जदै कदै कानां सुण लेवै।
वंदै या निंदै पण पक्को, फिकरो जिकरो थारो बापू।
बदळ्यो टेम बदळगी दुनियां, बदळ गयो है धारो बापू।।

आधुनिक डिंगल कवि डॉ. शक्तिदान कविया ने महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धासुमन अर्पणार्थ उनके समग्र योगदान को वयणसगाई युक्त दोहों में वर्णित करते हुए सत्य, अहिंसा एवं सादगी को गांधी का शृंगार बताया है। कवि ने गांधी को मानवता का महात्मा, दीन-प्रतिपालक, भारत का शुभचिंतक, गुणवंत आदि श्रद्धाजनक संज्ञाओं से अभिहित किया है। कवि का मानना है कि गांधी ने आजादी की ओट में जनमानस को यह ज्ञान दिया कि छोटों की उपेक्षा करने पर बड़ों के मान-सम्मान में कभी वृद्धि नहीं हो सकती। कवि ने महात्मा गांधी की अनेक शिक्षाओं को सरस दोहों में गूंथा है, कतिपय दोहे देखिए-

सत्य अहिंसा सादगी, गांधी रौ सिणगार।
मिनखपणै सूं म्हातमा, सब पूजै संसार।।
छोटां नैं छिटकावियां, मोटां बधै न मान।
आजादी री ओट में, (ओ) गांधी दीनौ ज्ञान।।
दीन हीन ऊपर दया, सदा करी वड संत।
भारत शुभचिंतक भलौ, गांधी हौ गुणवंत।।
सवचेत रहणौ सदा, निज करतब में नेक।
सफळ होण रौ मंत्र षुभ, बडपण तणौ विवेक।।
मिळसी गामां मांयनैं, असली भारत ओप।
करसां री सेवा करण, बापू दीनौ बोध।।

राजस्थानी भाषा में 'वीर सतसई' जैसी ओजस्वी रचना का सृजन करने वाले प्रत्युत्पनमतित्व के धनी नाथूसिंह महियारिया ने 'गांधी शतक' नाम से ग्रंथ में इस बात को स्वीकार किया कि गांधी का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व इतना महान एवं विषद है कि उसका समग्र वर्णन कर पाना किसी के वश का सौदा नहीं है। कवि महियारिया ने तो यहां तक कहा कि वो ही क्या? यदि आज वाल्मीकि, वेदव्यास एवं तुलसी जैसे विद्वान भी होते

"महात्मा गांधी अपनी रहनी-कहनी की एकरूपता, उदात्त जीवन-दृष्टि, मानवीय मूल्यों के प्रति दृढ़ निष्ठा, सत्य में अडिग विश्वास, आत्मबल की पराकाष्ठा, राष्ट्र के प्रति अनुराग, वक्त की नजाकत को पहचानने के कौशल, अन्याय के प्रबल प्रतिकार और अहिंसा के सबल समर्थन इत्यादि वैयक्तिक विशिष्टताओं के कारण भारतीय लोकमानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में साफल्यमंडित हुए।"

और गांधी पर लिखते तो वे भी गांधी को पूर्ण रूपेण वर्णित नहीं कर पाते-

वाल्मीक तुलसी हुता, वेद व्यास विद्वान।
तो भी कर सकता नहीं, गांधी रो गुणगान।।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि महात्मा गांधी ने सादगी, सच्चाई एवं कथनी-करनी की समानता के बल पर लोकमानस में अपना अमिट स्थान बनाया है। आज हम गांधी का 150 वां जयन्ती वर्ष मना रहे हैं। गांधी को संसार से गए सात दशक हो चुके लेकिन गांधी हमारे मन:मानस में निवास करते हैं। आज भी जितना गांधी पर लिखा एवं बोला जा रहा है, उतना अन्य पर नहीं। राजस्थानी रचनाकारों ने भी इस दृष्टि से अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। गांधी की आत्मकथा तथा गांधी दर्शन से जुड़ी विभिन्न कृतियों के अनुवाद की बात हो या गांधी को केंद्र में रख कर लिखे जाने वाले साहित्य की बात हो, हर दृष्टि से राजस्थानी रचनाकारों ने सराहनीय कार्य किया है एवं कर रहे हैं। हाँ! कवियों को यह चिंता अवश्य है कि धरती कभी निर्बीज नहीं हो सकती अत: भारत-भू पर समय-समय में अनेक महापुरुषों को अवतरण तो होता रहेगा लेकिन कवि कैळासदान उज्ज्वल के शब्दों में कहूं तो गांधी जैसा कोई महापुरुष फिर से मिलना मुश्किल है-

जुग जुग भळै सपूत जलमसी, नहं रैवै धरती निरबीज।
मुसकल है गांधी मोहन सम, चोखी फेर पावणी चीज।।

राजस्थानी लोकमानस को अपनी काव्य रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करने वाले विगत सात दशकों के ज्ञात राजस्थानी रचनाकारों की संख्या लगभग 100 से अधिक है। चूंकि हर अनुसंधित्सु की अपनी अन्वेशण-सीमाएं होती हैं अत: संभव है कि यह संख्या और अधिक हो। इस विषय पर विद्या वाचस्पति उपाधि हेतु शोध प्रबंध लिखा जा सकता है। एक आलेख की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए अंत में हर भारतवासी को कवि देवकर्णजी बारहठ इंदोकली की वाणी में यह आग्रह करते हुए इस आलेख का समापन करता हूं कि ''हे भारतवासियों! महात्मा गांधी भारत के सच्चे हितचिंतक थे अत: समय के उस महान संत एवं देवी किस्तूरा के कंत की उपादेयता एवं उपकार को कभी विस्मृत मत करना -

भारत हितचिंतक भयो, साच समै रो संत।
भारतियां मत भूलजो, किसतूरां रो कंत।। ●

हिंसा-अहिंसा और गांधी

- सन्त समीर

महात्मा गांधी का नाम आते ही अहिंसा शब्द बरबस याद आ जाता है; और, इसी के साथ अहिंसा के पक्ष-विपक्ष भी याद आते हैं। एक पक्ष है कि गांधी की अहिंसा के रास्ते ही देश और दुनिया की बुनियादी समस्याओं का समाधान मिल सकता है। दूसरा पक्ष है कि गांधी की अहिंसा से देश-समाज का कोई भला नहीं होने वाला, यह राष्ट्र को कायर बनाने वाला है। दिक़्क़त यह है कि पक्ष-विपक्ष दोनों पर निगाह दौड़ाएं तो गांधी की अहिंसा पर एकपक्षीय ज्ञान ही उभरता दिखाई देता है। एक बड़ा सवाल है कि गांधी की अहिंसा की जिस स्थापना ने आज़ादी की लड़ाई में पूरे देश को एक साथ खड़ा कर देने का जादुई कारनामा कर दिखाया, आखिर आज़ादी के बाद ऐसा क्या हुआ कि उसी स्थापना पर आयोजित हर विमर्श बिना शंका-कुशंका, किन्तु-परन्तु के अब पूरा नहीं होता? ज़रा गहरे उतरने की कोशिश करें तो इस सवाल के जवाब में यह ज़रूरी सवाल उभरता है कि गांधी के नाम पर बने संस्थानों से लेकर तमाम निकायों के हमारे सत्ता-प्रतिष्ठानों ने फूल-मालाएं चढ़ाने के अलावा सचमुच क्या गांधी की अहिंसा की राह का कोई काम शिद्दत से किया? सोचिए तो इस सवाल के जवाब से यह बात साफ़ होने लगती है कि आज़ादी के समय में बहादुरी की, शक्ति की प्रतीक बनी अहिंसा आज़ादी के बाद धीरे-धीरे क्यों कायरता का पर्याय बनती गई।

गांधी की अहिंसा की स्थापना को समझने में एक बुनियादी चूक हम लगातार करते रहे हैं, जिसे गहराई से समझने की ज़रूरत है। किसी भी परिस्थिति में हथियार या हाथ न उठाने को हमने अहिंसा का रूढ़ पर्याय मान लिया है और यही हमारी सबसे बड़ी भूल है। याद रखने की बात है कि महात्मा गांधी ने अपनी छोटी से छोटी स्थापना के सूत्र भी भारतीय सभ्यता-संस्कृति की विरासत से गुज़र कर तलाशे हैं। उन्होंने आज़ादी की लड़ाई को धार देने की राह की तलाश में पूरे हिन्दुस्तान की कठिन यात्रा की थी। दबे-कुचले, शोषित-पीड़ित, छोटे-बड़े हर किसी के हृदय में उतरने की कोशिश की थी। गांधी की यह भारत को समझने की, भारत की खोज की आयोजना थी। इसी के परिणामस्वरूप उन्होंने स्वदेशी, गोरक्षा, दलितोद्धार, नशाबन्दी जैसे कार्यक्रमों की ज़रूरत पहचानी थी। इन्हें चलाने के लिए और जनमानस को आज़ादी के महान् यज्ञ से जोड़ने के लिए भारतीयता की विरासत से ही उन्हें सत्य और अहिंसा के अमोघ अस्त्र मिले थे। गांधी की अहिंसा का मर्म समझने के लिए 4 अगस्त, 1920 को 'यंग इण्डिया' में लिखी उनकी यह पंक्ति ही पर्याप्त है - ''समूची प्रजाति के नपुंसक हो जाने का खतरा उठाने के मुक़ाबले मैं हिंसा को हज़ार गुना बेहतर मानता हूं।''

गांधी की अहिंसा वैसी नहीं है, जैसी कि आमतौर पर लोग समझते हैं। यह कोई आयातित या नक़ली स्थापना नहीं है, बल्कि सौ टका उस प्राचीन भारतीयता से निकली है, जिसके गर्भ से रामराज्य, विश्वगुरु, सर्वसमावेशी समाज और हर तरह से आत्मरक्षा में समर्थ भारत की तसवीर बनती है। गांधी भारत के लोगों को भारत की वह प्राचीन शक्ति याद दिलाते हैं, जिसे भूलने के नाते गुलामी के दिन देखने पड़े। गांधी यह बात अच्छी तरह जानते थे कि हर भारतीय मूल्य के मूल में एक मज़बूत आधार है। यहां शब्द और वर्ण तक बिना आधार के नहीं हैं। 'अहिंसा' शब्द को भी ध्यान से देखें तो इसका अर्थ पूरी आभा से प्रकट होने लगता

है। भीतर हिंसा का बल रखते हुए भी जब हिंसा को नकार दिया जाय, तो अ-हिंसा। हिंसा के आगे नकारात्मक 'अ' लगाकर 'अहिंसा' बनाया गया है। अहिंसा के गर्भ में हिंसा की क्षमता भरी हुई है, पर समझदारी यह कि हिंसा न की जाए। हिंसा की शक्ति रखते हुए हिंसा न करना मनुष्य धर्म है। हिंसा पर उतारू रहना पशुत्व है। गांधी के एक पक्ष को देखते रहने के आदी लोगों को गांधी को सर्वाङ्ग रूप में देखना चाहिए। सन् 1918 के एक पत्र में गांधीजी लिखते हैं - ''...एक राष्ट्र की हैसियत से हम मारने की सच्ची शक्ति खो बैठे हैं। यह तो स्पष्ट है कि जो मारने की शक्ति गंवा बैठा हो, वह अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। अहिंसा में ऊंचे प्रकार का त्याग समाया हुआ है। जो जनता कमज़ोर और कायर हो गई हो, वह त्याग का आचरण नहीं कर सकती। ठीक वैसे ही, जैसे चूहे के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि उसने बिल्ली को मारने की शक्ति का त्याग किया है। यह बात भयंकर भले लगे, पर बिलकुल सच है कि हमें अनवरत और सायास विचारपूर्वक इस शक्ति को पुन: प्राप्त करना होगा और उसे प्राप्त करने के बाद ही हम स्वयं इस शक्ति का सतत त्याग करके हिंसा की यातनाओं से दुनिया को मुक्त कर सकेंगे।'' गांधी के इस कथन को समझने के बाद बताने की ज़रूरत नहीं रह जाती कि आज़ादी के बाद भारत को किस तरह से अहिंसा की साधना करने की ज़रूरत थी।

गांधी अहिंसा की साधना में और आगे की बात कहते हैं - ''सच तो यह है कि हम लड़ाई की शक्ति खो बैठे हैं। हममें अपनी स्त्रियों की रक्षा करने तक की शक्ति नहीं है। धर्म के नाम पर हम कर्म (कर्तव्य) को भूल गए हैं।'' गांधी जब सैनिक भर्ती के काम में लगे तो उसके पीछे का कारण उन्होंने बताया - ''लोगों को लगता है कि मेरे इस (फ़ौजी भर्ती) काम से अहिंसा के ध्येय की मेरी उपासना को हानि पहुंचेगी। मैंने तो इसी ध्येय की उपासना के लिए यह काम हाथ में लिया है। ... शरीर बल की व्यर्थता हमारी समझ में आए, उस शक्ति का हम त्याग करें, उससे पहले हममें मारने की पूरी शक्ति होनी चाहिए।'' 11 अगस्त, 1920 को 'यङ्ग इण्डिया' में उनका लिखा यह भी ध्यान देने योग्य है - ''मेरा पक्का विश्वास है कि जहां केवल कायरता और हिंसा में से एक का चुनाव करना है, वहाँ मैं हिंसा को चुनूंगा....कायर की भांति, अपने अपमान का विवश साक्षी बनने की अपेक्षा भारत के लिए अपने सम्मान के रक्षार्थ शस्त्र उठा लेना मैं ज़्यादा अच्छा समझूंगा। ...लेकिन मेरा विश्वास है कि अहिंसा हिंसा से अत्यधिक श्रेष्ठ है, दण्ड की अपेक्षा क्षमा अधिक मानवोचित है। क्षमा योद्धा का आभूषण है....लेकिन संयम को क्षमा की संज्ञा तभी दी जा सकती है, जब संयमकर्ता में दण्ड देने की शक्ति हो; बेबस प्राणी द्वारा दी गई क्षमा का तो कोई अर्थ ही नहीं है...'' आगे चलकर 8 मई, 1941 को वे लिखते हैं - ''मेरी अहिंसा ऐसे लोगों के अस्तित्व को स्वीकारती है जो अहिंसा का बरताव नहीं कर सकते या नहीं करेंगे। अत: शस्त्र धारण करके उसका कारगर इस्तेमाल करेंगे। मैं हज़ारवीं बार यह दोहराना चाहूंगा कि अहिंसा दुर्बल का शस्त्र नहीं है, बल्कि सर्वाधिक बलवान का शस्त्र है।''

स्पष्ट है कि गांधी की अहिंसा वीरों का आभूषण है, कायरों का नहीं। गांधी की भाषा में कायर कभी अहिंसक नहीं हो सकता। कुछ वैसे ही जैसे कि किसी मच्छर-जैसी काया वाले व्यक्ति को कोई पहलवान थप्पड़ मार दे और मच्छर-जैसी काया वाला व्यक्ति कहे कि जाओ तुमको माफ़ किया तो इसका कोई अर्थ नहीं; लेकिन अगर किसी पहलवान को कोई कृशकाय व्यक्ति थप्पड़ मार दे और पहलवान कहे कि जाओ तुमको माफ़ किया तो बात समझ में आती है। क्षमा के लिए क्षमा का बल ज़रूरी है। त्याग तभी सम्भव है, जब त्याग के लायक़ पास में कुछ हो। इसी तरह अहिंसा, हिंसा की पूरी शक्ति होते हुए भी हिंसा न करने की समझदारी है। कम लोग ध्यान दे पाते हैं कि गांधी ने कभी कहा थ - ''प्राचीन हिन्दुस्तान के लोग युद्धकला जानते थे-उनमें हिंसा करने की शक्ति थी-किन्तु उन्होंने इस प्रवृत्ति को यथाशक्ति अधिक से अधिक कम किया और दुनिया को सिखाया कि मारने से न मारना ज़्यादा अच्छा है। आज तो मैं देखता हूं कि हर एक आदमी की इच्छा मारने की तो है, परन्तु बहुत से लोग वैसा करने से डरते हैं अथवा उसकी शक्ति ही नहीं रखते। परिणाम कुछ भी हो, किन्तु मेरा निश्चित विचार है कि मारने की शक्ति तो हिन्दुस्तान को फिर से प्राप्त कर ही लेनी चाहिए।...''

अहिंसा के पुजारी गांधी को शक्तिपूजा और वीरोपासना आती है। उनकी वीरोपासना के आगे नक़ली वीरोपासना की पोल खुल जाती है। 29 जुलाई, 1926 के 'यंग इण्डिया' में वे लिखते हैं - ''वीरोपासना एक उत्तम गुण है। किसी राष्ट्र या व्यक्ति के सामने कोई आदर्श न हो तो वह उन्नति नहीं कर सकता। वीर उसे प्रकाश देता है और उसका उत्साह बढ़ाता है, उससे भावना को कार्यरूप में परिणत करना सम्भव बनता है। वह हमको निराशा के दल-बल से उबारता है। उसके कृत्यों का स्मरण हममें असीम त्याग करने का बल भरता है।...'' गांधी की अहिंसा को समझने के लिए उनकी 'न्यूनतम हिंसा' को भी समझना ज़रूरी है। एक बार उनके आश्रम की कुटिया में सांप घुस आया। तमाम कोशिशें की गईं कि उसे सही-सलामत बाहर निकाल दिया जाए, पर वह ऐसी जगह पर था कि हर जतन बेकार गया। ऐसे में दु:खी मन से गांधी ने उसे मारने की इजाज़त दे दी और कहा - ''मुझे एक साँप की मृत्यु पर उतना दु:ख नहीं होगा, जितना कि उसके काटे हुए एक बच्चे की मृत्यु पर।'' उन्होंने 24 अक्टूबर, 1926 को कुछ इसी तरह से लिखा - ''...हमेशा प्राण लेना हिंसा नहीं है। या यों कहें कि अनेक अवसरों पर प्राण न लेने में अधिक हिंसा है।''

बात यह है कि गांधी की अहिंसा का मर्म ठीक ढंग से समझ लिया गया होता तो चीन, पाकिस्तान जैसे देशों के साथ समस्याएं कब की सुलझ चुकी होतीं। हम गांधी की शान्ति और अहिंसा का नाम ले-लेकर अब तक अहिंसक बतकही करते रहे हैं, जिसका दुश्मन देशों ने कोई वज़न नहीं लिया और वे हमें कमज़ोर मानते रहे। सच भी यही है, हम उतने मज़बूत नहीं बने हैं, जितना कि बनना चाहिए था। हमारी अहिंसा तब तक जगहंसाई से ज़्यादा और कुछ नहीं होगी, जब तक कि हम मज़बूती के शिखर पर नहीं होंगे। वास्तव में भारत को मज़बूत बनने की ज़रूरत है। मज़बूत भारत ही पूरी दुनिया को शान्ति का सन्देश मज़बूती से दे सकता है। धैर्य और संयम की यह मज़बूती गांधी के रास्ते पर चलते हुए अहिंसा की साधना से ही आ सकती है। समझने की बात है कि महात्मा गांधी मजबूरी का नहीं, मज़बूती का नाम है। गांधी की शक्तिपूजा शान्ति का सन्देशवाहक है। ●

गांधी अभिनंदन ग्रंथ

- देवर्षि कलानाथ शास्त्री

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन को भारतीय भाषाओं के साहित्य ने प्रारंभ से ही इतना विपुल औप सशक्त समर्थन दिया था जो पत्रकारिता द्वारा दिए गए संबल के समानन्तर और तुलनीय सिद्ध होता है। क्रान्तिकारी आन्दोलन की भावभूमि को समर्थन देने वाले साहित्य के साथ ही, बल्कि उसके युग की कालावधि अनन्तर, गांधीजी के राष्ट्रीयता अभियान, असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, सत्याग्रह और नरम-दलीय संघर्ष को प्रत्यक्ष-परोक्ष समर्थन देने वाला जितना साहित्य समस्त भारतीय भाषाओं में लिखा गया है, उसका आकलन और मूल्यांकन समय दृष्टि से तो हो ही नहीं पाया है। क्रान्तिचेता शहीदों द्वारा लिखे गए साहित्य (जैसे बिस्मिल की आत्मकथा, भगतसिंह की डायरी आदि) के अतिरिक्त क्रान्तिकारी आन्दोलनव को भावात्मक संबल देने वाला जो साहित्य मराठी, बांग्ला आदि भाषाओं में लिखा गया उसका झीना सा विवरण अलग-अलग प्रसंगों में साहित्य के इतिहासकारों ने अदीय दिया है।

बंकिम को 'आन्दमठ' बांगला में क्रान्ति के शंखनाद की गूंज फैलाने वाला साहित्य ही तो है। सुब्रह्मण्य भारती दूसरी धारा की राष्ट्रीय चेतना ते वाहक काव्य के प्रणेता रहे। यह दूसरी धारा बीसवीं सदी के तीसरे दशक से, गांधीजी के भारतीय राजनैतिक क्षितिज पर उभरने के बाद से, स्वतंत्रता प्राप्ति तक निरन्तर प्रवाहमान रही, विपुल से विपुलतर होती गई और एक व्यापक फलक पर विभिन्न विधाओं के माध्यम से देश के विभिन्न अंचलों के जनमानस को प्रेरित करती रही। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' और प्रसाद के नाटकों जैसे साहित्य से देश की प्राचीन गरिमामय निधि के गौरव-बोध कराने का जो अभियान प्रारंभ किया गया उसका पूरक रहा बालकृष्ण शर्मा नवीन, सोहनलाल द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि अगली पीढ़ी के कवियों का काव्य सर्जन। इस सबका तो कुछ आकलन साहित्य इतिहास के अनुसन्धाताओं ने किया है किन्तु भारतीय भाषाओं ने इस समूचे राष्ट्रीय महायज्ञ में एक-दूसरे के साहित्य से प्रेरित, अनुप्राणित और अनुसमर्थित होकर किस प्रकार का पृष्ठ-पोषण देश के स्वतंत्रता सेनानियों को दिया था इसका समग्र अनुशीलन अभी होना है। स्वतंज्ञता प्राप्ति के अनन्तर तो विभिन्न उपक्रमों के द्वारा सभी भारतीय भाषाओं को एक मंच पर लाकर भावनात्मक एकता तो मूर्त रूप में प्रतिफलित धिकाने वाले प्रयास हमारी जानकारी में आए हैं जैसे आकाशवाणी द्वारा गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर समस्त भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि कवियों की एक सर्वभाषा कविसभा आयोजन करना किन्तु स्वातंत्र्य संघर्ष के दौरान ऐसे सुनियोजित प्रयास कौन करता? सरकारी स्तर पर ऐसे किसी प्रयास की क्या उन दिनों कल्पना भी की जा सकती थी। फिर सभी भारतीय भाषाओं को अएक सूत्र में पिरोकर 'साहित्य सुमनों' की माला राष्ट्रदेवता को अर्पित करने की कोई अवधारणा उन दिनों किसी के मानस में अंकुरित हुई भी होगी या नहीं, ऐसी जिज्ञासा भी आज एक अकल्पनीय सा स्वप्न लगती है।

किन्तु यह जानकर आपको सन्तोषमिश्रित आश्चर्य ही होगा कि स्वतंत्रता से पूर्व भी समस्त भारतीय भाषाओं के पारस्परिक सहकार और समवेत सद्भाव से अनुप्राणित किसी प्रकार समन्वित मंच की अवधारणा उस समय के सुधी राष्ट्रचेताओं के मानस में सहज और स्वतः स्फुरित रूप में जागने लगी थी। इसके अनेक छुटपुट प्रमाण उपलब्ध होते हैं। उस समय सभी भारतीय भाषाओं को मंच देने वाली कोई संस्था आज आए दिन पैदा होने वाली अनुदानभोगी संस्थाओं की तरह गठित हुई थी या नहीं, यह तो हमें ज्ञात नहीं है। संविधान को ऐसी बिरादरी में शामिल किया जाए इस प्रकार के चिन्तन भी उभरे थे या नहीं यह भी ज्ञात नहीं किन्तु राष्ट्रीय महत्त्व के विशिष्ट प्रयासों में सभी भारतीय भाषाओं का स्वैच्छिक, सहज रूप से स्फुरित, सहकारात्मक समन्वय किस प्रकार होने लगा था इसका एक निदर्शन ही यह प्रमाणित करने का पर्याप्त होगा कि भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों को किस प्रकार की एकात्मता की भावना तेजोदीप्त और सद्भावबद्ध रखती थी।

जब स्वतंत्रता संग्राम तीव्रता के शिखर पर था, स्वाधीनता का निर्णायक दौर चल रहा था, सारा देश गांधीजी के नेतृत्व में एकजुट था, गांधीजी 75 वर्ष के हुए। आज की तरह उस समय न तो उस प्रकार के स्वर्ण जयन्ती, हीरक जयन्ती, कौस्तुभ जयन्ती समारोह या अमृत महोत्सव होते थे जैसे आज के सत्ताधारियों और विशिष्ट हस्तियों के होते

हैं, न गांधीजी जैसे निर्लिप्त और अर्थशुचि महापुरुष के लिए कोई ऐसे किसी तड़कभड़क वाले या खर्चीले उपक्रम की कल्पना भी कर सकता था। किसी तरह के अभिनन्दन के प्रस्ताव को ठप करने के लिए गांधीजी की एक डांट ही काफी थी।

उस समय राष्ट्रसेवा के प्रयोजन को सामने रखकर जन्मदिन (75वीं जन्मतिथि) के जो आयोजन हुए उनकी कड़ी में साहित्यकारों की ओर से यह आयोजन कस्तूरबा स्मारकनिधि के झंडे तले हुआ कि एक गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो। इसके समस्त भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि कवियों द्वारा स्वप्रेरणा से गांधीजी को श्रद्धासुमन या श्रद्धाजंलि अर्पित करने हेतु लिखी कविताएं प्रकाशित हो। श्री घनश्यामदास बिडला, बद्रीदास गोयनका, भागीरथ कानोड़िया आदि उद्योगपतियों और पं. अमरनाथ झा, पुरुषोत्तमदास टंडन आदि वरिष्ठ नागरिकों ने बढ़े हुए मूल्य में ग्रन्थ लेने के नाम पर जो धनराशि दी उससे यह अभिनन्दन ग्रन्थ छपा, इसकी विक्रय राशि महादेव भाई स्मारक कोष में गई। ग्रन्थ जितना सादगीपूर्ण था उतना ही भव्य था यह इसकी आश्चर्यजनक विशेषता थी। इसका संपादन किया वरिष्ठ कवि पं. सोहनलाल द्विवेदी ने जिनकी कालजयी कविता ''चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर'' इसमें छपी थी। इसकी भूमिका सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने लिखी, अमरनाथ झा, टंडन जी, संपूर्णानन्दजी, गोपीनाथ बालदोलाई आदि ने संक्षिप्त शुभकामनाएं दीं। नन्दलाल बोस, रविशंकर रावत, कनु देसाई, महादेवी वर्मा और कनु गांधी जैसे कलाकारों ने कविताओं के साथ जाने वाले चित्र बनाए। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी, उडिया, मैथिली, राजस्थानी, सिन्धी, तमिल, तेलगु, मलायलम, कन्नड, बनारसी, चीनी और अंग्रेजी इन सत्रह भाषाओं के शिखरस्थ और विश्वप्रसिद्ध कवियों की गांधीजी को समर्पित कविताएं हिन्दी अनुवाद सहित इसमें छपीं जिनमें से कुछ कताएं आज अमर हो गई हैं। इस प्रकार यह हिन्दी का प्रकाशन माना गया। गांधीजी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर 16 अक्टूबर, 1944 का लिखा अपना भावभीना आशीर्वाद इसे दिया जो प्रथम पृष्ठ पर छपा।

इसमें विभिन्न भाषाओं के जिन कवियों ने बागीदारी निभाई उनमें कैसे कैसे कालजयी विराट् व्यक्तित्व हैं यह देखकर रोमांच हो आता है। संस्कृत को सबसे पहले रखा गया, डॉ. राधाकृष्णन् ने कविताएं संकलित कीं जिनमें कलकत्ता (शान्ति निकेतन) के विधुशेखर भट्टाचार्य आदि काशी के महादेव शास्त्री आदि तो थे ही, राजस्थान (जयपुर) के भट्टामथुरानाथ शास्त्री भी थे। हिन्दी में जगन्नाथदास रत्नाकर, सत्यनारायण कविरत्न, मैथिलीशरण गुप्त, पन्त, महादेवी, रामकुमार वर्मा, दिनकर, बर्धन नेपाली, नवीन, रामनरेश त्रिपाठी आदि वे सभी कवि थे जो उस समय अग्रणी पंक्ति में थे और जीवित थे। ऐसे 50 हिन्दी कवि, अकबर, सीभाव गोपीनाथ, अमन सागर निजामी आदि 15 उर्दू शायर, रवीन्द्रनाथ, सत्येन्द्रनाथ दत्त, बुद्धदेव बसु आदि 12 बंगला कवि, झवेरचन्द मेधाणी, उमाशंकर जोशी आदि 11 गुजराती, 12 मराठी के इस प्रकार सभी भारतीय भाषाओं के प्रमुख कवि इसमें शामिल थे। रवि ठाकुर, सरोजिनी नायडू, हुमायूं कबीर, हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय जैसे 11 अंग्रेजी के कवि, सुब्रह्मण्य भारती जैसे तमिल कवि, वल्लतोल जैसे मलयालम के कवि, सभी का प्रतिनिधित्व इसमें था। भारतीय भाषाओं की सारी कविताएं मूलतः देवनागरी में छपी, फिर वरिष्ठ विद्वानों का किया उनका हिन्दी अनुवाद छपा।

इस विराट् उपक्रम में जिस प्रकार सारी भारतीय भाषाएं अपने आप सहज और स्वतः स्पुरित प्रेरणा से एक मंच पर आ गई उसे देखते ही यह आकलन तत्काल हो जाता है कि किस एकजुटता की उत्कट प्रेरणा ने इन्हें अनुप्राणित कर रखा था। संस्कृत जैसी प्राचीन और क्लासिकल भाषा ने जिस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम का सर्वात्मना समर्थन किया उसका पूर्ण विवरण पढ़ें तो बहुतों को विश्वास नहीं होगा कि संस्कृत का पंडित किस अटूट निष्ठा से इस राष्ट्रीय यज्ञ में बढ़-चढ़ कर आहुति देने को ललक रहा था। ●

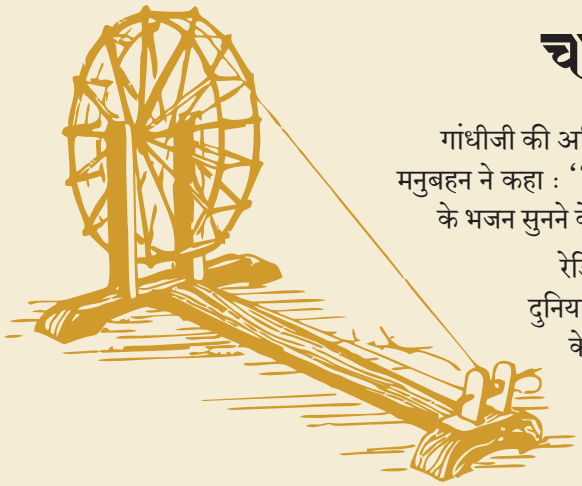

चरखे का संगीत श्रेष्ठ

गांधीजी की अन्तिम जयन्ती के दिन रेडियो से सुन्दर कार्यक्रम प्रसारित करने का आयोजन था। मनुबहन ने कहा : ''बापू, आज तो आप रेडियो सुनिए।'' वे बोले : ''उसमें क्या सुनना, ये रेडियो के भजन सुनने के बजाय चरखे का संगीत न सुनें?''

रेडियो समाचार के बारे में एक बार गांधीजी ने कहा था : ''आधे घण्टे के अन्दर दुनिया के सभी हिस्सों से खबरें प्राप्त करने की मुझमें कोई उत्कण्ठा नहीं। इससे मनुष्य के पास स्वयं विचार करने का समय बहुत कम रह जाता है। मुझे अपने निकट-से-निकट वातावरण में - उसके बनाने में दिलचस्पी लेनी चाहिए और उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिए।

राजस्थान में गांधी

- नलिन चौहान

अंग्रेज भारत में अजमेर-मेरवाड़ा को छोड़कर उस समय का सारा राजपूताना देशी राजाओं के अधीन था। जबकि देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत मोहनदास कर्मचंद गांधी मानना था कि राजा-रजवाड़े तो अंग्रेजी हुकूमत के सहारे टिके हुए हैं, अत: अंग्रेजों की गुलामी से भारत को मुक्त करने में ही सारी ताकत लगाई जाए। यही कारण था कि वे देशी राज्यों में गए ही नहीं। ऐसे में, गांधी अपने पूरे जीवन में केवल गिनती के तीन बार तब के राजपूताना (आज का राजस्थान) और उसमें भी केवल अजमेर ही आए।

भारत आने के पश्चात् गांधी पहली बार वर्ष 1921 में अजमेर आएं। उनकी इस यात्रा के विवरण की पुष्टि गांधी के वलजी देसाई को दिनांक 2 नवंबर, 1921 को लिखे एक पत्र से मिलती है। गांधी अपने पत्र में देसाई को लिखते हैं, कृपया प्रेस को यंग इंडिया के प्रूफ केवल इस बार के लिए राजस्थान सेवा संघ, अजमेर के पते पर भेजने का अनुरोध करे। उन्हें यह सामग्री बुधवार शाम या गुरुवार सुबह जल्दी डाक में देनी चाहिए, जिससे प्रूफ की सामग्री सुबह की डाक से अजमेर पहुंच सकें। अजमेर, 3 नवंबर, 1921 के डाक ठप्पे (पोस्टमार्क) वाला यह पत्र गांधी ने दिल्ली जाते समय लिखा था। इससे पता चलता है कि दिल्ली से ही 11 नवंबर, 1921 (बुधवार) को अजमेर आएं। गांधी सुबह पुरानी मंडी की संकरी गलियों में स्थित नेशनल स्कूल और फिर ख्वाजा गरीब नवाज की दरगाह गए। जहां उन्होंने दरगाह पर एक चादर पेश की।

26-30 दिसंबर, 1920 को नागपुर अधिवेशन में सी. विजयाराघवाचारी की अध्यक्षता में गांधी के अहिंसा-असहयोग के माध्यम से पूर्ण स्वराज की प्राप्ति का प्रस्ताव स्वीकार हो गया था। इसकी गूंज देश भर में थी। फिर ऐसे में भला राजस्थान अछूता कैसे रहता!

उल्लेखनीय है कि नागपुर अधिवेशन में ही गांधी के विधान में ब्रिटिश भारत से बढ़ाकर देशी राज्यों सहित समूचे भारत के लिए स्वराज्य तय कराया, रियासती जनता को प्रतिनिधित्व दिलवाया और अजमेर मेरवाड़ा, राजपूताना और मध्यभारत को अलग प्रान्तीय इकाई बनवाया। तब राजस्थान और मध्य भारत राजनीतिक दृष्टि से एक ही इकाई माने जाते थे और अजमेर इसका केन्द्र था।

इससे पहले, विजय सिंह पथिक की अध्यक्षता में रामनारायण चौधरी और हरिभाई किंकर ने मिलकर वर्धा में वर्ष 1919 में राजस्थान सेवा संघ की स्थापना की थी। जिसका उद्देश्य राजस्थान की विभिन्न रियासतों में चलने वाले आन्दोलनों को गति देना था। वर्ष 1920 में राजस्थान सेवा संघ का कार्यालय अजमेर स्थानांतरित हो गया। अजमेर में राजस्थान सेवा संघ कार्यकर्ताओं ने असहयोग आंदोलन में बढ़ चढ़ कर भाग लिया था।

राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि की गांधी शताब्दी में प्रकाशित (1969) ''गांधीजी और राजस्थान'' शीर्षक वाली पुस्तक के अनुसार, वह कुल तीन बार अजमेर आएं। पहली बार सन् 1921 में आये जब मौलाना मोहम्मद अली भी साथ थे। गांधीजी के प्रयत्न से ख्वाजा साहब की दरगाह में खिलाफत वालों से समझौता हुआ। दरगाह में

मौलाना मोहम्मद अली और गांधीजी के महत्त्वपूर्ण भाषण हुए और उस समय अजमेर में हिन्दू-मुस्लिम इत्तिहाद का ऐसा वातावरण बना कि देखते ही बनता था। गांधीजी उस समय गौरीशंकर भार्गव के यहां ठहरे थे।

8 दिसंबर, 1921 को यंग इंडिया में गांधी ने नैराश्य भाव नहीं के शीर्षक वाली टिप्पणी में लिखा, पंजाब में क्या होगा जहां लालाजी (लाजपत रॉय) को कैद किया जाना है और असम में जहां (तरुण राम) फुकन और (गोपीनाथ) बोरदोलोई को पहले ही दोषी ठहराया जा चुका है और इसी तरह अजमेर में भी, जहां खिलाफत और कमेटी दोनों के अध्यक्ष मौलाना मुउइद्दीन को कैद कर लिया गया है? चिंतित जिज्ञासुओं का ऐसा ही सवाल था। मेरा जवाब था कि इन प्रमुखों के उत्पीड़न से आंदोलन को गति मिलेगी। इन व्यक्तियों को मिले कारावासों के परिणामस्वरूप, मुझे इन प्रांतों में अधिक संयम और दायित्व की भावना की अपेक्षा है। मुझे काती हुई खादी के अधिक उत्पादन, छात्रों और वकीलों में व्यापक जागरूकता की उम्मीद है। अगर हम अपने स्वशासन के लिए उपयुक्त है तो इन नेताओं की बहादुरी सर्वव्यापक प्रभाव होना चाहिए।

दूसरी बार गांधी, वर्ष 1922 में दो दिनों के लिए अजमेर आए। वे अहमदाबाद से 8 मार्च की शाम को रेलयात्रा करते हुए अगले दिन (9 मार्च) अजमेर पहुंचे। गांधी बम्बई के राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता मियां मुहम्मद हाजी जन मुहम्मद छोटानी के निमंत्रण पर मुस्लिम उलेमाओं के सम्मेलन में भाग लेने आए थे। यहां उन्होंने खिलाफत को लेकर अपने विचार रखें। अनेक अनौपचारिक रिकॉर्डों के अनुसार, गांधी ने ऑल इंडिया खिलाफत कांफ्रेंस नामक उलेमा संस्था को संबोधित करने के लिए अजमेर का दौरा किया। इस तथ्य का उल्लेख वर्ष 1952 में प्रकाशित मोइनुल अरवाह में है।

बारडोली में चौरी चौरा में जनता के पुलिस थाना जला दिये जाने और कुछ सिपाहियों के मार दिए जाने के कारण असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया था। गांधी पर गिरफ्तारी का वारंट निकल चुका था, उस समय वे अजमेर में ही मौजूद थे मगर यहां की सरकार उन्हें गिरफ्तार करने की जिम्मेदारी लेने का साहस नहीं किया। वे गुजरात की सीमा में पहुंच कर पकड़े गए। उल्लेखनीय है कि अहमदाबाद के पुलिस अधीक्षक ने 6 मार्च को ही गांधी के नाम गिरफ्तारी का वारंट जारी करके

> **"राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि की गांधी शताब्दी में प्रकाशित (1969) ''गांधीजी और राजस्थान'' शीर्षक वाली पुस्तक के अनुसार, वह कुल तीन बार अजमेर आएं। पहली बार सन् 1921 में आये जब मौलाना मोहम्मद अली भी साथ थे। गांधीजी के प्रयत्न से ख्वाजा साहब की दरगाह में खिलाफत वालों से समझौता हुआ।"**

फाइल को असिस्टेंट मजिस्ट्रेट ब्राउन के पास भेज दिया था। गांधी के सूरत और अजमेर में होने की संभावना के कारण इन दोनों स्थानों के पुलिस अधीक्षकों को भी वारंट भेज दिए गए थे। जबकि गांधी 9 मार्च की रात को अजमेर से वापिस अहमदाबाद लौटे। अगले ही दिन (10 मार्च) अहमदाबाद पहुंचते ही अंग्रेज सरकार ने गांधी को गिरफ्तार करके साबरमती जेल में कैद कर दिया। गांधी ने उसी दिन मगनलाल गांधी को भेजे एक पत्र में अपने गिरफ्तार होने की बात लिखी थी। ऐसे में, उनकी गिरफ्तारी की आशंका सच सिद्ध हुई।

लखनऊ से आए मौलवी अब्दुल बारी ने अजमेर में आयोजित एक सभा में जीभ पर नियंत्रण खोकर ऐसा भाषण दिया जिससे जनता में यह संदेश गया कि चूंकि अहिंसक आंदोलन विफल रहा है अत: हिंसा का सहारा लिया जायेगा। गांधीजी ने संदेह उत्पन्न करने वाला बयान देने के लिए मौलवी अब्दुल बारी की निंदा की। महात्मा गांधी के समक्ष पहली बार अहिंसात्मक और हिंसात्मक आंदोलन पर खुलकर बहस हुई जिसमें एक तरफ मौलवी अब्दुल बारी तथा हसरत मोहानी थे जबकि दूसरी तरफ गांधीजी और बाकी के सारे उलेमा थे। इस बहस में गांधीजी जीत गए। इसके बाद गांधीजी ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर गए जहां गांधीजी का भारी स्वागत किया गया।

गांधी ने 9 मार्च, 1922 को अजमेर में अब्दुल बारी से भेंट करने के बाद ही जनता के नाम अपना संदेश जारी करने के लिए सौंपा दिया था। 10 मार्च को अहमदाबाद में गांधी की गिरफ्तारी के बाद अब्दुल बारी ने 15 मार्च को लखनऊ से जनता के नाम गांधी का संदेश समाचार पत्रों को जारी किया। इस संदेश में चार मुख्य बातें थीं। पहला, उनकी गिरफ्तारी पर कोई प्रदर्शन या हड़ताल नहीं होनी चाहिए। दूसरा, सार्वजनिक स्तर पर सविनय अवज्ञा आंदोलन नहीं किया जाएगा और अहिंसा का सख्ती से पालन होगा। तीसरा, अस्पृश्यता और नशे को दूर करने पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए और खद्दर के उपयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। और चौथा, उनकी गिरफ्तारी के बाद, जनता को नेतृत्व के लिए हकीम अजमल खान की बात माननी चाहिए।

इस विषय में गुजराती 'नवजीवन' में 19 मार्च, 1922 को दिए एक साक्षात्कार में गांधी ने कहा, ''अजमेर में एक बड़ा काम पूरा किया

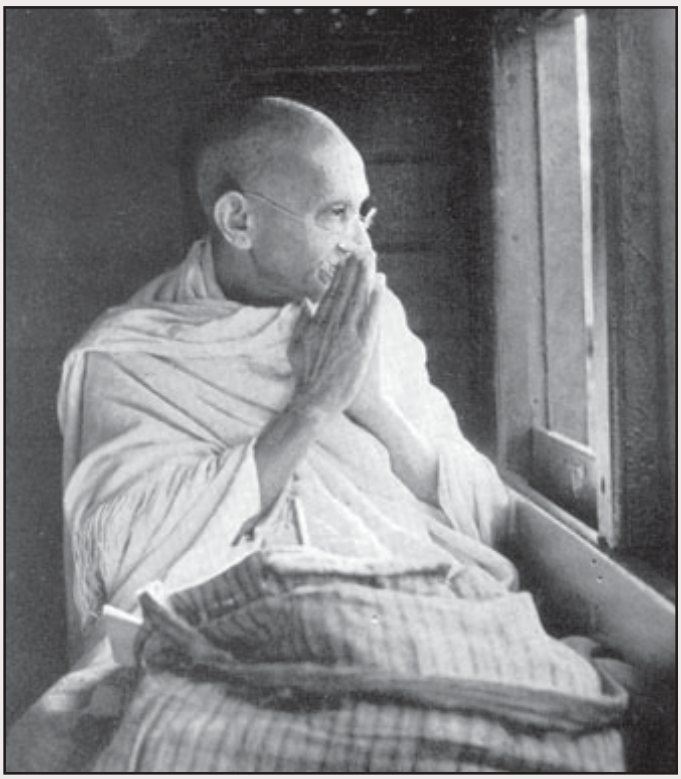

गया। मौलाना अब्दुल बारी ने एक तगड़ा भाषण दिया, जिसने वहां जमा हजारों मुसलमानों में पूरी तरह से जोश भर दिया। उन्होंने मुझसे वादा किया है कि वे हिंसा की जरा-सी भी तरफदारी न करके बाधाएं नहीं पैदा करेंगे। सो, अब मैं चिंता से मुक्त हूं।'' उल्लेखनीय है कि अब्दुल बारी (1838-1926) और हसरत मोहानी (1875-1951) खिलाफत आंदोलन में सक्रिय राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता थे।

फिर गांधी तीसरी और अंतिम बार, जुलाई 1934 में अजमेर आए। उस वर्ष वे पूरे देश में नौ महीने की हरिजन यात्रा पर निकले थे। गांधी, 3 जुलाई 1934 को भावनगर (काठियावाड़) से रेलगाड़ी से रवाना होकर अगली रात (4 जुलाई) को अजमेर पहुंचे। इस रेल यात्रा में उन्होंने मेहसाणा और पालनपुर स्टेशनों पर भी जनता को संबोधित किया। राजपूताना हरिजन सेवक संघ के निमंत्रण पर अजमेर यात्रा पर आए गांधी कचहरी रोड स्थित एक कोठी पर ठहरे। गांधी की इस यात्रा के प्रबन्धन के लिए एक स्वागत समिति बनी। इस समिति के अध्यक्ष दीवान बहादुर हरविलास शारदा, और रामनारायण चौधरी तथा कृष्णगोपाल गर्ग मंत्री थे।

अजमेर में 5 जुलाई, 1934 की सुबह गांधी महिलाओं की एक सभा में गए। उन्होंने वहां पर उपस्थित स्त्रियों को संबोधित करते हुए कहा, अस्पृश्यता प्रेम और दया की भावना के विपरीत है, इसलिए इस पाप का अन्त अवश्य होना चाहिए। एक ओर तो हम प्रेम भाव का दावा करें और दूसरी ओर अपने ही लाखों करोड़ों भाईयों को गन्दी से गन्दी जगह में रखें, उन्हें कुंओं से पानी न भरने दें, पशुओं के गन्दले हौजों से उन्हें पानी पीने के लिए मजबूर करें और अगर सार्वजनिक कुओं पर ये बेचारे अपना हक समझ कर पानी भरने जाएं तो उन पर आक्रमण कर बैठें। यह दोनों बातें भला एक साथ कैसे हो सकती है? इसी प्रकार जब सवर्णों के गन्दे बच्चे खासी अच्छी तादाद में स्कूल-मदरसों में जा सकते हैं, तब हरिजन बच्चों को, उनके सफाई से रहते हुए भी सार्वजनिक स्कूलों में अलग रखना कहां तक उचित है, कहां तक न्याय संगत है? दूसरों को अपने से नीच समझना एक प्रकार का अभिमान है जिसे तुलसीदास जी ने सब पापों का मूल कहा है पाप मूल का (अभिमान) और अभिमान तो नाशकारी ही है।

गांधी राजपूताना के हरिजन सेवकों से भी मिले। हरिजन सेवकों ने बेगार प्रथा की शिकायत की। फिर गांधी ने राजस्थान चरखा संघ के कार्यकर्ताओं से भेंट की। इन कार्यकर्ताओं ने गांधी को खादी प्रचार के साथ-साथ हरिजन सेवा कार्य की जानकारी दी। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1926 में अमरसर (जयपुर) के खादी केन्द्र में एक हरिजन पाठशाला स्थापित की गई थी। पाठशाला का यह प्रयोग इतना सफल रहा कि दूसरे वर्गों के बच्चों ने भी दाखिला लिया और उसमें बिना किसी भेदभाव के पढ़ने लगे।

इस अवसर पर उस दिन गांधी ने हरिजन सेवकों को भी संबोधित किया। उन्होंने कहा, मैं चाहता हूं कि पूरी सच्चाई और ईमानदारी से हमारे सेवक हरिजनों की सेवा करें। सेवा का फल मेवा ही है। स्वार्थ या किसी राजनीतिक उद्देश्य का तो इसमें लेश भी नहीं होना चाहिए। हमारा मुख्य लक्ष्य तो हिन्दू धर्म की शुद्धि है। इस आंदोलन में तो केवल उन्हीं को भाग लेना चाहिए जो सत्य और अहिंसा का सिद्धान्त स्वीकार कर चुके हों, और जिनका यह विश्वास हो कि हरिजन हिन्दू धर्म का अविच्छेद अंग हैं।

तब गांधी अजमेर की हरिजन बस्तियों में भी गए। उन्होंने पहले दिल्ली दरवाजे की हरिजन बस्ती, तारागढ़ के ढाल में बसी मलूसर की हरिजन बस्ती सहित रैगरों के मुहल्ले को देखा। इस अवसर पर आनासागर की पाल पर एक सार्वजनिक सभा हुई। राजपूताना हरिजन सेवक संघ की ओर से गांधी को एक मानपत्र दिया गया। जिसमें राजपूताना के हरिजनों की तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक स्थिति का वर्णन था।

बाबा लालनाथ ने गांधी से मिलकर अजमेर की सभा में बोलने का अनुरोध किया। गांधी ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए उनसे सभा में गांधी के पहुंचने के बाद आने की बात कही। जबकि दुर्भाग्यवश बाबा लालनाथ अपने दल, जो काले झण्डे लिए हुआ था, के साथ गांधी के आने से पहले ही सभास्थल पर पहुंच गए। ऐसे में, वहां उपस्थित जनता से उनकी मुठभेड़ हुई। एक व्यक्ति ने बाबा लालनाथ के सिर पर लाठी मारी, जिससे खून बहने लगा। गांधी को इस घटना का पता चलने पर उन्होंने बाबा लालनाथ को बुलाकर मंच पर अपने पास बिठाया और उनकी चोट पर पट्टी बांधी।

इस पर गांधी ने अपने भाषण में कहा, ''काली झण्डी वालों को साथ लेकर पंडित लालनाथ को सभा में आने और हमारे आन्दोलन के विरुद्ध प्रदर्शन का पूरा अधिकार था। जिस किसी ने उन पर हमला किया है, उसने बहुत बड़ी अशिष्टता की है। काली झण्डियां सुधारकों का क्या

बिगाड़ सकती थीं, किन्तु पंडित लालनाथ पर जो यह वार हुआ है उससे निश्चय ही हरिजन कार्य को क्षति पहुंची है। हिंसापूर्ण तरीकों से अस्पृश्यता का यह काला दाग कदापि नहीं मिट सकता। मैं तो राजनीतिक वातावरण में भी हिंसा को बर्दाशत नहीं कर सकता, फिर यह तो धर्म क्षेत्र है।'' गांधी ने इसके बाद लालनाथ को सभा को संबोधित करने का अनुरोध किया। वह दो ही मिनट बोले थे कि लोग ''शेम शेम'' की आवाज पुकारने लगे और उनका बोलना मुश्किल हो गया।

ऐसा होने पर गांधी ने जनसमुदाय को डांटते हुए कहा, यह तो आप लोगों की बहुत बड़ी अशिष्टता है। एक तो पहले ही उन पर वार करके अविनय का काम किया गया और अब उनकी बात सुनने से इनकार करके आप यह दूसरी अशिष्टता कर रहे हैं। अगर आप पंडित लालनाथ की बात सुनने को तैयार नहीं, तो इसका यह मतलब हुआ कि आप मेरी भी बात सुनना नहीं चाहते। हरिजन सेवा एक धार्मिक प्रवृति है। इसमें असहिष्णुता का हिंसा के लिए स्थान नहीं है। मान लीजिए कि कोई मुझ पर ही घात हमला कर बैठे, तो क्या आप आपे से बाहर हो जाएंगे और पागल की तरह हिंसा पर उतारू हो जाएंगे? ऐसा है तो मैंने व्यर्थ ही आपके आगे अपना जीवन बिताया। ऐसा करके तो आप विशाल आन्दोलन को ही खत्म कर देंगे। पर यदि आपने संयम से काम किया तो मेरे शरीर के अन्त के साथ साथ इस अस्पृश्यता का अन्त भी निश्चित है।

इस पर लोग चुप हो गए और उन्होंने लालनाथजी का भाषण शांति पूर्वक सुना। अजमेर सभा में गांधी को मानपत्र सहित एक थैली भी भेंट की गई। पूरे दिन में गांधी को अजमेर में हरिजन कोष के लिए कुल 4942 रुपए प्राप्त हुए। इस प्रवास में गांधी अजमेर के पुराने कांग्रेसी नेता अर्जुनलाल जी सेठी और अजमेर में अपने पुराने मेजबान गौरीशंकर भार्गव के घर भी गए।

6 जुलाई, 1934 की भोर को गांधी मोटर से अजमेर से ब्यावर के लिए निकल गए। वे ब्यावर में चम्पालाल रामेश्वर क्लब की इमारत में ठहरे। यहां गांधी ने ब्यावर में ब्राह्मण समाज में पहला विधवा विवाह करने वाले नवदम्पति को आशीर्वाद भी दिया। ब्यावर के मिशन ग्राउण्ड में गांधी ने एक सार्वजनिक सभा को संबोधित किया।

गांधी को ब्यावर में हरिजन कोष के लिए 1152 रुपए मिले। यहां भी गांधी शहर की हरिजन बस्तियों में गए। फिर गांधी ब्यावर से रेल मार्ग से मारवाड़ जक्शन होते हुए कराची के लिए निकल गए। वे रेल यात्रा के दौरान भी जनता से मिलते गए। यहां तक कि उन्हें मारवाड़ जंक्शन, लूणी और गडरा रोड स्थानों से हरिजन कोष के लिए 992 रुपए प्राप्त हुए।

गांधी ने 10 जुलाई 1934 को कराची में अजमेर की हिंसक घटना के प्रायश्चित स्वरूप 7 अगस्त से 14 अगस्त, 1934 तक वर्धा में अनशन की घोषणा की। गांधी ने कहा कि काफी हृदय मंथन करने के बाद वह इस निश्चय पर पहुंचे हैं और उनका यह व्रत उन सब लोगों को, जो इस आन्दोलन में हैं या आगे शामिल होंगे, यह चेतावनी है कि उन्हें मनसा, वाचा, कर्मणा, असत्य तथा हिंसा से अलग रह कर ही शुद्ध हृदय से उसमें भाग लेना चाहिए।

वर्धा में उपवास की समाप्ति के बाद, गांधी ने 'हरिजन' (17 अगस्त 1934) में लिखा, ''इस उपवास का उद्देश्य कहने के लिए तो अजमेर में हरिजन प्रवृति समर्थकों द्वारा स्वामी लालनाथ और उनके साथियों को जो चोट पहुंचाई गई थी, उसके लिए प्रायश्चित करना था, पर असल में उसका उद्देश्य इस आन्दोलन से सहानुभूति रखने वालों तथा कार्यकत्ताओं से यह अनुरोध करना था कि वे अपने विरोधियों के साथ चौकस और शुद्ध व्यवहार करें। विरोधियों के प्रति अधिक से अधिक सौजन्य दिखाना आन्दोलन के हक में सबसे सुन्दर प्रचार कार्य होगा। कार्यकर्ताओं को इस सत्य का ज्ञान कराने के लिए यह उपवास किया गया था कि हम अपने विरोधियों को प्रेम के बल ही जीत सकते हैं, घृणा से कभी नहीं। ●

- **11 नवंबर, 1921** : एक दिन के लिए दिल्ली से अजमेर आएं।
- **8 मार्च, 1922** : अहमदाबाद से शाम को रेल से अजमेर के लिए प्रस्थान किया।
- **9 मार्च, 1922** : अजमेर में मुस्लिम उलेमाओं के एक सम्मेलन में भाग लिया। फिर अजमेर से अहमदाबाद के लिए रवाना हुए।
- **10 मार्च, 1922** : गांधीजी दोपहर में अजमेर से अहमदाबाद पहुंचे। उन्हें रात 10 बजे गिरफ्तार करके साबरमती जेल ले जाया गया।
- **20 मार्च, 1922** : गांधी को आधी रात को विशेष ट्रेन से साबरमती जेल से येरवडा जेल स्थानांतरित किया गया।
- **21 मार्च, 1922** : गांधी शाम को 5.30 बजे यरवदा जेल पहुंचे।
- **3 जुलाई, 1934** : भावनगर से रेल में अजमेर के लिए रवाना हुए।
- **4 जुलाई, 1934** : रेल से अजमेर जाते हुए रास्ते में मेहसाणा और पालनपुर स्टेशनों पर अपनी बात कही।
- **5 जुलाई, 1934** : अजमेर में, महिलाओं की एक बैठक में भाग लिया और अपनी बात रखी। हरिजन सेवकों से मिले और एक जनसभा को संबोधित किया।
- **6 जुलाई, 1934** : भोर में कार से ब्यावर गए। हरिजन बस्तियों का दौरा किया। जैन साधुओं से वार्ता की। फिर रेल से कराची के लिए रवाना हुए।

महात्मा गांधी का जीवन

- डॉ. राकेश कुमार

ऐसे महापुरूष वसुधा पर कभी-कभी ही आते हैं जो मानवता के लिए सभी कुछ ही अपना दे जाते हैं। राष्ट्रपिता 'महात्मा गांधी' भारतीय जनमानस और भारतीय संस्कृति के ऐसे ही युगचेता पुरुष हैं भारतीय जनमानस की साधना का जो विराट रूप जो वेदों, धर्मग्रंथों, गीता और पुराणों से निश्चित होता है वह 'महात्मा गांधी' के रूप में निकालकर हमारे सामने आता है। वस्तुत: महात्मा गांधी वैश्विक परिदृश्य में भारत की अस्मिता और गौरव का साक्षात मूर्तिमान स्वरूप हैं।

जब भी हम भारतवर्ष या भारतीय संस्कृति, सभ्यता या किसी भी क्षेत्र की बात करें तो महात्मा गांधी वैश्विक चिंतन के सजीव प्रतिकृति बनकर हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं भारतवर्ष का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें गांधी विद्यमान ना हो। सार रूप में कहा जाए तो भारतवर्ष का जन-जन और कण-कण शांति और अहिंसा के अग्रदूत महात्मा गांधी की अकथ कहानी कहता प्रतीत होता है।

विश्व शांति से अभिभूषित अधिकांश विद्वान उन्हें अपना शांतिगुरु मानते हैं। बराक ओबामा उन्हें अपना सबसे बड़ा हीरो और नेल्सन मंडेला उन्हें महान गुरु बताते हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक जेम्स डब्ल्यू डग्लस लिखते हैं - हिंसा से रक्त रंजित दुनिया की मुक्ति इसी साहस से संभव हुई और यही उनके महात्मा होने की सबसे बड़ी कसौटी भी है।

'मोहन से महात्मा' बनने की यह विरल कहानी संसार में अपना एक अलग ही वैचारिक आधार और स्थान रखती है

जीवन में सत्य की खोज और सत्य के प्रति उनकी गहरी आस्था, गांधी जी के मानवीय मूल्यों को एक ऐसे रूप में परिभाषित करते हैं जहां सत्य अहिंसा परोपकार सद्भावना बंधुत्व प्रेम अपने विरल व विलक्षण रूप में दिखलाई पड़ते हैं। गांधीजी के आरंभिक जीवन में एक नीति का उन पर बहुत प्रभाव पड़ा जिसका अर्थ इस रूप में है-

जो हमें पानी पिलाएं उसे हम अच्छा भोजन कराएं। जो आकर हमारे सामने सिर नवाए उसे हम उमंग से दंडवत प्रणाम करें। जो हमारे लिए एक पैसा खर्च करें उसका हम मोहरों की कीमत का काम करें। जो हमारे प्राण बचावे उसका दुख दूर करने के लिए हम अपने प्राण तक न्यौछावर करते दें। जो हमारा उपकार करें उसका तो हमें मन वचन और कर्म से दस गुना उपकार करना चाहिए। लेकिन जग में सच्चा और सार्थक जीना उसी का है जो अपकार करने वाले के प्रति भी उपकार करता है।

> "संयुक्त राष्ट्र संघ में महात्मा गांधी के विचारों को वरीयता दी जाती है तथा उनका शांति और अहिंसा का पथ अपनाया जाता है, किसी भी राष्ट्र के लिए यह सबसे बड़े सम्मान एवं स्वाभिमान की बात है।"

गांधीजी की यही सीख उपकार भावना उन्हें वैश्विक परिदृश्य में सबसे अलग खड़ा करती है। सत्यनिष्ठ उनकी भावना, अहिंसा की पालना, सत्याग्रह का आग्रह, सविनय अवज्ञा ऐसे जीवन मंत्र रहे जिन्होंने मोहनदास को महात्मा और महात्मा से राष्ट्रपिता बनने और बनाने में आकार दिया।

7 जून, 1893 कि उस रात जिसमें गांधीजी को मैरिट्जबर्ग स्टेशन पर सिर्फ इसलिए फर्स्ट क्लास डिब्बे से नीचे फेंक दिया गया क्योंकि उसमें केवल गोरे लोग यात्रा कर सकते। वह रात गांधी जी के उदय का एक नया सवेरा लिखती है जहाँ सविनय अवज्ञ, सत्याग्रह, अहिंसा की किरणें अपना प्रकाश फैलाती हैं।

गांधीजी लघु मानव के प्रति गहरी आस्था रखते हैं उनके दुख-दर्द को समझते हैं। भारत में जब प्लेग चरम पर था तो उन्होंने घर घर जाकर गरीब बस्तियों में न केवल अपने हाथों से सफाई की अपितु स्वच्छता का पाठ भी पढ़ाया।

चंपारण का नील आंदोलन हो या किसानों की समस्याओं व अधिकारों की बात, गांधीजी सदैव ऐसे ही सरोकारों से जीवन भर जुड़े रहे। उनकी संवेदनशीलता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि गरीबों की फटेहाल जिंदगी को देखकर उन्होंने जिंदगीभर के लिए सूट-बूट एवं पगड़ी का इसलिए परित्याग कर दिया क्योंकि आम व्यक्ति बने बिना आम व्यक्ति का दुख दर्द, उसकी संवेदना नहीं समझी जा सकती।

गांधीजी कहते हैं, 'मैंने इस तर्क के पीछे की सच्चाई को महसूस किया कि मेरे पास बनियान, टोपी और नीचे तक धोती थी। ये पहनावा अधूरी सच्चाई बयां करती थी जहां लाखों लोग निर्वस्त्र रहने के लिए मजबूर थे। चार इंच की लंगोट के लिए जद्दोजहद करने वाले लोगों की नंगी पिंडलियां कठोर सच्चाई बयां कर रही थी। मैं उन्हें क्या जवाब दे सकता था जब तक कि मैं खुद उनकी पंक्ति में आकर नहीं खड़ा हो सकता हूं।'

महात्मा गांधी स्त्रियों के सबलीकरण व संवेदनशीलता के प्रति गहरी आस्था रखते हैं, उनका मानना था कि स्त्रियां संस्कृति और सभ्यता की महत्वपूर्ण संवाहक होती हैं। परिवार और समाज का उत्थान, स्त्री की समर्पण भावना का ही परिचायक है - स्त्री अहिंसा की साक्षात प्रतिमा है। अहिंसा का अर्थ ही है असीम प्रेम। ऐसा प्रेम का अर्थ होता है कष्ट सहन करने की असीम शक्ति। पुरुष की जननी स्त्री से ज्यादा अपरम्पार कष्ट सहन करने की शक्ति इस संसार में स्त्री के अलावा और किसके पास होगी मैंने सेवा और त्याग की भावना के जीवित अवतार के रूप में स्त्री की पूजा की है।

मनुष्य का प्रेम और स्नेह गांधीजी के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होते हैं। बच्चे द्वारा दी गई पेंसिल का प्रसंग हो या फिर बूढ़ी औरत के तांबे के सिक्के की अनाम उत्सर्ग भावना या फिर गरीब दलित बस्ती में जाकर अपने हाथों से साफ-सफाई करने वाला विधान, वो मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके यहां छुआछूत नहीं अपितु भाई-बंधुत्व की भावना है जहां जातीय-वर्गीय उन्मेष नहीं प्यार प्रेम और सद्भाव की नदी बहती है

अत: भारतीय जनमानस को, आज गांधी जी की के सिद्धांतों की सबसे ज्यादा जरूरत है क्योंकि इस अशांत माहौल में जहां मानवता छटपटा रही है, हिंसा तांडव कर रही है जहां अपनेपन की गुंजाइश नहीं, देश एक-दूसरे की सीमाओं का अतिक्रमण कर रहे हैं, मनुष्य, मनुष्य का दुश्मन बनता जा रहा है, ऐसे में गांधीजी के विचारों की आवश्यकता और प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। कितनी अद्भुत और प्रेरणास्पद बात है कि वैश्विक विचारकों ने राष्ट्रपिता के विचारों को आत्मसात किया और अपनाया भी। महान वैज्ञानिक आइंस्टीन कहते हैं कि भविष्य की पीढ़ियों को इस बात पर विश्वास करने में मुश्किल होगी कि हाड़-मांस से बना ऐसा कोई व्यक्ति भी कभी धरती पर आया था। वास्तव में गांधीजी सत्य और अहिंसा के महान पुजारी थे। आज भी 'संयुक्त राष्ट्र संघ' में महात्मा गांधी के विचारों को वरीयता दी जाती है तथा उनका शांति और अहिंसा का पथ अपनाया जाता है, किसी भी राष्ट्र के लिए यह सबसे बड़े सम्मान एवं स्वाभिमान की बात है। गांधी एक व्यक्ति नहीं वरन एक विचार है भारतीय मानवता सदैव महात्मा गांधी की ऋणी रहेगी। ●

दीवारें बोल उठेंगी

गांधीजी की भाषा सरल होने पर भी सत्य से सीधा सम्बन्ध रखने के कारण इतनी सजीव होती थी कि उसमें सहज ही साहित्यिक सुन्दरता का दर्शन हुए बिना नहीं रहता था।

पाले से बर्बाद एक खेत का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है :

''सारा खेत रोता-सा नजर आता है।''

गांडी व चरखे का वर्णन करते हुए लिखा :

''इसके हर एक भाग से मेरी राय में गरीबों के लिए चिन्ता जाहिर होती है।'' जब बापूजी जेल में थे, तो मीराबहन उनके समाचार जानने के लिए उत्सुक रहा करती थीं। इस पर जेल से एक पत्र में गांधीजी ने लिखा :

''अगर मैं सचमुच बीमार हुआ, तो दीवारें बोल उठेंगी।''

दूसरे एक में लिखा है :

''अच्छी और बुरी खबरें दोनों ही तुम पर से इस तरह गुजर जानी चाहिए, जैसे बतख की पीठ पर से पानी।''

जय गांधी !

- देवेन्द्र सत्यार्थी

वह मराठी लोकगीत मेरे लिए नितान्त नूतन था। दोपहरी के घाम में गांव के कच्चे रास्ते पर धूल का बादल उड़ाने वाले गाड़ीवान को सम्बोधित करते हुए कोई कह उठा था–'गाड़ीवान, ओ गाड़ीवान, तेरे हाथों में एक रूखी–सी रोटी है। क्या यही है तेरी कमाई, गाड़ीवान, ओ गाड़ीवान? गांधी का नाम तो तुमने अवश्य सुना होगा, गाड़ीवान, ओ गाड़ीवान...'

फैज़पुर–कांग्रेस के लिए विशेषरूप से जो बांसों का तिलकनगर बसाया गया था, वहां न जाने कितने ग्रामों की जनता उमड़ पड़ी थी। सुदूर प्रान्तों से आने वाले लोग कांग्रेस–अधिवेशन की इस पृष्ठभूमि पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते थे। यह प्रथम अवसर था जब कि कांग्रेस अधिवेशन के लिए किसी बड़ नगर के स्थान पर एक छोटा–सा ग्राम चुना गया था। मुझे वह दृश्य सदैव याद रहेगा, जब इस अधिवेशन के प्रधान पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी पास के रेलवे स्टेशन से तिलकनगर तक बैलगाड़ी पर सवार होकर आये थे। अनेक नेताओं की जय से प्रतिध्वनित तिलकनगर की वह झांकी मेरे हृदय–पटल पर सदैव अंकित रहेगी। वहीं एक किसान के मुख से मुझे वह मराठी लोक–गीत सुनने को मिला था और इस से न केवल लोक–प्रतिभा की नवीन रचनात्मक शक्ति का प्रमाण मिला था, बल्कि यह भी पता चला था कि एकमत होकर समस्त राष्ट्र ने गांधी के सार्वभौम नेतृत्व को मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर लिया है। यह गीत इसी का प्रतीक था। नहीं तो गांवों के कच्चे रास्ते पर धूल का बादल उड़ाने वाले गाड़ीवान के हाथों में रूखी सी रोटी देखकर यह प्रश्न करते हुए कि क्या यही उसकी कमाई हैं, किसी को यह कहने की क्या आवश्यकता थी–गांधी का नाम तुमने अवश्य सुना होगा? जैसे गांधी का नाम सम्पन्नता और स्वतन्त्रता का सूचक हो, जैसे यहीं एक नाम पर्याप्त हो–प्रत्येक संघर्ष का सम्बल, प्रत्येक कष्ट का अमोघ उपचार।

इसी गीत की चर्चा करते हुए मैंने गांधीजी का ध्यान चरखा कातने से हटाकर अपनी ओर आाकर्षित करना चाहा; पर चरखे की गति तनिक भी मन्द न हुई। मैंने कहा–''और कोई नेता तो अभी लोक–गीत को रस्सी से नहीं बंधा बापू!''

गांधीजी के चेहरे पर मुक्तहास की रेखाएं उभरती नज़र आईं। जैसे आंखों–ही–आंखों में वे मुझ पर व्यंग्य कसने की चेष्टा कर रहे हों। बोले–''मुझे इस रस्सी में बंधा देखकर तो तुम अवश्य खुश हो रहे होंगे?''

सोचने पर भी याद नहीं आ रहा है कि बुद्ध का जिक्र कैसे शुरू हो गया था। मैंने कहा–''भारत के लोक–गीत बुद्ध के नाम से अनुप्राणित हो उठे होंगे, जैसा कि आज भी सिंहल ओर ब्रह्मदेश में दृष्टिगोचर होता है। पर भारत के गीतों में आज बुद्ध का नाम कहीं भी ऊंचे –नीचे स्वरों में सुनाई नहीं देता, और यह बुद्ध की जन्मभूमि के लिए अत्यन्त लज्जा की बात है।''

बापू हंसकर कह उठे–''बुद्ध के व्यक्तित्व में तो इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ा। लोक–गीत की रस्सी में बंध कर ही कौन–सा सुख मिलता है?''

मैंने कहा–''जन्न बुद्ध–धर्म को भारत से देश–निकाला दिया

गया, तब लोक-गीतों से भी बुद्ध का नाम निकाल दिया गया होगा, और उसके स्थान पर किसी अन्य नायक या देवता का नाम रख दिया गया होगा!''

बापू हंसकर बोले-''रस्सी आखिर रस्सी है। किसी भी रस्सी से बंधना मुझे नापसन्द है। यह बात बुद्ध को भी नापसन्द रही होगी।''

मैंने कहा-''लोकगीतों की जिस रस्सी से आप बंधते चले गए हैं, वह तो बहुत पक्की नज़र आती है। अब आप इस रस्सी से छूटने के नहीं!''

''यह तो ठीक नहीं,''-बापू कह उठे-''रस्सी से बंधने को अपेक्षा मुझे रस्सी से मुक्त होना ही प्रिय लगता है।''

चरखा बराबर चल रहा था। जैसे पानी से सूत का तार निकलता है, बात-से-बात निकल रही थी। मैंने सोचा-यदि यों निर्विघ्न रूप से वार्तालाप का क्रम चलना सम्भव हो, तो भले ही यह चरखा चलता रहे।

बापू हंसकर बोले-''यह भी हो सकता है कि कल ही मैं इस धरती से उठ जाऊं और मेरे पीछे लोक-गीत से मेरा नाम हटा कर दूसरा कोई नाम जोड़ दिया जाए। मुझे तो खुशी ही होगी।''

मैंने कहा-''बुद्ध का नाम लोकगीत से निकाल कर लोगों ने जो भूल की थी। वे अब दोबारा उसे नहीं दोहरायेंगे।''

इस पर बापू खिलखिला कर हंस पड़े। बोले-''जब मैं हूंगा न तुम, तब कौन देखने आयेगा?''

अब इसके उत्तर में कुछ कहने कहने की मुझे हिम्मत न हुई। चरखा बराबर चलता रहा। मैं कहना चाहता था कि बापू के आगे आने वाली पीढ़ियां वस्तुत: उनके द्वारा उपस्थित की गई देशभक्ति की परम्परा को उचित रूप से सम्मानित करेंगी। मैं यह भी कहना चाहता था कि इस पीढ़ी से बापू का इतना गहरा सम्बन्ध है कि उन्हें तटस्थ होकर देखना उसके लिए बिल्कुल सहज नहीं। जी तो चाहता था कि बात को आगे बढ़ाऊं; पर यह भय था कि कहीं बापू बीच ही में न टोक दें । उनके लिए यह कहना कुछ भी तो कठिन न था कि मेरी बात छोड़कर कोई दूसरी बात करो। मुझे पूर्ण विश्वास था कि इस दुबले-पतले मानव ने जन्मभूमि को बदलकर रख दिया है, पराजय के स्थान पर विजय की भावना भर दी है, और केवल इसी कारण वे लोक-प्रतिभा की रंग-भूमि पर युग-युगान्तर तक सदैव कुलपति और अधिनायक के रूप मे उपस्थित रहेंगे। उनका सत्याग्रह और अनशन-व्रत फिर स्मरणीय हो गए हैं। स्वतन्त्रता के ऊबड़-खाबड़ पथ पर आरूढ़ इस पथ-प्रदर्शक का चित्र कभी आंख से ओझल होने का नहीं। किन्तु मैं ये सब बातें कैसे कह सकता था? हिमालय के सम्मुख खड़े होकर कालिदास को शत-सहत्री प्रतिभा ने किस प्रकार इस पर्वत की प्रशंसा की होगी, मैं इसी चिन्तन में संलग्न हो गया। बार-बार मराठी लोक-गीत के शब्द मेरे मस्तिष्क और हृदय में प्रतिध्वनित हो उठते-'गांधी का नाम तो तुमने सुना होगा...' और इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न दिखता था कि मैं लोक-प्रतिभा के सम्मुख नतमस्तक होकर इसे प्रणाम करूं।

लोक-गीत का राष्ट्रीय थाती के रूप में क्या महत्व है, इसकी चर्चा चलती रही। मैंने विभिन्न प्रान्तों के विविध लोक-गीत बापू के सम्मुख उपस्थित किए परंतु बापू की प्रशंसा में लोक-गीत में जो नये स्वर प्रतिध्वनित हो उठे हैं, इनके सम्बन्ध में और कुछ कहने का साहस मेरे वश की बात न थी।

आज बापू हमारे बीच नहीं रहे, और स्वभावतः बापू-सम्बन्धी लोक-गीतों के प्रति मेरा आकर्षण पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। आइन्सटीन के शब्द मेरे मस्तिष्क में प्रतिध्वनित हो उठते हैं-''आने वाली पीढ़ियां मुश्किल से ही विश्वास करेंगी कि कभी कोई रक्त-मांस का ऐसा व्यक्ति भी इस धरती पर चलता-फिरता था।'' कभी रोम्यां रोलां का स्निग्ध कथन मेरे सम्मुख एक नए चित्र की सृष्टि करने लगता है-''महापुरुष ऊंचे शैल-शिखरों के समान होते हैं। हवा उन पर ज़ोर से प्रहार करती है, मेघ उन्हें ढंक देता है। पर वहीं हम अधिक खुले तौर से और ज़ोर से सांस ले सकते हैं।'' इसी मानसिक पृष्ठ-भूमि पर लोक गीत के स्वर उभरते हैं। सुदूर आन्ध्र-प्रदेश की लोक-प्रतिभा ने गांधी के चरणों में श्रद्धा के पुष्प अर्पित किये हैं -

राटमु ओड़कारम्मा ओ अम्मालारा
गांधी कि जय अंचु दारामु तीयारे
एकुलु राटमु इन्टिकन्दम्भू
महात्मा गांधी प्रजल कन्दम्भू
-'चरखा कातो, ओ पुत्रियों,
गांधी की जय कहते हुए सूत के तार निकालो;
पूनी ओर चरखा घर की शोभा है,
महात्मा गांधी प्रजा की शोभा हैं।'

'स्वराज्य के लिए चरखा कातो, सूत के धागे में ही स्वराज्य छिपा है'- गांधीजी की यह वाणी प्रान्त-प्रान्त को स्पर्श कर चुकी है।

संथाल लोक-गीत भी गांधी का यशोगान करने से नहीं चूकता-

चेतान दिसम् खुन गांधी बाबाये दराए कान्
तीरे तापे नायोगो कानुन पुथी
बहक् रेताए खद्दर टोपरी
तारिन रेताए नाया गो मोटा गामछा
माहो दिसम् रेन मानवां वंचाव
तवोन लगितए है अकाना
-'हे मां, पश्चिम दिशा से गांधी बाबा आये हैं।
उनके हाथ में कानून की पोथी है।
उनके माथे पर खद्दर की टोपी है।
उनके कन्धे पर मोटा गमछा है।
हे बन्धुगण, सुनो।
वे हम लोगों को बचाने के लिए आये हैं।'

गांधी बाबा का नाम संथाल लोक-गीत के लिए गर्व की वस्तु बन गया है।

राष्ट्रीयता के भाव संथाल-कवि को सदैव एक नूतन प्रेरणा देते हैं-

नुमिन मारांग धरती रे गाडा
इंगराज को बेनाब आकात्
गाडा रे दो बाबाञ जुराकना
गाडा खोन् दो बाबा राकाप कञ में
मनिवा होड़ बाबाञ बाञचाब कोआ
–'इस बड़ी धरती के ऊपर,
अंग्रेजों ने गहरे गर्त्त की जो सृष्टि रच रखी है,
उसमे हम गिर गये हैं।
हे (गांधी) बाबा, आप इस गहरे गर्त्त से हमारा उद्धार कीजिए।
फिर हम मानव-समाज की रक्षा करेंगे।'

श्री रामचरित्रसिंह न इन संथाल-गीतों की चर्चा करते हुए लिखा- 'जिस जाति ने सभ्यता के थपेड़ों को कालान्तर से सहकर भी आदिम-युग की सभ्यता अपने पूर्वजों के आचार-विचार एवं उनके शौर्य को बचाए रखा है, उस जाति का साहित्य किसी भी जाति के साहित्य से क्या कम महत्त्व रखता है, भले ही वह लिपिबद्ध न हो? शिक्षा से दूर रहने पर भी वे लोग गांधी-सम्बन्धी गीत गा-गाकर जंगल में मंगल मनाया करते हैं।

गोंड लोक-गीत भी संथाल लोक-गीत से पीछे नहीं रहा-

अद्दल गरजे बद्दल गरजे
गरजे माल गुजारा हो
फिरंगी राज के हो गरजे सिपाइरा रामा
गांधी का राज होने वाला हाय रे
हो हो हो, गांधी का राज होने वाला हाय रे
–'बादल गरजता है।
मालगुज़ार गरजता है।
फिरंगी के राज का सिपाही भी गरजता है, हे राम!
गांधी का राज होने वाला है।
हो हो हो.... गांधी का राज होने वाला है।'

जब चतुर्दिक् अपमान के अतिरिक्त कुछ भी दृष्टिगोचर न हो रहा हो, उस समय अकस्मात् कहीं से गांव में यह सूचना प्राप्त होना कि 'गांधी का राज होने वाला है' वस्तुतः अन्धकार में प्रकाश-किरण का दृश्य उपस्थित करता है। आशा की यही किरण इस गोंड लोक-गीत की पृष्ठभूमि में युगारम्भ की सूचक बनकर जगमगा उठी है।

मेरठ जनपद का लोक-गीत भी गांधी के जयघोष से अपरिचित नहीं रहा –

तेरे घर में घुस गये चोर
गांधी दीवा दिखैयो रे
तेरे तो भाई गांधी टोपी वाले
यह टोप वाला कौन
गांधी दीवा दिखैयो रे
तेरे तो भाई गांधी धोती वाले –
यह पतलून वाला कौन
गांधी दीवा दिखैयो रे
तेरे तो भाई गांधी लाठी वाले
यह बन्दूक वाला कौन
गांधी दीवा दिखैयो रे

गांधी सम्बन्धी लोक-गीतों में इस गीत का विशेष स्थान है। ज्योतिर्मय राष्ट्रपिता के अनुरूप ही जनता की सामूहिक भावना एकाएक कह उठी है – गांधी दीवा दिखैयो रे!

अब हरियाना जनपद के लोक गीतों में भी अनेक स्थलों पर गांधी का नाम सुनाई देता है –

घर घर लेडी लन्दन रोवें
गांधी बनो गले का हार
घुटवन कर दई गवरमन्ट
अब वा के थोथे बाजें हथियार
बर ततैया जैसे चिपटन लागें
बेड़ा कौन लगावे पार
हाहाकार मचो लन्दन में
भैणा अब रूठ गये करतार
बाजी नांय पांय या लंगोटी वाले से
हाथ या के सत्याग्रह हथियार
लन्दन कोपा गांधी बाबा
संग में और जवाहरलाल
अब तक तो भारत में भैणा।
मुकता मारा माल
नीयत विरुद्ध होय जो राजा
वा को ऐसे ही बिगड़े हाल
नीयत विरुद्ध रावण कीनी
लंका बिछो मौत का जाल
–'लन्दन में घर-घर में महिलाएं रो रही हैं।
गांधी हमारे गले का हार बन गया!
सरकार घुटनों के बल झुक गई।

अब उसके हथियार थोथे बज रहे हैं!
बर्रों की भांति लोग अंग्रेज़ों को काट खाने को तैयार हैं।
अब (अंग्रेजों का) बेड़ा कौन पार लगावे?
लन्दन में हाहाकार मच गया।
बहन, अब हमारा करतार रूठ गया।
इस लंगोटी वाले से हम बाज़ी नहीं लगा सकते।
उसके हाथ में सत्याग्रह का हथियार है।
गांधी बाबा, लन्दन कांप उठा।
तेरे संग में जवाहरलाल भी है!
अब तक तो भारत में, बहिन।
हम ने मुफ्त का माल उड़ाया है।
जब राजा की नीयत बुरी हो जाती है।
उसका हाल यों ही बिगड़ जाता है।
रावण ने भी नीयत बुरी की थी।
लंका में मौत का जाल बिछ गया था।'

इससे इनकार नहीं कि इस गीत की नींव बदला लेने की भावना पर टिकी हुई है। लोक-कवि ने लन्दन की महिलाओं को वेदना में सन्तोष ढूंढने का यत्न किया है। राष्ट्रपिता गांधी और स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू के नामों का एक साथ उल्लेख इस लोक-गीत विशेषता है।

भोजपुरी बिरहा भी फिरंगी को क्षमा नहीं करना चाहता -

गांधी के लड़इयां नाहि जितबै फिरंगिया
चाहे करूं केतनो उपाय
भल भल मजवा उड़ौले एहि देसवा में
अब जइहैं कोठिया बिकाय

-'गांधी की लड़ाई में तुम नहीं जीत सकोगे, ओ फिरंगी,
चाहे तुम कितना भी उपाय क्यों न करो।
तुम ने भले-भले मजे उड़ा लिये इस देश में।
अब तुम्हारी कोठियां बिक जायेंगी।'

एक अवधी बिरहा में गांधीजी को उस कलकत्ता-यात्रा की झांकी उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है, जो उन्होंने अन्तिम बार देहली में पधारने से पूर्व वहां शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से की थी-

सुमिरो गांधी औ गंगा
बस्तर पहरे रंगा रंगा
जिन के कर्म में राज लिखा
फिर कोइ नहीं मेटन वाला
कितो काम करिहैं वह गाजी
कितो काम करिहैं भाल।
लड़ने मां अंग्रेज खड़ा है
बिगड़ परे हिन्दू काला
रामचन्द्र केदारनाथ क्या
लेकचर देते नीराला
बैठे गांधी पूजा करते
फेर रहे तुलसी माला
हाथ कमण्डल भस्म रमाये
बगल लिहें मिरगा छाला
जाय तो पहुंचे कलकत्ते में
वहां का सुन लिहु हवाला
ठीक दुपहरे लूट भई औ'
घर घर बन्द भये ताला
आला थाना पुलिस वहां पे रहे पहरा
लिहे बन्दूक सिपाही करें टहरा
आज सभा में सुनो गांधी का लहरा
अक्किल अंग्रेजन से लीन
कपड़ा पहरो मोटिया जीन
नहीं तो हो जै हो बेदीन

इस बिरहा की रचना का श्रेय नारायण अहीर को है, जो तुलसीपुर (जिला गोंडा) का निवासी है। अभी उस दिन रामदयाल अहीर ने दिल्ली में यह गीत सुनाने के पश्चात् बड़े गर्व से कहा था - 'मेरे गुरु ने ऐसे-ऐसे बीसों बिरहे रच डाले हैं।' गीत की अन्तिम पंक्तियां विशेषरूप से ध्यान देने योग्य हैं जिनमें लोक-कवि ने बड़े अर्थपूर्ण ढंग से यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि गांधी ने यह बुद्धि अंग्रेजों से ही सीखी थी- जीन-जैसा मोर कपड़ा पहनने की बुद्धि। खादी की परम्परा में लोक-कवि की आस्था अनेक दिनों से चली आ रही है।

पंजाबी लोक-गीत गांधी के यशोगान में अत्यन्त अग्रगामी नज़र आते है। अनेक बार गांव की स्त्रियां 'गिद्धा' नृत्य की रंगभूमि पर गा उठी हैं-

आप गांधी कैद हो गया
सानूं दे गया खहर दा बाणा
-'गांधी स्वयं बन्दीग्रह में चला गया।
वह हमें खद्दर के वस्त्र दे गया।'
गांधी दा नां सुण के
अंग्रेज दी नानी मर गई
-'गांधी का नाम सुनकर,
अंग्रेज की नानी मर गई।'
गांधी दे ना उत्तों
मैं सत्ते बहिश्तां वारां
-'गांधी के नाम पर,
मैं सातों बहिश्त न्योछावर कर दूं।'
गांधी के खद्दर ने,
संघ लटठे दा घुट्टिया
-'गांधी के खद्दर ने,
लट्ठे का गला घोंट डाला।'
गांधी कहे फिरंगिया वे
हुण छड्ड दे हिन्दुस्तान

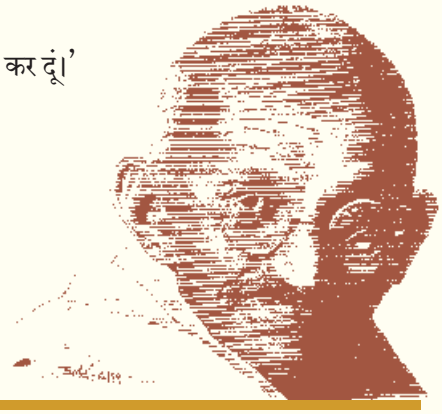

–'गांधी कह रहा है–ओ फिरंगी!
अब हिन्दुस्तान छोड़ दो!'

गीत–सम्बन्धी दो पंजाबी लोक–गीत, जो मुझे दिल्ली में एक शरणार्थी स्त्री से प्राप्त हुए हैं, अत्यन्त अर्थपूर्ण और महत्त्वशाली हैं–

साडे बेहड़े सूरज चढ़िया, सूरज चढ़िया
सूरज बेखण आओ गांधी, आओ गांधी
तू वी ते इक्क सूरज एं, इक्क सूरज एं
सरज बेखण आओ गांधी, आओ गांधी
किक्कुण आवां भोलिये
मैंनूं कम्भ हजार, कम्भ हजार
मेरे चरखे चों निक्कलिया
अज्ज लम्मसलम्मा तार, लम्मसलम्मा तार
अंग्रेज़ कहे मैं जा रिहा, जा रिहा
गांधी आखे बेलीया तू छेती जा, छेती जा
अंग्रेज़ कहे मेरे कण्डा खुब्भा, कण्डा खुब्भा
गांधी आखे बेलीया दस्स कित्थे खुब्भा, कित्थे खुब्भा
गांधी कण्डा खिच्च लिया, खिच्च लिया
अंग्रेज़ पया अज्ज लम्मड़े राह, लम्मड़े राह
लोकीं भैड़े लड़ रहे गांधी दा की दोष, की दोष
हट के बैठो भैड़ियो वे कर देखो कुझ होश, कुझ होश
सूरज रिशमां छड्डियां अज चमके धरती, चमके धरती
गांधी मत्था टेकिया अज खुश ए धरती, खुश ए धरती

–'हमारे आँगन में सूर्य उदय हुआ है, सूय उदय हुआ है।
सूर्य देखने के लिए आओ, हे गांधी, आओ हे गांधी!
तुम भी तो एक सूर्य हो, एक सूर्य हो ।
सूर्य देखने के लिये आओ, हे गांधी, आओ, हे गांधी!
कैसे आऊं, भोली नारी,
मुझे तो हजार कार्य करने हैं, हजार कार्य करने हैं।
मेरे चरखे से निकला है,
आज लम्बा तार, लम्बा तार।
अंग्रेज़ कहता है–मैं जा रहा हूं, जा रहा हूं।
गांधी कहता है–मित्र, तुम शीघ्र जाओ, शीघ्र जाओ
अंग्रेज़ कहता है–मेरे कांटा चुभ गया, कांटा चुभ गया।
गांधी कहता है– कहो मित्र, कहां चुभ गया; कहां चुभ गया।
गांधी ने कांटा बाहर खींच लिया, खींच लिया।
आज अंग्रेज़ लम्बे रास्ते पर चल पड़ा, लम्बे रास्ते पर चल पड़ा।
बुरे लोग लड़ रहे हैं, गांधी का क्या दोष है, क्या दोष है?
हट कर बैठो, ओ बुरे लोगों, कुछ तो होश कर देखो, कुछ होश।
सूर्य ने रश्मियां फैलाई, आज धरती चमक रही है, धरती चमक रही है।
गांधी ने नमस्कार किया–आज धरती खुश है, धरती खुश है!'

तू साडे पिण्ड कदी बी न आया
भला मैंनूं तेरी सौंह
तू देश आजाद कराया
भला मैंनूं तेरी सौंह
वीरां तो भैंणा खोह लईयां
भला मैंनू तेरी सौंह
मावां तों धीयां खोह लइयां
भला मैंनू तेरी सौंह
तैनूं अजे वी सच्च न आया
भला मैंनू तेरी सौंह
तूं देश आज़ाद कराया
भला मैंनू तेरी सौंह
अज भों दी हिक्क ते रत्त दिस्से
भला मैंनूं तेरी सौंह
अज घावां विच्चों पाक रिसे
भला मैंनूं तेरी सौंह
रब्ब डाढ़े कहर कमाया
भला मैंनूं तेरी सौंह
तूं देश आजाद कराया
भला मैंनूं तेरी सौंह

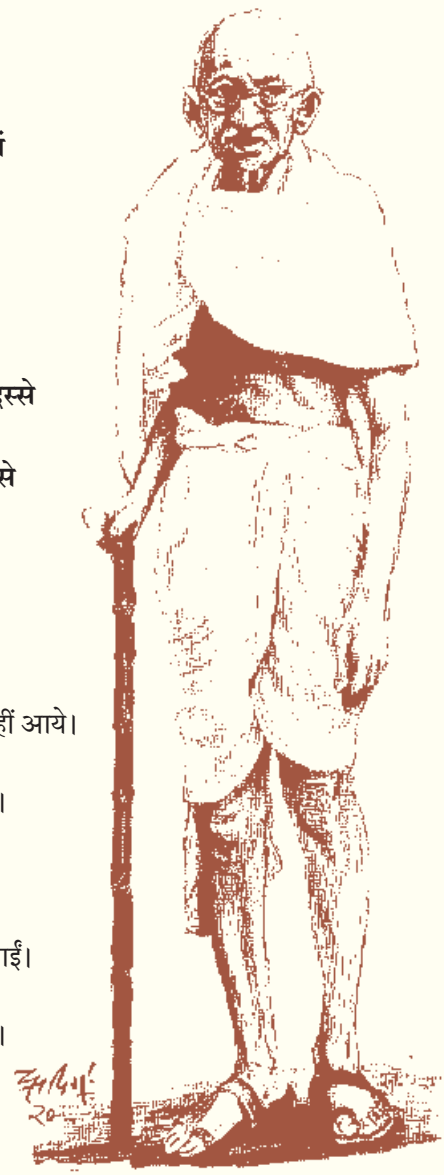

–'तुम हमारे गांव में कभी नहीं आये।
भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध।
तुमने देश आज़ाद करा दिया।
भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध।
भाइयों से बहनें छीन ली गईं।
भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध।
माताओं से पुत्रियां छीन ली गईं।
भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध।
तुमने देश आजाद करा दिया।
भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध।
इस गांव के लोग नादान हैं।
भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध।
इस गांव के घर वीरान हो गए।
भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध।
यहां गिद्धों का झुरमुट आ पहुंचा।
भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध।
तुमने देश आज़ाद करा दिया।
भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध।
आज भूमि की छाती पर रक्त दिखाई देता है।
भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध।
निर्मोही भगवान् ने कितना अन्याय दिखाया।
भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध।
तुमने देश आज़ाद करा दिया।
भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध।?

दोनों गीत अपने–अपने स्थान पर शरणार्थी जनता की असीम वेदना के सूचक हैं। पहले गीत में गांधी की सूर्य से तुलना करने की शैली अत्यन्त सुन्दर है। संस्कृत के प्रगाढ़ विद्वान् मेरे एक मित्र कह उठे थे कि

'इस गीत की उठान तो एक दम वैदिक ऋचाओं का स्मरण करा रही है।' जार्जिया प्रान्त के 'दो सूर्य' शीर्षक एक रूसी-गीत में लेनिन के लिए भी सूर्य ही की उपमा दी गई है -

'सूर्य, आओ, प्रकट हो,
हम बहुत आंसू बहा चुके
दु:ख को हल्का करो
लेनिन तुम्हारे हो समान था
अपनी ज्योति उसे भेंट करो
मैं बताए देता हूं
तुम लेनिन की बराबरी नहीं कर सकते
दिन का अवसान होते ही तुम्हारी आभा क्षीण हो जाती है
पर लेनिन के प्रकाश का लोप नही होता।'

सूर्य की उपमा जनता की भावुकता की प्रतीक है। अनेक देशों में इस प्रकार की उपमा विशेष नायक के लिए सुरक्षित रखने की परम्परा चली आती है। पहले गीत के अन्तिम भाग की एक पंक्ति बहुत हृदयस्पर्शी है-'बुरे लोग लड़ रहे हैं, इसमें गांधी का क्या दोष है!' दूसरा गीत आरम्भ से अन्त तक एक व्यंग्य नज़र आता है। यह कैसी स्वतन्त्रता है, कदाचित् गांव की नारी की समझ में यह बात नहीं आ रही है। देश में साम्प्रदायिक झगड़े हुए, स्त्रियों पर अनेक अत्याचार किए गए, धरती मानव के रक्त से अपवित्र हुई- यह सब देख कर गांव की नारी कदाचित् इसे निर्मोही भगवान को अन्याय कह कर इस गुत्थी को सुलझाना चाहती है। भला मुझे तुम्हारी सौगन्ध-गीत की टेक अत्यन्त गहरी चोट करती है ।

गांधी का जय-घोष भारतीय लोक-संस्कृति की एक नई परम्परा का सूचक है। एक तामिल लोक-गीत में जनता को प्रतिभा कह उठी है-

गांधी ऋषि ननमें कार्पातुम महाऋषि,
गांधी ऋषि!
-'गांधी ऋषि, हमारी रक्षा करता है, महान् ऋषि, गांधी ऋषि!'

एक दूसरे तामिल लोक-गीत में लोक-कवि ने 'गांधी ऋषि' को अन्नदाता के रूप में देखने का यत्न किया है-

'गांधी ने हमें भय से होड़ लेने की शक्ति दी है
गांधी ने हमें आत्म-बल दिया है
गांधी ने हमें दाल-भात दिया है।'

हरिजनों के मंदिर प्रवेश के सम्बन्ध में एक मलियाली लोक-कवि कह उठा है-

'मन्दिरों के द्वार तुम्हारी आज्ञा से
खोल दिए गए, गांधी ऋषि!
अब ये द्वार सदैव खुले रहेंगे!'
एक दूसरे मलियाली गीत में जनता गाती है -
'नारियल का वृक्ष बहुत ऊंचा है, ओ अंग्रेज?
हमारी पराधीनता भी बहुत ऊंची है,
गांधी इस पर चढ़ सकता है, ओ अंग्रेज!
गांधी इस पर झटपट चढ़ सकता है!'

गांधी के जीवनकाल में उनके प्रति अर्चना के पुष्प चढ़ाते समय लोक-प्रतिभा संकोच अनुभव करते हुए कदाचित् अधिक नहीं कह सकी। पर अब जब गांधी को शहीदों की मृत्यु प्राप्त हो चुकी है, उनका जय-घोष युग-युगांतर तक और भी ऊंचे स्वरों में प्रतिध्वनित होगा। अभी न जाने कितने लोकगीतों में गांधी का यशोगान किया जायगा।

फुलांप मिलर ने गांधी के व्यक्तित्व पर गहन विचार करते हुए कहा है-'किसी युग में बुद्ध के सम्मुख जिस तरह मानव की वेदना अपना घूंघट खोल कर खड़ी हो गई थी, उसी तरह अब वह गांधी के सम्मुख खड़ी हो गई है।' उत्तरापथ और दक्षिण-भारत के अनेक लोक-गीत गांधी के जय-घोष से अनुप्राणित हो उठे हैं. ...जय गांधी!●

- 'बेला फूले आधी रात' पुस्तक से साभार

'गांधी की रेखांकन जीवनी के रचनाकार'

'सुजस' के इस अंक में गांधीजी के जीवन सन्दर्भों को विभिन्न आलेखों में उनके रेखांकनों का संग दिया गया है। ख्यात कलाकार रामकिशन अडिग गांधी के जीवन से गहरे से प्रभावित रहे हैं। गांधीजी के जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलुओं को उन्होंने अपने रेखांकनों में जिया है। कहें, अपनी कलाकृतियों के जरिए उन्होंने गांधी की एक तरह से जीवनी उकेरी है। अडिग के सरोकार संगीत, नृत्य, नाट्य, चित्र, मूर्ति आदि सभी कलाओं से हैं। देशभर में उनकी कई कला प्रदर्शनियां आयोजित होती रही हैं। संगीत और चित्रकला पर उनकी दो महत्ती पुस्तकें भी प्रकाशित हैं। गांधी की उकेरी अपनी रेखांकन जीवनी के संदर्भ में वह कहते हैं, 'बचपन से ही गांधीजी का हंसता हुआ चेहरा मुझे आकर्षित करता रहा है। साथ ही गांधीजी के विचार और कर्म में किसी भेद के न होने ने भी सदा मुझे प्रभावित किया है। कलाकार होने के नाते मुझे लगा गांधीजी की एक ही मुद्रा हम बार-बार देखते हैं उससे हटकर कुछ गांधी जी की और भी बहुत सारी मुद्राएं रही होंगी, उनको लेकर कुछ काम किया जाना चाहिए। उसी ध्येय से मैंने गांधीजी के जीवन को अपने नई रेखाओं में जिया है।'

महात्मा गांधी : जीवन घटनाक्रम

महात्मा गांधी को महात्मा के नाम से सबसे पहले 1915 में राजवैद्य जीवराम कालिदास ने संबोधित किया था। एक अन्य मत के अनुसार स्वामी श्रद्धानन्द ने 1915 मे महात्मा की उपाधि दी थी, तीसरा मत ये है कि गुरु रविंद्रनाथ टैगोर ने महात्मा की उपाधि प्रदान की थी। उन्हें बापू नाम से भी याद किया जाता है। गांधीजी को बापू सम्बोधित करने वाले प्रथम व्यक्ति उनके साबरमती आश्रम के शिष्य थे। सुभाष चन्द्र बोस ने 6 जुलाई, 1944 को रंगून रेडियो से गांधीजी के नाम जारी प्रसारण में उन्हें राष्ट्रपिता कहकर सम्बोधित करते हुए आज़ाद हिन्द फौज़ के सैनिकों के लिए उनका आशीर्वाद और शुभकामनाएं मांगीं थीं। प्रतिवर्ष 2 अक्टूबर को उनका जन्म दिन भारत में गांधी जयंती के रूप में और पूरे विश्व में अन्तरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस के नाम से मनाया जाता है। गांधीजी के जन्म से लेकर जीवन की प्रमुख घटनाओं के आलोक में उनकी सम्पूर्ण जीवनी यहां तिथिवार 'सुजस' के पाठकों के लिए दी जा रही है।

– संपादक

	तारीख	सन्	विवरण
1	2 अक्टूबर	1869	पोरबंदर में जन्म
2	.....	1882	तेरह वर्ष में कस्तूरबा से विवाह
3	जून	1888	पुत्र हरिलाल का जन्म
4	29 सितम्बर	1888	साउथ हैम्पटन, इंग्लैंड पहुंचे
5	6 नवम्बर	1888	इनर टेम्पल, इन् ऑफ कोर्ट में दाखिला लिया
6	27 मई	1891	बार में विधिवत प्रवेश
7	28 अक्टूबर	1892	पुत्र मणिलाल का जन्म
8	25 मई	1893	डर्बन, नेटाल पहुंचे
9	26 मई	1893	पगड़ी हटाने से इनकार; कोर्ट छोड़ा
10	31 मई	1893	पीटरमैरित्सबर्ग स्टेशन पर प्रथम श्रेणी के डब्बे से धक्का देकर उतारा गया
11	.....	1893	टॉलस्टॉय की 'किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू' पढ़ी
12	22 अगस्त	1894	नेटाल इंडियन कांग्रेस की स्थापना हुई
13	9 जुलाई	1896	'ग्रीन पेम्फलेट्' को राजकोट में लिखना शुरू किया

	तारीख	सन्	विवरण
14	16 नवम्बर	1896	रामकृण भंडारकर की अध्यक्षता में पूना में ज़ाहिर भाषण
15	4 मई	1897	पुत्र रामदास का जन्म
16	11 अक्टूबर	1899	बोअर लड़ाई के दोहरान इंडियन एम्बुलेंस कोर्प की स्थापना
17	22 मई	1900	देवदास के जन्म में दाई का काम किया
18	4 जून	1903	इंडियन ओपिनियन का पहला संस्करण प्रकाशित
19	दिसम्बर	1904	फिनिक्स सेटलमेंट की स्थापना
20	20 जुलाई	1906	ब्रह्मचर्य का व्रत लिया
21	11 सितम्बर	1906	एम्पायर थिएटर, जोहान्सबर्ग में सत्यागृह का अभिक्रम जहां लोगों ने ईश्वर को साक्षी मान कर ये प्रण लिया कि वो ब्लैक एक्ट का विरोध करेंगे
22	1 अक्टूबर	1906	हिंदी प्रतिनिधि मंडल को लेकर इंग्लैंड को रवाना
23	22 मार्च	1907	ट्रान्सवाल पार्लियामेंट में एशियाटिक रजिस्ट्रेशन बिल पारित

	तारीख	सन्	विवरण
24	.....	1908	मगनलाल गांधी ने नाम दिया 'सदाग्रह' उसको बदल कर गांधीजी ने नाम दिया 'सत्याग्रह'
25	10 जनवरी	1908	रजिस्ट्रेशन के विरोध पर दो महीने का साधारण कारावास दिया गया
26	30 जनवरी	1908	जनरल स्मट्स के साथ स्वैच्छिक नामांकन पर समझौता पारित हुआ
27	10 फ़रवरी	1908	मीर आलम व अन्य ने गांधीजी पर हमला किया
28	16 अगस्त	1908	स्मट्स के विश्वासघात पर समझौते के प्रमाण पत्रों की होली
29	14 अक्टूबर	1908	ट्रान्सवाल में बिना परमिट के घुसने पर दो साल का कठोर कारावास
30	23 जून	1909	हिंदी प्रतिनिधि मंडल के प्रतिनिधि बनकर इंग्लैंड रवाना
31	13–12 नवम्बर		1909 किल्डोनन जहाज पे रास्ते में 'हिन्द स्वराज' लिखा
32	11–18 दिसम्बर		1909 इंडियन ओपिनियन' में 'हिन्द स्वराज' प्रकाशित
33	मार्च	1910	हिन्द स्वराज प्रतिबंधित, इंडियन होम रूल की अनुवादित कॉपी टॉलस्टॉय को भेजी
34	23 जून	1910	टॉलस्टॉय फार्म स्थापित; दूध के निग्रह की शपथ फलों के आहार पे प्रयोग किए
35	22 अक्टूबर	1912	गोपाल कृष्णा गोखले का साउथ आफ्रिका दौरा आरम्भ
36	22 सितम्बर	1913	कस्तूरबा और अन्य गिरफ्तार
37	23 सितम्बर	1913	कस्तूरबा को तीन महीने का कठोर कारावास
38	18 दिसम्बर	1913	गांधीजी व अन्य कारावास के निर्धारित समय से पहले अप्रतिबंधित रिहा
39	22 दिसम्बर	1913	कस्तूरबा जेल से रिहा
40	26 जून	1914	इंडियन रिलीफ बिल (1914) पारित
41	18 जुलाई	1914	गोपाल कृष्णा गोखले से मिलने लन्दन पहुंचे; फिनिक्स समूह शांति निकेतन में
42	17 फरवरी	1915	शांतिनिकेतन की यात्रा
43	5 अप्रैल	1915	कुम्भ मेला हरिद्वार पहुंचे
44	20 मई	1915	सत्यागृह आश्रम कोचरब की स्थापना
45	26 जून	1915	'केसर-ए-हिन्द' पदक से सम्मानित
46	11 सितम्बर	1915	दुदाभाई, दानीबेन और लक्ष्मी का प्रथम हरिजन परिवार आश्रम से जुड़ा
47	15 नवम्बर	1915	गुजरात सभा के उपप्रमुख निर्वाचित
48	6 फ़रवरी	1916	बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में भाषण
49	26 दिसम्बर	1916	जवाहर लाल नेहरु से लखनऊ कांग्रेस में पहली बार मिले
50	10 अप्रैल	1917	नीलवरों की परिस्थिति का आकलन करने के लिए राजकुमार शुक्ला के साथ पटना की यात्रा की
51	18 अप्रैल	1917	अदालती आदेश की अवज्ञा के बारे में कोर्ट में निवेदन
52	17 जून	1917	साबरमती आश्रम स्थापित
53	20 अक्टूबर	1917	भरूच में द्वितीय गुजराती शिक्षण

	तारीख	सन्	विवरण
			परिषद् की अध्यक्षता की
54	3 नवम्बर	1917	गोधरा में प्रथम गुजरात राजकीय परिषद् के अध्यक्ष
55	7 नवम्बर	1917	महादेव देसाई सचिव के रूप में जुड़े
56	14 फ़रवरी	1918	अहमदाबाद मिल मालिक और मिल मजदूर के विवाद में पंच नियुक्त किए गए
57	15 मार्च	1918	हड़ताली मिल मजदूरों का संकल्प कायम रखने के लिए अनिश्चित काल का उपवास प्रारंभ
58	18 मार्च	1918	समझौते के बाद उपवास तोड़ा
59	22 मार्च	1918	नडियाद में पांच हजार मजदूरों को संबोधित किया और भूमि कर न देने की सलाह दी
60	24 फरवरी	1919	'रोलेट एक्ट' के विरोध में सत्याग्रह की शपथ ली
61	6 अप्रैल	1919	'रोलेट एक्ट' के विरोध में सत्याग्रह और राष्ट्रीय हड़ताल
62	9 अप्रैल	1919	पलवल स्टेशन पे गिरफ्तार
63	13 अप्रैल	1919	जलियावालाबाग में जन संघार; अहमदाबाद में तीन दिन का उपवास प्रारंभ
64	7 सितम्बर	1919	'नवजीवन' का पहला संस्करण प्रकाशित
65	8 अक्टूबर	1919	'यंग इंडिया' का पहला संस्करण प्रकाशित
66	15 नवम्बर	1919	कांग्रेस ने हंटर कमीशन का बहिष्कार किया और स्वतन्त्र जांच समिति बनाई

	तारीख	सन्	विवरण
67	2 अगस्त	1920	सारे सम्मान सरकार सरकार को लौटाए; असहयोग आन्दोलन प्रारंभ
68	18 अक्टूबर	1920	गुजरात विद्यापीठ की स्थापना
69	24 दिसम्बर	1921	अहमदाबाद में कांग्रेस का शासन दिया
70	29 जनवरी	1922	भूमि कर का भुगतान और अवज्ञा आन्दोलन के एवज में बारडोली सत्यागृह पारित हुआ
71	4 फ़रवरी	1922	चौरी चौरा में पुलिस कर्मी मारे गए
72	10 मार्च	1922	गांधीजी और शंकरलाल बैंकर गिरफ्तार
73	11 मार्च	1922	'यंग इंडिया' में तीन लेखों के लिए राजद्रोह का आरोप लगाया गया
74	18 मार्च	1922	अहमदाबाद सर्किट हाउस में सुनवाई हुई; जज ब्रूमफील्ड ने गांधीजी को छः साल के कारावास की सजा सुनाई
75	21 मार्च	1922	यरवडा जेल भेजे गए
76	12 जनवरी	1924	ससून हॉस्पिटल में अपेण्डीसाइटीस की शल्य चिकित्सा हुई
77	5 फ़रवरी	1924	अप्रतिबंधित रिहा
78	6 अप्रैल	1924	'दक्षिण आफ्रीकाना सत्याग्रहानो इतिहास' का नवजीवन में प्रकाशन
79	17 सितम्बर	1924	दिल्ली में मौलाना मोहम्मद अली के घर पर साम्प्रदायिक सामंजस्य के लिए इक्कीस दिन का उपवास प्रारंभ
80	26 दिसम्बर	1924	बेलगाम कांग्रेस की अध्यक्षता की
81	22 सितम्बर	1925	'आल इंडिया स्पिनर्स एसोसिएशन' स्थापित

	तारीख	सन्	विवरण
82	7 नवम्बर	1925	मैडेलीन स्लेड सत्याग्रह आश्रम से जुड़ी; गांधीजी ने मीराबेन नाम दिया
83	29 नवम्बर	1925	'सत्याना प्रयोगों अथवा आत्मकथा' का प्रकाशन नवजीवन में प्रारंभ
84	3 दिसम्बर	1925	'सत्य के प्रयोग' अथवा आत्मकथा का प्रकाशन 'यंग इंडिया' में प्रारंभ
85	3 फ़रवरी	1928	'साइमन कमीशन' का बहिष्कार
86	27 जून	1929	'अनासक्तियोग' की भूमिका लिखी
87	31 अक्टूबर	1929	वाइसराय लॉर्ड इरविन ने गोल मेज़ सभा की घोषणा की
88	27 दिसम्बर	1929	लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पारित
89	15 फ़रवरी	1930	नमक कानून को तोड़ने के अपने विचार वाइसराय को लिखे
90	12 मार्च	1930	सत्याग्रह आश्रम से डांडी मार्च का प्रारंभ
91	6 अप्रैल	1930	नमक कानून तोड़ा
92	5 मई	1930	गिरफ्तार करके यरवडा जेल भेजा गया
93	26 जनवरी	1931	जेल से रिहा
94	5 मार्च	1931	गांधी–इरविन समझौते पे दस्तखत
95	12 सितम्बर	1931	लन्दन में द्वितीय गोल मेज़ परिषद् में कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में
96	13 सितम्बर	1931	अमेरिका के लोगों के नाम एक सन्देश रिकार्ड किया
97	9 अक्टूबर	1931	मारिया मोंटेसरी से मिले
98	20 अक्टूबर	1931	'गॉड इज़' रिकार्ड किया गया

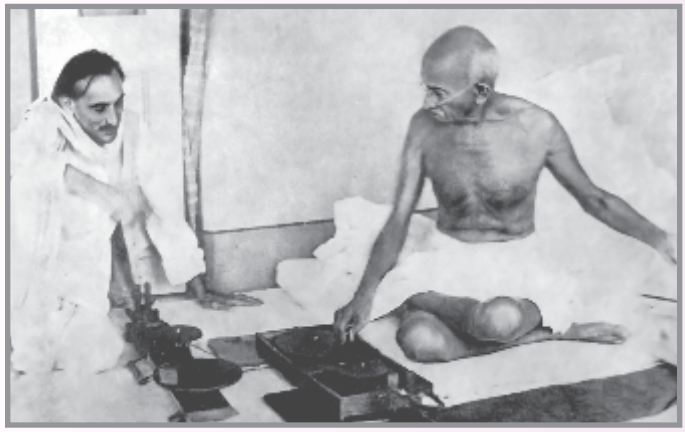

	तारीख	सन्	विवरण
99	5 नवम्बर	1931	दूसरी गोल मेज़ परिषद् के प्रतिनिधियों के लिए पंचम जॉर्ज द्वारा आमंत्रित राजसी समारोह में गांधीजी हमेशा की पोशाक (लंगोटी) में गए
100	13 नवम्बर	1931	कम्युनल अवार्ड के प्रस्ताव पर अपना विरोध जाहिर किया
101	1 दिसम्बर	1931	दूसरी गोल मेज परिषद् का अंत
102	6 दिसम्बर	1931	रोमेन रोलैंड के साथ
103	12 दिसम्बर	1931	वेटिकन में; मुस्सोलीनी से रोम में मिले
104	1 जनवरी	1932	सवज्ञा आन्दोलन का प्रस्ताव कांग्रेस कार्यकारिणी मंडल द्वारा पारित
105	4 जनवरी	1932	गिरफ्तार कर यरवडा जेल भेजे गए : वल्लभाई सह कैदी थे
106	10 मार्च	1932	महादेव देसाई का यरवडा स्थानांतरण
107	17 अगस्त	1932	प्रधानमंत्री रामसे मकडॉनल्ड ने कम्युनल अवार्ड की घोषणा की
108	18 अगस्त	1932	कम्युनल अवार्ड के विरोध में अपने आमरण अनशन के इरादे को रामसे मकडॉनल्ड को पत्र लिखकर बताया
109	20 सितम्बर	1932	उपवास प्रारंभ
110	24 सितम्बर	1932	पूना समझौता पारित
111	26 सितम्बर	1932	उपवास तोड़ा
112	30 सितम्बर	1932	'हरिजन सेवक संघ' स्थापित
113	11 फ़रवरी	1933	हरिजन का प्रकाशन प्रारंभ; 'हरिजन सेवक' (हिंदी) का प्रकाशन 23 फ़रवरी और 'हरिजनबंधू' (गुजराती)

	तारीख	सन्	विवरण
			का प्रकाशन 12 मार्च को आरम्भ हुआ
114	29 अप्रैल	1933	मध्य रात्रि इक्कीस दिन के उपवास का संकल्प लिया
115	1 मई	1933	अप्रतिबंधित और आत्म शुद्धि के लिए अपने उपवास का वक्तव्य जारी किया
116	8 मई	1933	उपवास प्रारंभ : जेल से रिहा
117	29 मई	1933	उपवास तोड़ा
118	31 जुलाई	1933	व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए अपने विचार व्यक्त किए
119	1 अगस्त	1933	अहमदाबाद में गिरफ्तार कर साबरमती जेल भेजे गए थोड़े दिन बाद यरवदा स्थानांतरण
120	14 सितम्बर	1933	राजनीती से दूर रहने के विचार से वर्धा गए
121	30 सितम्बर	1933	सत्याग्रह आश्रम, साबरमती हरिजन सेवक संघ को दिया गया
122	7 नवम्बर	1933	देशव्यापी हरिजन यात्रा प्रारंभ
123	25 अप्रैल	1934	बिहार में लालनाथ शास्त्री के उकसाने पर लोगों की भीड़ ने हमला किया
124	9 मई	1934	उड़ीसा की पद यात्रा की
125	18 मई	1934	सामूहिक सत्याग्रह वापस लिया
126	25 जून	1934	पूना में उनके मोटरों के काफिले पर बम फेंका
127	17 सितम्बर	1934	कांग्रेस से सेवानिवृत होने का विचार व्यक्त किया
128	30 अक्टूबर	1934	कांग्रेस से त्यागपत्र दिया
129	14 दिसम्बर	1934	अखिल भारतीय चरखा संघ स्थापित
130	30 अप्रैल	1936	वर्धा से सीगांव गए
131	31 अक्टूबर	1939	कांग्रेस मंत्रीमंडल ने त्याग पत्र दिया
132	5 मार्च	1940	सीगांव का नाम सेवाग्राम रखा गया
133	11 अक्टूबर	1940	सेवाग्राम में कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक; व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रस्ताव रखा गया
134	17 अक्टूबर	1940	विनोबा को पहला व्यक्तिगत सत्याग्रही घोषित किया गया
135	13 दिसम्बर	1941	'रचनात्मक कार्यक्रम' प्रकाशित
136	30 दिसम्बर	1941	बारडोली में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने गांधीजी का आग्रह कि वे उनको कांग्रेस के मार्गदर्शन की जिम्मेदारी से मुक्त कर दे स्वीकार किया
137	15 जनवरी	1942	सेवाग्राम में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति को यह जानकारी दी की जवाहरल नेहरू उनके राजनीतिक वारिस होंगे
138	27 मार्च	1942	क्रिप्प्स मिशन को इंग्लैंड लौट जाने की सलाह दी
139	14 जुलाई	1942	कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने ब्रिटिशरों के पलायन का प्रस्ताव पारित किया
140	8 अगस्त	1942	'भारत छोड़ो आन्दोलन' का प्रारंभ 'करो या मरो' का नारा दिया
141	9 अगस्त	1942	गांधीजी और कांग्रेस कार्यकरिणी

	तारीख	सन्	विवरण
			समिति के सदस्य गिरफ्तार; गांधीजी को आगा खान पैलेस में बंदी बनाया गया
142	15 अगस्त	1942	महादेव देसाई का निधन; आगा खान पैलेस जेल में उनका अंतिम संस्कार
143	10 फ़रवरी	1943	इक्कीस दिन का उपवास प्रारंभ
144	22 फ़रवरी	1944	कस्तूरबा का निधन; आगा खान पैलेस जेल में उनका अंतिम संस्कार
145	6 मई	1944	अप्रतिबंधित रिहा
146	14 जून	1945	लॉर्ड वेवल ने विचार विमर्श के लिए बुलाया
147	15 जून	1945	कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्य अहमदनगर जेल से रिहा; कांग्रेस से प्रतिबन्ध हटाया गया
148	14 जुलाई	1945	वाइसराय ने शिमला कॉन्फ्रेंस को असफल बताया
149	23 मार्च	1946	तीन सदस्यों का ब्रिटिश प्रतिनिधि मंडल दिल्ली पहुंचा
150	25 जून	1946	कांग्रेस कार्य कारिणी समिति ने संविधान परिषद् को पारित करने का संकल्प लिया
151	4 जुलाई	1946	वाइसराय ने अंतरिम सरकार की स्थापना की
152	16 अगस्त	1946	कलकत्ता में सांप्रदायिक दंगे
153	2 सितम्बर	1946	बारह सदस्यों की अंतरिम सरकार पंडित जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व ने में स्थापित
154	10 अक्टूबर	1946	नोआखली में साम्प्रदायिक दंगे
155	15 अक्टूबर	1946	मुस्लिम लीग के सदस्य अंतरिम सरकार का साथ जुड़े
156	27 अक्टूबर	1946	बिहार में सांप्रदायिक दंगे
157	6 नवम्बर	1946	नोआखली के दौरे पर
158	19 नवम्बर	1946	हरिजन पत्रिकाओं की जिम्मेदारी काका केलकर, किशोरीलाल मश्रुवाला और नरहरी पारिख को दी
159	2 जनवरी	1947	खुले पैर से नोआखाली को जन यात्रा प्रारम्भ की
160	30 मार्च	1947	बिहार में हिंसा से प्रभावित गांवों का प्रवास
161	31 मार्च	1947	नए वाइसराय लार्ड माउंटबैटन से मुलाकात
162	1 अप्रैल	1947	एशियाई रिलेशंस कॉन्फ्रेंस को संबोधित किया
163	13 अप्रैल	1947	बिहार के दौरे पर
164	2 जून	1947	कांग्रेस, मुस्लिम लीग और सिख समुदाय के प्रतिनिधियों ने विभाजन की योजना स्वीकार की
165	13 जून	1947	कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने विभाजन का प्रस्ताव स्वीकार किया
166	13 अगस्त	1947	कलकत्ता में शहीद सुहरावर्दी के साथ
167	15 अगस्त	1947	प्रार्थना और उपवास में दिन व्यतीत किया
168	31 अगस्त	1947	सांप्रदायिक दंगों के विरोध में कलकत्ता में अनिश्चित काल का उपवास
169	4 सितम्बर	1947	कलकत्तावासियों के शांति बनाए रखने के वचन के बाद उपवास तोड़ा
170	9 सितम्बर	1947	दिल्ली पहुंचे
171	12 जनवरी	1948	दिल्ली में उपवास का प्रारंभ
172	18 जनवरी	1948	उपवास तोड़ा
173	20 जनवरी	1948	एक युवक ने प्रार्थना सभा में बम फेंका
174	30 जनवरी	1948	नाथूराम गोड्से ने तीन गोलियां उनकी छाती पर चलाई
175	31 जनवरी	1948	यमुना नदी के किनारे रामदास द्वारा अंतिम संस्कार

- साभार : Gandhi Heritage Portal

सत्याग्रह की उत्पत्ति

यों एक प्रकार की जो आत्मशुद्धि मैंने की, वह मानो सत्याग्रह लिए ही हुई हो। ऐसी एक घटना जोहान्सबर्ग में मेरे लिए तैयार हो रही थी। आज मैं यह देख रहा हूँ कि ब्रह्मचर्य का व्रत लेने तक की मेरे जीवन की सभी मुख्य घटनाएं मुझे छिपे तौर पर उसी के लिए तैयार कर रही थी।

'सत्याग्रह' शब्द की उत्पत्ति से पहले उस वस्तु की उत्पत्ति हुई। उत्पत्ति के समय तो मैं स्वयं भी उसके स्वरूप को पहचान न सका सका था। सब कोई उसे गुजराती में 'पैसिव रेजिस्टेन्स' के अंग्रेजी नाम से पहचानने लगे। जब गौरों की एक सभा में मैंने देखा कि 'पैसिव रेजिस्टेन्स' का संकुचित अर्थ किया जाता है, उसे कमजोरों का ही हथियार माना जाता है, उसमें द्वेष हो सकता है और उसका अन्तिम स्वरूप हिंसा में प्रकट हो सकता है, तब मुझे उसका विरोध करना पड़ा और हिन्दुस्तानियों के लिए अपनी लड़ाई का परिचय देने के लिए शब्द की योजना करना आवश्यक हो गया।

पर मुझे वैसा स्वतंत्र शब्द किसी तरह सूझ नहीं रहा था। अतएव उसके लिए नाम मात्र का इनाम रखकर 'इण्डियन ओपीनियन' के पाठकों में प्रतियोगिता करवाई। जिस प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप मगनलाल गांधी ने सत्+आग्रह की संधि करके 'सदाग्रह' शब्द बनाकर भेजा। इनाम उन्हें मिला। पर 'सदाग्रह' शब्द को अधिक स्पष्ट करने के विचार से मैंने बीच में 'य' अक्षर और बढ़ाकर 'सत्याग्रह' शब्द बनाया और गुजराती में यह लड़ाई इस नाम से पहचानी जाने लगी।

कहा जा सकता है कि इस लड़ाई का इतिहास दक्षिण अफ्रीका के मेरे जीवन का और विशेषकर मेरे सत्य के प्रयोगों का इतिहास है। जिस इतिहास का अधिकांश मैंने यरवड़ा जेल में लिख डाला था और बाकी बाहर आने के बाद पूरा किया। वह सब 'नवजीवन' में छप चुका है और बाद में 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' के नाम से पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हो चुका है। उसका अंग्रेजी अनुवाद श्री बालाजी गोविन्दजी देसाई 'करण्ट ठॉट' के लिए कर रहे हैं। पर अब मैं उसे शीघ्र ही अंग्रेजी में पुस्तककार प्रकाशित करने की व्यवस्था कर रहा हूं, जिससे दक्षिण अफ्रीका के मेरे बड़े से बड़े प्रयोगों को जानने के इच्छुक सब लोग उन्हें जान-समझ सकें। जिन गुजराती पाठकों ने 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' न पढ़ा हो, उन्हें मेरी सलाह है कि वे उसे पढ़ लें। मैं चाहता हूं कि अबसे आगे के कुछ प्रकरणों में उक्त इतिहास में दिए गए मुख्य कथाभाग को छोड़कर दक्षिण अफ्रीका के मेरे जीवन के जो थोड़े व्यक्तिगत प्रसंग उसमें देने रह गये हैं, उन्हीं की चर्चा करूं। और इनके समाप्त होने पर तुरन्त ही पाठकों को हिन्दुस्तान के प्रयोगों का परिचय देना चाहता हूं। अतएव जो इन प्रयोगों के प्रसंगों के क्रम को आविच्छिन्न रखना चाहते हैं, उनके लिए 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' के उक्त प्रकरण अब अपने सामने रखना जरूरी है। ●

- गांधीजी की जीवनी 'सत्य के प्रयोग' से

गांधी का ग्राम स्वराज्य

- इष्ट देव सांकृत्यायन

गांधी केवल इसलिए बड़े नहीं माने जाते कि वे देश की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहे थे। उनके बड़े माने जाने का सबसे बड़ा कारण यह है कि उनकी आंखों में विदेशी दासता से मुक्ति के बाद के भारत का सपना था और उस सपने को साकार करने का उनका अपना रास्ता था। एक ऐसा रास्ता जो पूरी तरह इसी धरती से उपजा था, कहीं और से लाकर या जोड़-तोड़ कर बनाया गया हुआ नहीं था। गांधी के रास्ते में विश्व-बंधुत्व की भावना तो थी, लेकिन किसी दूसरे देश पर किसी तरह की निर्भरता की धारणा नहीं थी। निर्भरता चाहे किसी भी तरह की हो वह त्रासद होती है। क्योंकि हर निर्भरता एक तरह की दासता पैदा करती है। इसीलिए विकास का जो गांधीवादी प्रारूप है, उसमें किसी भी प्रकार की कोई निर्भरता नहीं है। आज अगर उसे कोई अव्यावहारिक कहता है तो वह मुझे हास्य के निरीह पात्र से अधिक कुछ नहीं लगता। अर्थव्यवस्था के मामले में गांधीजी की जो सोच है, वह कोई विदेशी वैचारिकता का हवाई किला नहीं, भारत का कई सहस्राब्दियों का आजमाया हुआ रास्ता है। गांधीजी खुद बार-बार कहते हैं कि वह कुछ नया नहीं कह रहे हैं। भारत की आज की पीढ़ी को बस वह बता रहे हैं जो भारत की अपनी परंपरा में निहित है और जो हर भारतीय के संस्कार का हिस्सा है।

ग्राम स्वराज को लेकर गांधीजी की अवधारणा में न तो अभारतीय सोच की कोई गुंजाइश है और न भारत में उसकी किसी भी तरह से विफलता की। गांधीजी जब पश्चिम की मशीनी सभ्यता के खिलाफ़ सीना तानकर खड़े थे तो वह ऐसा केवल इसलिए नहीं कर रहे थे कि उन्हें अंग्रेजों, उनकी सभ्यता और उनके शासन से घृणा थी या उन्हें इनका विरोध करना था। उनके लिए इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि उन्हें यूरोप और भारत की प्रकृति से लेकर सामाजिक एवं पारस्थैतिक अंतरों तक का ठीक-ठीक ज्ञान था। उन्हें भारत से लेकर अफ्रीका और यूरोप तक के जनजीवन का अनुभव था। लुडविग विटगेंस्टाइन बतौर दार्शनिक तब भले इतने चर्चित न हुए हों, लेकिन गांधीजी जैसा बहुपठ और बहुश्रुत व्यक्ति विटगेंस्टाइन जैसी अपने समय की अत्यंत महत्वपूर्ण मेधा से अपरिचित रहा हो, यह तो हो ही नहीं सकता। हालांकि बीज रूप में विटगेंस्टाइन का 'वैचारिक सहिष्णुता' और 'हर विचार या व्यवहार के स्थान-काल-परिस्थिति सापेक्ष' होने का विचार उनके पास वैदिक ऋषियों, महावीर और बुद्ध से लेकर तुलसी तक के रूप में मौजूद था।

ग्राम स्वराज की गांधीजी की संकल्पना को पहली बार व्यवस्थित प्रबंध का रूप उनकी कृति 'हिंद स्वराज्य' में मिला। कालक्रमिक अध्ययन करें तो इसके आने से पहले ही रोमेश चंद्र दत्त की 'अ हिस्ट्री ऑफ सिविलाइज़ेशन इन एंशिएंट इंडिया, बेस्ड ऑन संस्कृत लिट्रेचर' और 'द सिविलाइज़ेशन ऑफ इंडिया' जैसी क्रांतिधर्मी कृतियां आ चुकी थीं। इन कृतियों की प्रकृति राख में दबी चिनगारी जैसी थी, जो ऊपरी तौर पर अकादमिक अनुसंधान जैसी दिख रही थीं, लेकिन वास्तव में इनका मूल स्वर पश्चिम की मशीनी सभ्यता को राक्षसी बताने वाला था। अंग्रेज सरकार के नौकर रहते श्री दत्त इससे अधिक कर भी नहीं सकते थे। इसी बीच श्री दत्त अपनी कृति 'द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया अंडर अर्ली ब्रिटिश रूल' के पहले खंड में साफ-साफ कह चुके थे।

'अठारहवीं सदी में भारत एक महान उत्पादक होने के साथ-साथ महान कृषिकर्मी देश भी था और भारतीय करघे के उत्पाद एशिया और यूरोप के बाजारों में बिकते थे। दुर्भाग्य से यह सत्य है कि ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश संसद ने इंग्लैंड के उदीयमान उत्पादकों को प्रोत्साहित करने के लिए भारत पर ब्रिटिश शासन के आरंभिक दौर में भारतीय उत्पादकों को हतोत्साहित किया। इससे लाखों भारतीय शिल्पकारों का रोजगार छिन गया और भारत की आबादी ने अपनी समृद्धि का एक महान स्रोत खो दिया।'

श्री दत्त के इस सत्य से भी गांधीजी परिचित थे। वह यह तो जानते ही थे कि भारत की आज की (उनके समय की) दुर्गति का कारण क्या है, यह भी जानते थे कि भारत जब सोने की चिड़िया था, जिसके पंख नोचने के लिए दूर-दूर के देशों से लुटेरे आते-जाते रहे, तब वह यह क्यों और कैसे था। भारत के सोने की चिड़िया होने की अवधारणा गांधी जी के लिए कोई मजाक, या कल्पना के कोरे आदर्श जैसी बात नहीं थी। उन्हें मालूम था कि यह किन लोगों के कारण संभव हो सका था और यह भी कि उन्हीं की पूरी सहभागिता फिर से कैसे सुनिश्चित की जा सकती है। वह दैत्याकार मशीनों के पीछे की किसी भी शर्त पर मुनाफे की अतिलोभी पूंजीवादी वृत्ति के साथ-साथ इसके मूल में सन्निहित अमानवीय ही नहीं, लगभग राक्षसी मानसिकता तथा इसके दूरगामी तामसिक प्रभाव से सुपरिचित थे। साथ ही उन्हें मामूली यांत्रिक सहयोग से चलने वाले कुटीर उद्योगों के सात्विक प्रभाव का सहज अनुभव भी था। हमारे होश तक

मशीनें भारत की हस्तशिल्प की मेधा को नेस्तानाबूद करने में पूरी तरह सफल नहीं हुई थीं। गांवों में कुटीर उद्योग चाहे विषुवत रेखा के वासी की तरह नित हांफ-हांफ कर सही, लेकिन चल रहे थे। जाहिर है, गांधीजी के समय तक विदेशी शासकों की तमाम साजिशों के बावजूद हमारे कुटीर उद्योगों का सिर्फ मुनाफा ही घटा रहा होगा, वे पूरी तरह घाटे के शिकार नहीं हुए रहे होंगे।

यह अलग बात है कि गांधीजी के समय में ही कुछ लोगों ने 'हिंद स्वराज्य' में व्यक्त उनके विचारों का मजाक तक उड़ाया। ये वही लोग थे जिन्होंने इस बात पर गौर ही नहीं किया कि गांधीजी वहां संकेतों में ही पूरा रास्ता दे गए हैं। आवश्यकता बस इस बात की है कि पाठक उसे समझ ले और उसे समझने के लिए कुछ और नहीं, बस इतना ही करना था कि भारत जैसा है, उसे वैसा ही समझ लेना था। कोई लंबा-चौड़ा सैद्धांतिक विवेचन करने की आवश्यकता नहीं थी। गांधी के पास ऐसे किसी विवेचन के लिए समय भी नहीं था। वह अपने समय के सबसे व्यस्त व्यक्ति थे, जो अपने एक-एक सेकंड का उपयोग कर डालते थे। उनकी यही स्थिति संसाधनों के उपयोग के मामले में भी थी। आज की पीढ़ी को यह जानकर शायद अजीब लगे, लेकिन 'हिंद स्वराज्य' की गुजराती वाली मूल पांडुलिपि जहाज पर काम आने वाले रद्दी कागजों पर, जो इस्तेमाल करके फेंक दिए जाते हैं, लिखी गई थी। अधिकतम उपयोगिता की यह प्रवृत्ति जो अभी पश्चिम का अपने को बहुत वैज्ञानिक समझने वाला समाज सीख रहा है, गांधी ने कहीं और नहीं, भारत के गांवों से सीखी थी। बाहर के लोगों को यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि हमारी गंवई संस्कृति में वेस्ट मेटीरियल यानी अपशिष्ट जैसी कोई चीज़ है ही नहीं। हमारे गांवों की परंपरागत जीवनशैली ही ऐसी है जिसमें हर चीज़ अपने आप और लगातार पुनर्चक्रित होती चली जा रही है। यह पर्यावरण, पारिस्थितिकी, स्वावलंबन और परस्पर सहयोग हर दृष्टि से एक संतुलित और उत्तम व्यवस्था थी। एक ऐसी व्यवस्था जिसमें हिंसा के लिए कोई जगह ही नहीं थी। गांधी उसी जीवनशैली को अपनाने की केवल बात नहीं कर रहे थे, करके दिखा भी रहे थे।

जीवन का लंबा समय विदेशों में गुजारने के बावजूद गांधीजी विदेशी चमक-दमक से चुंधियाए हुए नहीं थे। इसी किताब में एक प्रश्न के उत्तर में गांधीजी कहते हैं, इंग्लैंड में आज जो हालत है वह सचमुच दयनीय - तरस खाने लायक है। और मैं तो भगवान से मांगता हूं कि ऐसी हालत हिंदुस्तान की कभी न हो। जिसे आप पार्लियामेंट की माता कहते हैं, वह पार्लियामेंट तो बांझ है और बेसवा है। यह दोनों शब्द बहुत कड़े हैं, तो भी उसे अच्छी तरह लागू होते हैं। मैंने उसे बांझ कहा, क्योंकि अब तक पार्लियामेंट ने अपने आप एक भी अच्छा काम नहीं किया। ऐसा नहीं है कि वह केवल पश्चिम की आलोचना कर रहे थे। अंग्रेजों से लड़ते हुए भी उनके अंदर अंग्रेजों या उनकी सभ्यता के लिए कोई घृणा नहीं थी। यह बात सैकड़ों दृष्टांतों से प्रमाणित है। असल में उनकी कल्पना का पार्लियामेंट ही और था। वह कहते हैं, ''पार्लियामेंट का काम इतना सरल होना चाहिए कि दिन-ब-दिन उसका तेज बढ़ता जाए और लोगों पर उसका असर होता जाए। लेकिन इससे उलटे इतना तो अब सब कबूल करते हैं कि पार्लियामेंट के मेंबर दिखावटी और स्वार्थी देखने में आए हैं। सब अपना मतलब साधने की सोचते हैं। सिर्फ डर के कारण ही पार्लियामेंट कुछ काम करती है। अपने ऐसे ही विचारों के कारण गांधी जी कुछ लोगों को अराजकतावादी लगने लगते हैं, लेकिन उनका अराजकतावाद कोई क्रोपाट्किन या ज़ेनो का एनार्किज़्म नहीं है। वह वैदिक संस्कृति का वह भावबोध है जिसमें,

न राज्यं न च राजासीत न दंडो न च दांडिक:।
स्वयमेव प्रजा: सर्वा रक्षंति स्म परस्परं।।

ग्राम स्वराज्य की उनकी अवधारणा भी ऐसी ही है। वह कहते हैं, ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा; और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए - जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा - वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले....।'' यह कैसे संभव होगा, इसके लिए गांधीजी गांव में उपलब्ध भूमि के उपयोग की पूरी योजना बताते हैं। यही नहीं, वह गांव की रक्षा के लिए भी ऐसा उपाय सुझाते हैं, जिसमें किसी बाहरी तत्व की आवश्यकता न पड़े, गांव की रक्षा के लिए ग्राम-सैनिकों का एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजिमी तौर पर बारी-बारी से गांव के चौकी-पहरे का काम करना होगा। आज के शहरी समाज को हो सकता है कि यह बात अनूठी लगे, लेकिन अभी दो दशक पहले तक गांवों में यह होता रहा है। गांधीजी गांव को पूरी स्वतंत्रता देने के पक्ष में हैं। उनकी योजना में भारत का हर गांव अपनी विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सब होगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह खाप पंचायतों की तरह कुछ भी मनमाना फैसला करवाने जा रहे हैं। वह पहले ही स्पष्ट कर देते हैं, चूंकि इस ग्राम-स्वराज्य में आज के प्रचलित अर्थों में सजा या दंड का कोई रिवाज नहीं रहेगा, इसलिए यह पंचायत अपने एक साल के कार्यकाल में स्वयं ही धारासभा, न्यायसभा और कार्यकारिणी सभी का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी।

असल में आज की दुनिया भर की सत्ताओं पर नजर डालें तो आप पाएंगे कि सबकी चिंता अपने-अपने दायरे को केवल संपन्न बनाने की है। गांधी की चिंता न तो केवल अपने दायरे की थी और न संपन्नता तक सीमित थी। गांधी की चिंता असल में समूचे विश्व के लिए थी। उनके

विचार के केंद्र में मनुष्यमात्र था। उनका जोर केवल संपन्नता पर नहीं, बल्कि आत्मसंपन्नता पर था। एक आत्मसंपन्न समाज में किसी तरह के छीन-झपट या अन्य अपराध के लिए कोई जगह ही नहीं होती। हिंसा उसकी आवश्यकता ही नहीं है। इसीलिए वह कहते हैं, देहात वालों में ऐसी कला और कारीगरी का विकास होना चाहिए, जिससे बाहर उनकी पैदा की हुई चीजों की कीमत की जा सके। जब गांवों का पूरा-पूरा विकास हो जाएगा, तो देहातियों की बुद्धि और आत्मा को संतुष्ट करने वाली कला-कारीगरी के धनी स्त्री-पुरुषों की गांवों में कमी नहीं रहेगी। गांव में कवि होंगे, चित्रकार होंगे, भाषा के पंडित और शोध करने वाले लोग भी होंगे। थोड़े में, ज़िंदगी की ऐसी कोई चीज न होगी जो गांव में न मिले। आज हमारे देहात उजड़े हुए और कूड़े-कचरे के ढेर बने हुए हैं। कल वहीं सुंदर बगीचे होंगे और ग्रामवासियों को ठगना या उनका शोषण करना असंभव हो जाएगा।

इसी लेख में ग्राम स्वराज के हवाले से पहले हम देख चुके हैं कि गांधी जी अंग्रेजी ढंग की पार्लियामेंट के बिलकुल विरुद्ध हैं। कई बार गलती से लोग इसका अर्थ यह ले लेते हैं कि वे लोकतंत्र के ही विरोधी थे। जबकि ऐसा बिलकुल नहीं है। एक उद्धरण देखिए, आज़ादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हर एक गांव में जमहूरी सल्तनत (लोकतांत्रिक शासन) या पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता या ताकत होगी। यह तभी संभव है जब गांव आज की तरह राज्य या केंद्र की सत्ता का आश्रित न हो। उसे हर बात के लिए ऊपर किसी सत्ता का मुंह न जोहना हो, बल्कि वह अपनी सभी जरूरतों के लिए अपने आप ही सक्षम हो। इसीलिए वह कहते हैं, इसका मतलब यह है कि हर एक गांव को अपने पांव पर खड़ा होना होगा - अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके। गांधीजी की कल्पना की यह व्यवस्था एक-दूसरे पर निर्भर या आश्रित नहीं, यहां तक कि संयोजित या समायोजित भी नहीं, बल्कि सही अर्थों में प्राकृतिक रूप से संबद्ध है। ऐसा कि जिसमें अलग होने जैसी कोई संभावना ही नहीं है। इसमें कोई किसी के ऊपर नहीं, सभी एक-दूसरे के साथ हैं, ऐसा समाज अनगिनत गांवों का बना होगा। उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। ज़िंदगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी, जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहां तो समुद्र की लहरों की तरह ज़िंदगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिंदु होगा। यह व्यक्ति हमेशा अपने गांव के खातिर मिटने को तैयार होगा। गांव अपने इर्द-गिर्द के गांवों के लिए मिटने को तैयार होगा।

किसी वस्तु या व्यवस्था को हमारे जानने भर से बात नहीं बनती। बात तब बनती है जब हमारे बच्चे उसे जानें, उसमें रुचि लें और उसमें उनकी आस्था बने। कितने लोग आज अपने सीने पर हाथ रखकर कह सकते हैं कि उनके बच्चे ग्रामोद्योग को जानते हैं? हम भले चाहे कितना भी जानते हों, पर हमारे बच्चे ग्रामोद्योग को नहीं जानते और गांधीजी कहते हैं, ग्रामोद्योगों का यदि लोप हो गया, तो भारत के 7 लाख गांवों का सर्वनाश ही समझिए। तब शायद लोग गांधी की बात का मर्म नहीं समझ पा रहे थे। उस समय अखबारों में उनकी खूब आलोचना हुई। इसे लेकर गांधी के खिलाफ़ बहुत कुछ कहा गया। लेकिन आज आजादी के 70 साल बाद हम इस बात की सत्यता को महसूस कर सकते हैं, जिसके नाते गांधी ने ऐसा कहा था, उन आलोचकों का यह कहना है कि प्रगतिशील पश्चिम में जिस तरह पानी, हवा, तेल और बिजली का पूरा-पूरा उपयोग हो रहा है, उसी तरह हमें भी इन चीजों को काम में लाना चाहिए। वे कहते हैं कि इन गुप्त प्राकृतिक शक्तियों पर कब्जा कर लेने से प्रत्येक अमेरिकावासी 33 गुलामों को रख सकता है, अर्थात् 33 गुलामों का काम वह इन शक्तियों के द्वारा ले सकता है। इस रास्ते अगर हम हिंदुस्तान में चले, तो मैं यह बेधड़क कह सकता हूं कि प्रत्येक मनुष्य को 33 गुलाम मिलने के बजाय इस मुल्क के एक-एक मनुष्य की गुलामी 33 गुनी बढ़ जाएगी। यह बात हम सभी जानते हैं कि गांधी के अपनाए जाने लायक असली रास्ते को कुछ व्यक्तियों की बात छोड़ दी जाए तो संस्थाओं ने

अपनाया नहीं और नतीजा आज हमारे सामने है। स्वावलंबन और मानवश्रम का रास्ता छोड़कर अनुदान के आश्रय और मशीनीकरण के रास्ते पर चलने का परिणाम यह हुआ है कि बेकारी आज सबसे बड़ी समस्या है।

गांधी जी अपने समय में इस समस्या को देख ही नहीं रहे थे, इसकी भयावहता का ठीक-ठीक आकलन भी कर रहे थे, ऐसे देश की कल्पना कीजिए जहां लोग प्रतिदिन औसतन पांच घंटे काम करते हों और वह भी स्वेच्छा से नहीं बल्कि परिस्थितियों की लाचारी के कारण; बस, आपको भारत की सही तस्वीर मिल जाएगी। अगर उसे कंकाल-मात्र रह गए भूखे भारतीयों की तस्वीर देखना हो, तो उसे उस अस्सी प्रतिशत आबादी की बात सोचना चाहिए, जो अपने खेतों में काम करती है, जिसके पास साल में करीब चार महीने तक कोई धंधा नहीं होता और इसलिए जो लगभग भुखमरी की ज़िंदगी जीती है। वह केवल समस्या ही नहीं उठाते, समाधान भी देते हैं। वह पचासों तरह के ग्राम और कुटीर उद्योगों का जिक्र करते हैं। ये सभी नाममात्र की पूंजी और साधारण कुशलता से किए जा सकने लायक हैं। फिर कहते हैं, हमारे देश में बेकारी का सवाल उतना कठिन नहीं है जितना दूसरे देशों में है। इस सवाल का लोगों की रहन-सहन के तरीके से घनिष्ठ संबंध है। इसी प्रसंग में आगे वह कहते हैं, उन सब लोगों के लिए जो अपने हाथों और पांवों से ईमानदारी के साथ मेहनत करना चाहते हैं, हिंदुस्तान में काफ़ी धंधा है।

गांधीजी ग्राम स्वराज्य का यह लक्ष्य हासिल करने के लिए शिक्षा को सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं। शिक्षा की व्यवस्था बुनियादी से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक जाती है। उच्च शिक्षा की चर्चा के क्रम में उनका मत है, नए विश्वविद्यालयों के लिए उचित पृष्ठभूमि होनी चाहिए। विश्वविद्यालय हों उसके पहले उनका पोषण करने वाले स्कूल और कॉलेज होने चाहिए, जहां अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जाए। तभी विश्वविद्यालयों का आवश्यक वातावरण खड़ा हुआ माना जा सकता है। विश्वविद्यालय चोटी पर होता है। शानदार चोटी तभी कायम रह सकती है जब बुनियाद अच्छी हो। आधुनिक शिक्षा के वह विरुद्ध नहीं हैं, लेकिन इस मामले में पश्चिम के अंधानुकरण के पक्ष में भी नहीं हैं। भारत में शिक्षा व्यवस्था का भी उनका अपना प्रारूप है। इसीलिए वह स्पष्ट कर देते हैं, मैं जानता हूं कि इस विचार वाले लोग भी हैं कि सार्वजनिक स्कूलों में सिर्फ अपने-अपने विषयों की ही शिक्षा देना चाहिए। मैं यह भी जानता हूं कि हिंदुस्तान जैसे देश में जहां पर संसार के अधिकतर धर्मों के अनुयायी मिलते हैं और जहां एक ही धर्म के इतने भेद और उपभेद हैं, धार्मिक शिक्षण का प्रबंध करना कठिन होगा। लेकिन अगर हिंदुस्तान को आध्यात्मिकता का दिवाला नहीं निकालना है, तो उसे धार्मिक शिक्षा को भी विषयों के शिक्षण के बराबर ही महत्त्व देना पड़ेगा।

ग्राम स्वराज्य संबंधी गांधी की अवधारणा का ठीक से अध्ययन और इस पर भारत की व्यावहारिक परिस्थितियों के सापेक्ष मनन करने के बाद इस बात से कोई इनकार कर ही नहीं सकता कि भारत के सर्वोदय का मार्ग इससे होकर ही जाता है। जो लोग ऐसा सोचते हैं कि दैत्याकार मशीनें भारत की समस्याओं का समाधान कर देंगी, वे वाकई बड़ी खुशफहमी में हैं। पूर्ण स्वावलंबन और आत्मसंपन्नता वाली ग्राम स्वराज्य की इस कल्पना को व्यवस्था के रूप में मूर्त रूप देने को अधिक से अधिक कुछ वर्ष टाला ही जा सकता है, अनंत काल के लिए इसे रोका नहीं जा सकता। क्योंकि केवल भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के सुखद जीवन का रास्ता इधर से ही होकर जाता है। ●

गांधीजी के 150वीं जयन्ती वर्ष के कार्यक्रम वर्ष 2021 तक

मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचारों को जन-जन तक पहुंचाने के लिए उनकी 150वीं जयन्ती वर्ष के कार्यक्रमों को एक वर्ष और बढ़ाकर 2 अक्टूबर, 2021 तक जारी रखने का निर्णय लिया है। साथ ही, ग्राम स्तर पर साक्षरता मिशन के तहत शुरू किए गए महात्मा गांधी वाचनालयों और पुस्तकालयों को फिर से खोलने और इनमें गांधीजी से जुड़ा साहित्य उपलब्ध कराने का भी निर्णय लिया है।

श्री गहलोत ने कहा कि हम गांधीवादी चिन्तकों, विचारकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ ही आमजन के सहयोग से राजस्थान प्रदेश को गांधीमय बनाएंगे। उन्होंने कहा कि इसके लिए समर्पित कार्यकर्ताओं और विशेषज्ञों की एक टीम तैयार की जाएगी।

मुख्यमंत्री ने कहा कि गांधीजी अपने आप में एक बड़ा विषय है और आज के समय में उनके विचारों की प्रासंगिकता अधिक बढ़ गई है। गांधीजी के विचार लोगों तक पहुंचाने के लिए योजनाबद्ध तरीके से काम करने की आवश्यकता है। हम प्रयास करेंगे कि नई पीढ़ी को बचपन से ही गांधी दर्शन के बारे में जानकारी मिले और वे इससे प्रेरणा ले सकें। उन्होंने कहा कि इसके लिए स्कूलों में गांधीवादी विचारकों और विशेषज्ञों की विशेष कक्षाएं आयोजित कराई जाएंगी।

श्री गहलोत ने कहा कि गांधीजी के सत्य, अहिंसा और शान्ति के सिद्धान्तों को राज्य सरकार की कार्यप्रणाली में समाहित करने एवं इनका व्यापक प्रचार-प्रसार करने के लिए राज्य सरकार ने प्रदेश में शान्ति एवं अहिंसा प्रकोष्ठ का गठन किया है। राजस्थान देश में एकमात्र राज्य है, जिसने इस तरह का प्रकोष्ठ स्थापित किया है। हम इसे और मजबूत बनाने के लिए प्रकोष्ठ को राज्य सरकार के एक विभाग के रूप में स्थापित करेंगे। ●

सत्यमेव जयते
राजस्थान सरकार

#राजस्थान_सतर्क_है

सहायता के लिए सम्पर्क करें
मुख्यमंत्री हेल्पलाइन नंबर: 181

"विख्यात डॉक्टर्स की राय में कोरोना से बचाव के लिए सार्वजनिक स्थानों पर 'नो मास्क–नो एन्ट्री' का संकल्प लागू करना होगा। इसकी पूर्ण पालना की जिम्मेदारी भी आमजन व समुदाय को लेनी होगी।"

अशोक गहलोत, मुख्यमंत्री

कोरोना से अपना जीवन बचाएं

'नो मास्क–नो एन्ट्री'

हर वक्त, हर जगह अपनाएं

किसी की हैसियत या आत्मविश्वास से बेखबर है कोरोना
थोड़ी-सी असावधानी परेशानी का सबब बन सकती है

मास्क पहनना कमजोरी या डर की निशानी नहीं
यह हमें सुरक्षा देता है और जिम्मेदार नागरिक बनाता है

जीवन के लिए जरुरी
दो गज की दूरी

परिवार से है प्यार तो
मास्क को करें अंगीकार

भीड़ में जाने से बचें
जीवन बचेगा तो
खुशियां लौटेंगी

बचाव एवं सावधानी ही उपचार है

सहायता के लिए सम्पर्क करें मुख्यमंत्री हेल्पलाइन नंबर: 181 | सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, राजस्थान

अशोक गहलोत
मुख्यमंत्री, राजस्थान

सत्यमेव जयते
राजस्थान सरकार

#राजस्थान_सतर्क_है

सहायता के लिए सम्पर्क करें
मुख्यमंत्री हेल्पलाइन नंबर: 181

कोरोना महामारी में आपकी सुरक्षा आपके हाथ

मास्क नहीं तो प्रवेश नहीं

हर वक्त, हर जगह अपनाएं

सहायता के लिए सम्पर्क करें मुख्यमंत्री हेल्पलाइन नंबर: 181 | सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, राजस्थान

Postal Regd. No. Jaipur City/413/2020-22
Registered with Registrar of Newspapers of India under R. No. 56175/1991

गांधी संग्रहालय

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के 150वें जयन्ती वर्ष पर उनके विचारों को और जीवन आदर्शों को जन-जन तक पहुंचाने के उद्देश्य से मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत ने 23 नवम्बर, 2019 को राजधानी जयपुर में राजस्थान खादी ग्रामोद्योग परिसर में 'गांधी म्यूजियम' का उद्घाटन किया।

इस संग्रहालय में गांधीजी के जीवन को चित्रों, मॉडल, मल्टीमीडिया तथा दृश्य और श्रव्य माध्यम से आमजन तक पहुंचाने का प्रयास किया गया है। इसमें गांधीजी के जीवन और दर्शन के प्रेरणादायी अंशों का प्रस्तुतीकरण है तो उनके जीवन से जुड़ी महत्ती घटनाओं का भी आलोक है। राज्य सरकार के सहयोग से राजस्थान खादी ग्रामोद्योग संघ एवं चन्द्रा इनोवेशन फाउण्डेशन द्वारा निर्मित यह संग्रहालय पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र है।

- आलेख एवं छाया : हरिशंकर शर्मा

#DIPRRajasthan

प्रकाशक व मुद्रक - सूचना एवं जनसम्पर्क आयुक्त, महेन्द्र सोनी द्वारा सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग के लिए, शासन सचिवालय, जयपुर (राजस्थान) से प्रकाशित
सम्पादक- डॉ. राजेश कुमार व्यास • मैसर्स रेनबो ऑफसेट प्रिन्टर्स, बी-3, सुदर्शनपुरा, जयपुर से मुद्रित, 'राजस्थान सुजस'-पृष्ठ संख्या 92, मूल्य 20 रुपये/ 60,000 प्रतियां